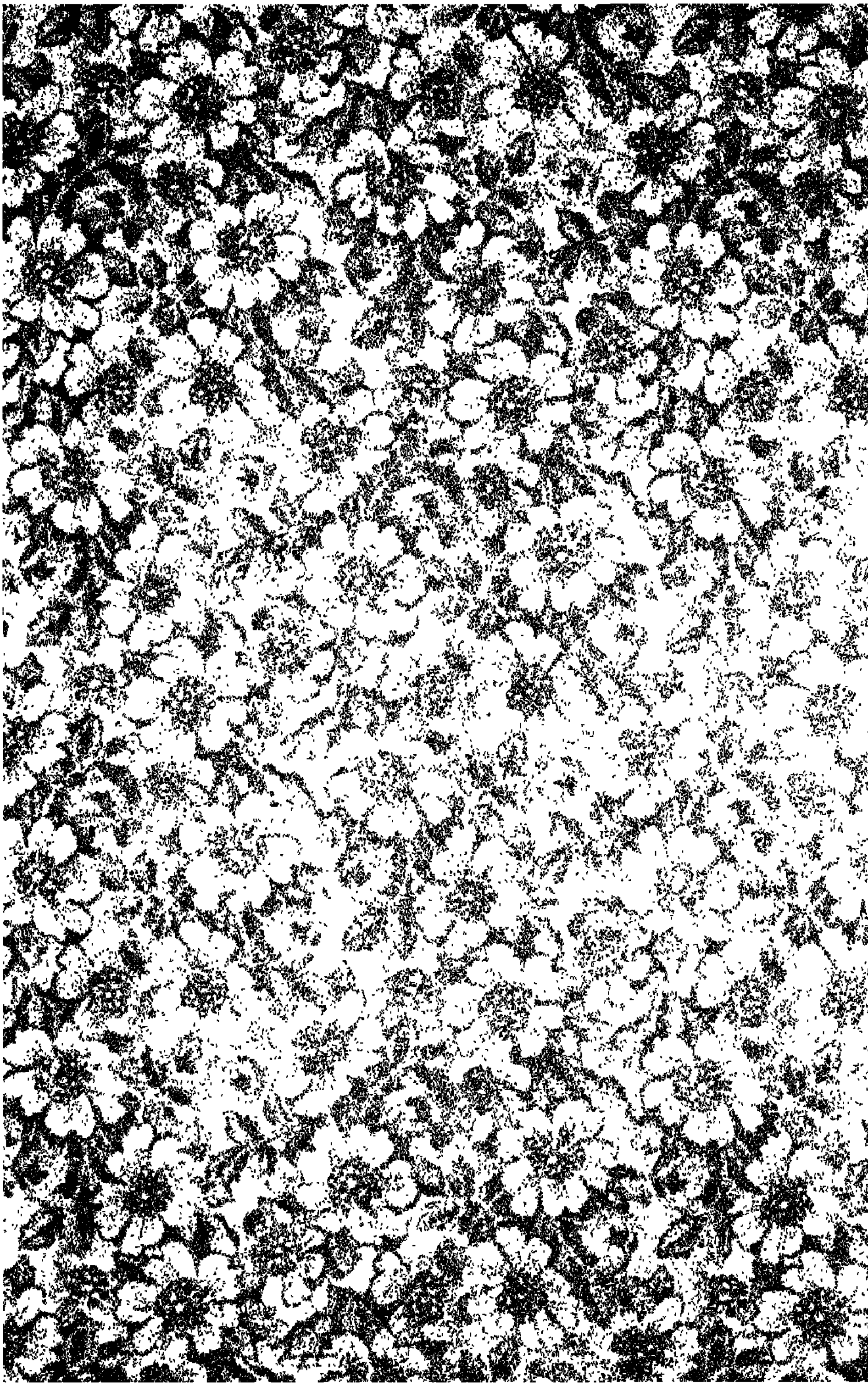
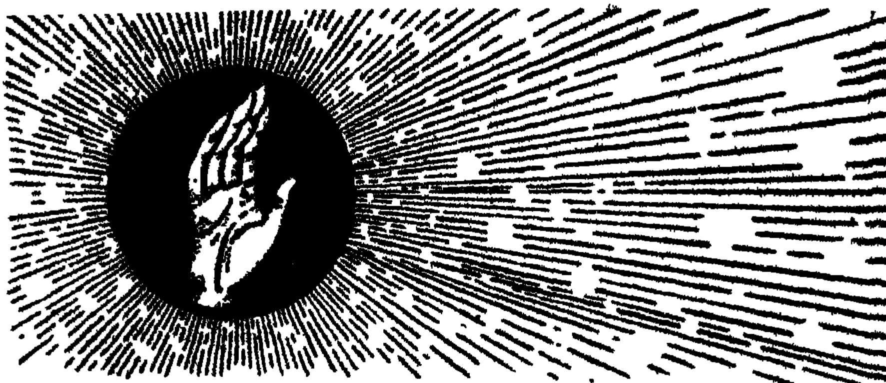




महाप्राण मुनि मगन

अर्हं

[श्रमण-संस्कृति के उन्नायक, मनस्वि-मूर्धन्य, युग-पुरुष
श्री मायाराम जी म० का प्रेरक व प्रबोधक जीवनांकन
तथा उनकी मुनि-परम्परा की उज्ज्वलसंयम-गाथा]

महाप्राण मुनि मायाराम

लेखक :

विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के शिष्य

सुभद्र मुनि

श्री मायाराम जी म० स्मारक-प्रकाशन, गाजियाबाद।

★ पुस्तक :
महाप्राण मुनि मायाराम

★ लेखक :
श्री सुभद्र मुनि जी म०

★ सम्पादक :
कुमार सत्यदर्शी

★ प्रकाशक :
श्री जे० डी० जैन
(संस्थापक)
श्री मायाराम जी म० स्मारक-प्रकाशन
के० बी० ४५ कविनगर, ग़ाज़ियाबाद (उ० प्र०)

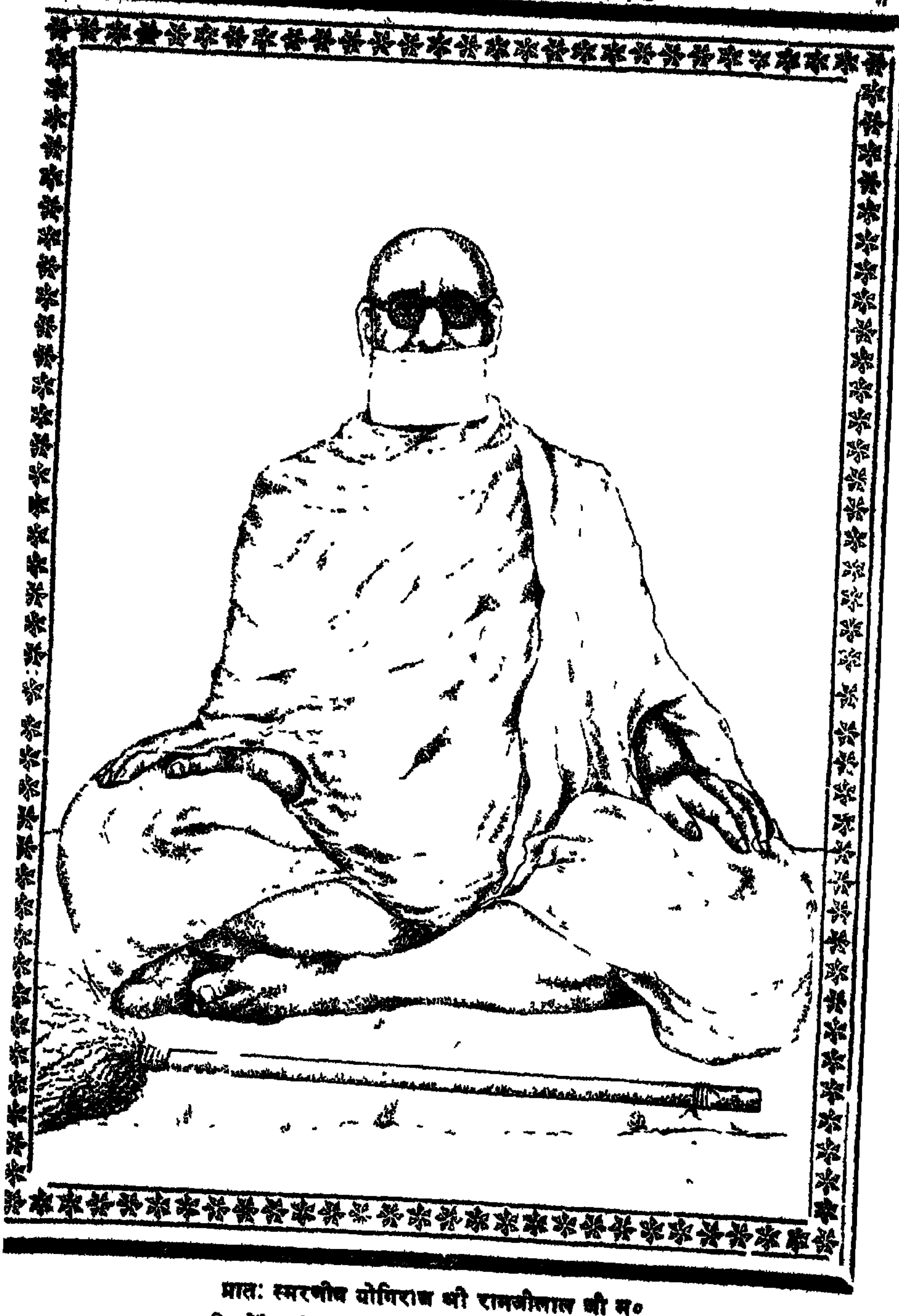
★ संस्करण :
प्रथम, सं० २०३६ (सन् १९७९)

★ लागत :
बीस रुपये

★ मूल्य :
स्वाध्याय, चिन्तन, मनन

★ मुद्रक :
अल्टीमेट प्रिंटिंग हाउस
१८/२५, शक्ति नगर, दिल्ली-७

श्रद्धेय चरित-नेता की परम्परा के महान् मुनि !



प्रातः स्मरणीय योगिराज श्री रामजीलाल जी म०
जिन्होंने चरित-नेता को अत्यन्त निकट से देखा था ।

समर्पण

जनवन्द्य, श्रद्धा-पुरुष श्रमण-धर्म के मुकुट
श्री योगराज जी महाराज
के योगबल ने एक युग-पुरुष के चरित्रांकन-
हेतु मुझ लघु को समुत्सुक करने का
अनुग्रह किया।

वात्सल्य का अमृतवर्षण कर, 'महाप्राण'
का सब कुछ मुझे सुनाया, बताया—
उन
विश्व वल्लभ मङ्गल-मूर्ति पूज्य गुरुदेव
योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज के
अदृष्ट, वरद कर कमलों में
मेरा यह बाल-प्रयत्न—
सादर, सभक्ति, सश्रद्धा समर्पित है।

—सुभद्र मुनि

प्रकाशकीय

मैं जब भी पूज्य गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज के दर्शनार्थ जाता, तब श्री सुभद्र मुनि जी म० से निष्कलङ्क धर्म-देवता श्री मायाराम जी म० के संयम की आलोकित-रश्मियां बखेरती हुई पवित्र गाथायें सुनता। मेरे मानस का पात्र श्रद्धा के अमृत से आपूरित हो जाता।

संसार-कामनाओं से विमुक्त अप्रमत्त हो कर संयम-पथ पर बढ़ते हुए, मुनि-चरणों पर मैं अपने हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा अर्पित करता रहा हूं। महाश्रमण श्री मायाराम जी महाराज के विराट् ज्योतिर्मय संयम-जीवन के प्रति तो मैं अपनी श्रद्धा, हज़ार-हजार स्तुतियों के साथ समर्पित करता हूं।

प्रारम्भ से ही मेरी यह स्पृहा थी; कि इस पुस्तक का अथ से इति तक प्रकाशन-व्यय का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो। यह परम व आवश्यक शुभ कार्य सम्पन्न हुआ और आदर्श चरित्र से अङ्कित पुस्तक आप के हाथों में सौंपते हुए मुझे अनिर्वचनीय हर्ष का अनुभव हो रहा है।

मेरा आशान्वित विश्वास है, आप आगमरूप प्रस्तुत पुस्तक का, जो संयम-पथिकों के लिये प्रकाश-स्तम्भ है, अध्ययन और मनन कर श्री सुभद्र मुनि जी के श्रम को श्रेय अर्पित करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के तीसरे खण्ड में जिन मुनिराजों व कवि बन्धुओं ने अपने श्रद्धा-पुष्प समर्पित किये हैं, उन सब के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूं।

भवदीय :

J.D. Jain

(जे.डी. जैन)

के.बी. 45, कविनगर,
ग़ाजियाबाद (उ. प्र.)



आशीर्वचन

'महाप्राण मुनि मायाराम' एक ऐसे युग-पुरुष का चरित्राङ्कन है, जिस ने संयम की मर्यादित रेखाओं का कभी अतिक्रमण नहीं किया। प्रस्तुत जिनकल्पीय संयम-साधना से उन रेखाओं को और भी उत्कट बना दिया था। इसीलिये विभिन्न प्रदेशों के प्रतिष्ठित समकालीन आचार्य, उपाध्याय, गणावच्छेदक और मान्य मुनिराजों ने भी उस युगपुरुष को श्रद्धा से देखा।

इस संयम-पथ के युगपुरुष के चरित्र-चित्रण को आलेखित करने का सुभद्र मुनि ने सत्प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न श्रमण-धर्म के मुकुट चारित्र-चूड़ामणि पूज्यपाद गुरु-देव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० का करुणामय वर-दान है। उन्हीं की अनुकम्पा से यह सब सम्भव हो पाया है।

प्रस्तुत चरित्र-पुस्तक में चरित्र-नेता से सम्बन्धित जिन घटनाओं का सङ्कलन हुआ है,वे पूज्य गुरुदेव के मुखार-विन्द से उपलब्ध हुई हैं। अतः श्रुति-परम्परा की साक्षी से ये सब घटनायें सत्य हैं, तथ्य हैं, ऋत हैं, भूतार्थ हैं।

अपने पूज्य महापुरुषों के चरित्राङ्कन में जो श्रम सुभद्र मुनि ने किया है, उसके लिये आप सब अपनी मित्र-दृष्टि का प्रयोग करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

सुभद्र मुनि आगे भी अपने पूज्य पूर्वजों की कीर्ति-पताका को ऊंची करते हुए, परम श्रेय अर्जित करते रहेंगे, ऐसा उनके लिये मेरा हृदय-निसृत आशीर्वाद है।

—विद्वद्रत्न मुनि रामकृष्ण

लेखकीय

—'महाप्राण मुनि मायाराम' के कालजयी व्यक्तित्व का आप अवलोकन करें, इससे पूर्व कुछ अपनी बात कहूं—

मैंने संयम-जीवन की जब पहली सांस ली तभी मेरे कानों ने सुना, आंखों की कल्पनाओं में उभरा एक व्यक्तित्व मेरे मानस की भित्ति पर प्रस्तर-रेखा-सा अंकित हो गया। मैं ने अपनी समस्त श्रद्धायें उसे समर्पित कीं और वह मेरे लिये आराध्य, उपास्य बन गया। उस महा व्यक्तित्व का नाम—चारित्रचूडामणि श्री मायाराम जी म० है।

पूज्य गुरुदेव :

—मैं ने अपने श्रद्धाधार श्रमणधर्म के मुकुट पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म०, जिन्होंने मुझे संयम-पथ का सम्बल दिया था, उन से अनेक बार उस संयम-पथ नेता के विषय में सुना। उनकी उत्कृष्ट संयम-साधना के विषय में जानने का प्रयत्न किया। प्रातः प्रवचन में, मध्याह्न-चर्चाओं मे और सायं वार्ताओं में उनके अनेक दुर्लभ संस्मरण, संयम की अलौकिक रहस्यपूर्ण बातें सुनने का मैं सुअवसर प्राप्त करता रहा।

—यद्यपि मुझे पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री को चरण-सेवा का स्वल्प ही अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु जो प्राप्त हुआ, उसमें मैं ने परमश्रद्धेय चरित्र-नेता के विषय में काफी कुछ सुना। यहां पर यह ज्ञातव्य है—वर्तमान निकट अतीत में पूज्य गुरुदेव ही एक मात्र थे, जिन्होंने श्री मायाराम जी म० को देखा था। उन्हें सुना था। सूक्ष्म ईक्षा से चीन्हा था। उनके जीवन का प्रकाश स्वयं प्राप्त किया था। वे उनके जीवन के अन्तर और बाह्य दोनो पक्षों से सुपरिचित थे। इसीलिये पूज्य गुरुदेव के सम-वयस्क अन्य मुनि भी उनसे समय-समय पर श्री मायाराम जी म० के विषय में पूछते और जानने का प्रयत्न करते रहा करते।

—तो मैं भी जिज्ञासु बना उन श्रमणराज के विषय में समय-समय पर

पूज्य गुरुदेव से सुनता एवं पूछता रहा। यह सब सुनते-पूछते हुए मेरा मन आमोद से भरता और मैं उनसे यह कहने के लिए विवश हो जाता—"उस महाव्यक्तित्व को जाने-समझे बिना साधुत्व अपूर्ण है, फिर ऐसे महापुरुष का जीवनांकन कर जन-मानस को लाभान्वित क्यों नहीं किया जाता है ?"

—एक दिन मैंने विनम्र होकर निवेदन किया—"गुरुवर ! पूज्य महामुनि के जीवनांकन का शुभ कार्य होना चाहिये। इस हेतु आप श्री बोलें और मैं लिखूं तथा समाज को इस आलोक से लाभान्वित करें।" वे मुस्कराये ! वात्सल्य उंडेला। और एक नपा-तुला उत्तर उन्होंने दिया—"जब समय आयेगा, रस-परिपाक होगा, तब सब कुछ हो जायेगा। तू स्वयं ही कर लेना। मेरा तो बस काम है कहना। उनके विषय में कुछ न कहना यह मेरे बस की बात नहीं है। वे मेरे सहस्र-सहस्र रोम कूपों में बसे हुए हैं। इसलिये जैसा मैंने उन्हें सुना और देखा, उसे कहते जाना मेरी नियति बन चुकी है।"

—उनके इस कृपामय आशीर्वाद से मुझे सुख तो मिला, किन्तु मन सन्तुष्ट न हुआ। यह मेरा अबोध था। फिर भी पूज्य गुरुदेव से जब जितना सुनता, मेरी श्रद्धा का अतिरेक उतना ही प्रगाढ़ होता जाता। समय सरकता, बीतता रहा। इस बीच एक दिन सहसा पूज्य गुरुदेव श्री योगिराज जी हम सब की आंखों से ओझल हो गये। उनके अभाव को मेरे टूटे मन ने किस तरह सहा और भोगा, यह तो मेरी निजी मनःस्थिति की दुखन है। इसके अनन्तर एक बात और सम्मुखस्थ हुई। पूज्य गुरुदेव योगिराज के अभाव में वन्दनीय चरितनेता के प्रति श्रद्धा-समर्पित जन मुझ से पूछने लगे—"आप ने श्री मायाराम जी म० के विषय में श्री योगिराज जी म० से क्या सुना ? आप उनके विषय में हमें कुछ बतायें।"

—मैं ने देखा—हरियाणा, पंजाब, देहली, उ० प्र० और निकट, दूर के प्रान्तों में श्री मायाराम जी म० के प्रति जन-मानस में अपार श्रद्धा है। श्रद्धाशील जन-मानस में अनेक जिज्ञासायें उमगित हो रही है।

—मैंने समीप आने वाले जिज्ञासुओं को पूज्य गुरुदेव से जो सुना था, वह उन्हें सुनाना शुरु किया। श्रोताओं की तीव्र अभीप्सा देखकर मेरे मानस में पुनः वे सुप्त विचार जागृत हुए और मैंने अनुभव किया—

श्रमणराज :

संयम की निर्धूम ज्योति-शिखा को प्रज्वलित करने वाले श्रद्धेय श्रमणराज श्री मायाराम जी म० निःसन्देह परम क्रान्तिकारी स्थानकवासी विचार-शृंखला के सुमेरू थे। उन्होंने महावीर की आचार-परम्परा को अपने विचार के द्वारा श्रद्धा दी थी। अपने आचार के द्वारा महावीर के पूरे दर्शन को प्रचारित और प्रसारित करने में अपने जीवन की आखिरी सांस भी लगा दी थी।

—१९वीं शती का वह महान् ज्योति-पुरुष जिसकी वाणी सुनकर जीवन-के-जीवन बदल जाते थे। पण्य योषितायें, नगर-नारियां वेश्यायें भी वैराग्य की प्रतिमूर्ति बन जाती थीं। उनकी वाणी की रूप-रेखाओं में ढल कर नास्तिक, विद्वेषी भी आस्तिक बन जाते थे। अहंकारी विनम्र श्रद्धान्वित हो जाते थे। सामंत युग के बड़े-बड़े राजा, महाराजा उनके सामान्य सेवक बन गये थे। बाईस स्टेटों के राजा जिस के संकेत पर एकत्रित हो सकते थे, वे अधिपति महाराणा फतेहसिंह, जिन्हें अपना सबसे बड़ा श्रद्धा-पुरुष मानते थे, तो वह महाव्यक्तित्व एक इतना बड़ा सत्य है, जिसको समझने और जानने की परम आवश्यकता है।

—अतएव उस महासत्य को लिखने की आवश्यकता मैं अनुभव करता था। श्रद्धालुओं की ओर से भी निरन्तर प्रेरणा-प्रद ये शब्द मुझे सुनने को मिलते रहे—"उस संयम-पुरुष का चरित्र अवश्य प्रकाशित होना चाहिये।" श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री ने जो शुभाशीर्वाद दिया था, वह भी मेरे मानस में सुनिधि की तरह सुरक्षित था।

— इन्हीं सब से उत्प्रेरित मन में लिखने का विचार बनता, लेकिन मैं रुक जाता। अनेक बार सोच-सोच कर ठहर जाता, कि यह सब चाहते हुए भी मुझ से क्योंकर होगा ? मैं 'महाप्राण' के मुनि-वर्ग का एक लघु मुनि ! अनुभव, विद्या, मेधा—सभी कुछ अल्प ! कालिदास की ये पंक्तियां मानस में कौंधती—

> क्व सूर्य-प्रभवो वंशः क्व चाल्प-विषया मतिः ?
> तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।

—कहां तो सूर्यवंश और कहां मैं अल्पबुद्धि वाला ? मानो मैं अज्ञानवश क्षुद्र नौका से विशाल सागर को पार करना चाहता हूं।

दीक्षा-शताब्दी :

—सन्देहों में भरा मन कुछ न कुछ काम करता रहा। मुनिराजों के प्रति मेरी अनन्य आस्था है। इसलिये मुनियों के संस्मरण एकत्र करता रहता हूँ। इसी शृंखला में मैंने चरित्र नेता श्री मायाराम जी म० तथा उन से सम्बन्धित अन्य अनेक मुनियों के संस्मरण एकत्र किये थे। सहसा आंकड़ों के संयोजन में मैंने देखा—महामना की दीक्षा-शताब्दी आ रही है। अन्तर में कुछ बलवती अदृश्य प्रेरणायें स्फुटित हुईं और मैं लेखन-कार्य में लग गया।

—कार्य प्रारम्भ हुआ तो वह सब कुछ होता चला गया, जिसकी मैंने कल्पना भी न की थी। महाश्रमण के प्रति श्रद्धान्वित बहुत बड़ा जन-वर्ग मुझे मिला। मैंने उन्हें दीक्षा-शताब्दी-हेतु सम्प्रेरित किया। तो सबने हर्षोल्लसित होकर उसे स्वीकृत किया। फलतः हरियाणा एवं दिल्ली में दीक्षा-शताब्दी के उत्सवों का सफल समायोजन हुआ। जनता ने अपने आराध्य संयम के देवता को भाव-पूर्ण श्रद्धायें समर्पित की।

—उस अवसर पर महामना से सम्बन्धित कुछ पुस्तिकाये एवं स्मारिकाये जिन में मेरे द्वारा कुछ अंकित एव जन-श्रद्धाये अभिव्यक्त थी, प्रकाशित हुईं। लेकिन उनके बृहत्-जीवनांकन का अभाव सभी को खलता रहा। मेरा संकल्प था कि यह पूर्ण जीवनांकन दीक्षा-शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हो, किन्तु अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण इस कार्य में विलम्ब हो गया। यद्यपि जीवनांकन हो चुका था, किन्तु तब यह मुद्रित न हो सका। अब यह मुद्रित होकर आपके सामने है।

—निमिषभर रुककर आज सोचता हूं—यह सब कैसा हो गया ? लगता है—श्रमण-धर्म के मुकुट पूज्य गुरुदेव योगिराज के उस महावाक्य "..........तू स्वय कर लेना" ने ही यह सब मुझ से करवा लिया है।

प्रस्तुत कृति :

—प्रस्तुत चरित्रांकन सर्वांगीण हो गया, ऐसा तो मैं नहीं मानता, क्योंकि उस महाश्रमण के जीवन, की घटनायें और कार्य तो बहुत अधिक थे। मैंने तो केवल-मात्र उनके जीवन के कुछ प्रसिद्ध अंश ही अंकित किये है।

—महामुनि के समाज-सुधार एवं मुनि-सङ्घ-विषयक कार्य मैं बहुत अल्प कह पाया हूँ। उनके साहित्यिक कार्यों के विषय में तो कुछ भी न लिख सका।

जब कि यह सर्वविदित है— वे केवल व्याख्याता व गायक ही नहीं थे, इससे भी अधिक वे चिन्तक एवं कवि थे। उन्होंने बहुत-सी गद्य एवं पद्य रचनायें हिन्दी, हरियाणवी व पंजाबी भाषा में की हैं। जो लोक-प्रिय हो कर लोक-जिह्वा पर चढ़ी है। लेकिन किसी भी रचना के साथ उन्होंने अपना नाम सलग्न नही किया। इसलिये उनके रचित पद्य आज जन-जन-द्वारा गाये जाते हुए भी नही जाने जाते, कि उनका रचयिता कौन है। कुछ पद्य मैंने संकलित किये है; किन्तु पूर्ण प्रमाण का अभाव होने से मैं उन्हें इस चरित्र-पुस्तक में प्रस्तुत नही कर सका। हस्त-लिखित शास्त्र व स्फुट पुराने पन्नों की भी यही स्थिति है।

—मुनि-श्रेष्ठ का केवल आगम और दर्शन ही विषय नही था। उन्होंने वेद, उपनिषद्, पुराण, कुरान आदि विविध ग्रन्थो को भी अपने अध्ययन का विषय बनाया था। उन पर उनका गम्भीर अध्ययन व मनन था।

—ज्योतिष पर भी उनका स्वाध्याय था। पूज्य आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ने जैन पंचांग के निर्माण पर उनसे अनेक महत्त्वपूर्ण परामर्श लिये थे। जैन ज्योतिष के विषय में उनका ज्ञान अतिमहत्त्वपूर्ण था। लेकिन इस विषय में वे अभिव्यक्त नहीं हुए थे।

—इस पूरी चर्चा में यह स्मरणीय है, कि महामना मुनिमूर्धन्य को स्वर्गस्थ हुए लगभग सात दशक अतीत हो आये हैं। इस बीच उनके विषय में कुछ भी लेखन नही हुआ। अतः बहुत से दुर्लभ सस्मरण विलुप्त हो गये।

—मुनिश्रेष्ठ ने कभी कहीं पर अपना नाम न चाहा, इसलिये अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्यों के सूत्रधार होते हुए भी वे अदृश्य बने रहे। बहुत से राजा, महाराजा उनके पादपद्मों के विनम्र सेवक बनकर गौरवान्वित हुए। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मनःप्रासाद में आमोद अनुभव करते रहे। पर महामना ने कभी उनसे न तो अभिनन्दन लिखवाये और न अपना नाम संयुक्त करवा कर 'पट्टे' ही अभिटंकित करवाये। फिर प्रयत्न करने भी मुझ अन्वेषक को घटित तथ्यों के प्रमाण कहा से और कैसे सम्प्राप्त होते?

—अस्तु, इन सब अपूर्णताओ के रहते हुए भी मैं यह सोचकर आत्मतोष का अनुभव करता हूं—मैंने कुछ कार्य किया है। इतिहास की शृंखला में एक कड़ी सलग्न की है। आंकने वालों के लिये इसका कुछ मूल्य होगा? इससे भी आगे—धर्म के उस महान् देवता को मैंने अपने अल्प सामर्थ्यानुसार विनम्र श्रद्धार्पित की है। यही मेरा सुख है।

—कृति कैसी बनी है ? इस पर कुछ सोचना तो मेरे लिये अनधिकार होगा ? मात्र इतना ही कहूंगा—मैं अपने इस लेखन एवं शोध-द्वारा प्राप्त सामग्री के प्रति पूर्णतः निष्ठावान् हूं । मैंने जो पाया, जो लिखा, वह अतिशयोक्ति नहीं है । जो है, वह सत्य है, तथ्य है, यथार्थ है । हां, अज्ञ लेखक के शब्द अपने हैं, वाक्य व भाषा अपनी है । उसमें कहीं त्रुटि हो सकती है; परन्तु कथित तथ्य अबाधित सत्य हैं । उसमें किसी प्रकार का कोई विकल्प नहीं हैं ।

पुस्तक-परिक्रमा :

—इस पुस्तक के तीन खण्ड हैं । (i) व्यक्तित्व (ii) परम्परा (iii) श्रद्धाबिन्दु । प्रथम खण्ड में चरितनेता महाश्रमण के जन्म, परिवार, वैराग्य, दीक्षा, शिष्य, आचार्यों से सम्बन्ध एवं उनका विचरण, जीवन में जो घटनायें घटित हुईं, वे अंकित हैं ।

—पाठक को लग सकता है, कि घटनाओं में कुछ चमत्कार है । मैं कहूंगा—जो भी चमत्कार किसी घटना में घटित हुआ, वह उनकी संयम-साधना का चमत्कार था, किसी मन्त्र-तन्त्र का नही । उनका स्वर-माधुर्य तो सर्व-विदित ही है । उनके सगीत में केवल कण्ठ-माधुर्य ही नही, उनकी आत्म-साधना स्फुट हुई थी, ऐसा 'स्तुति और समाधि' के भेद मे आप जानेगे । उनका सन्देश 'शून्य महल में······' तथा अन्त में उनका महाप्रयाण और लोक-अभिवन्दना है ।

—दूसरे खण्ड मे महाश्रमण के धर्म-बोध-प्रदाता गुरु, गुरुपरम्परा तथा गुरु-भ्राता और उनकी शिष्य-परम्परा का आलेख है । इस क्रमान्त में श्री केसरीसिंह जी म० व श्री अखेराम जी म० अंकित है; क्योंकि इनका सम्बन्ध भी स्पष्ट-रूप से श्री मायाराम जी म० के साथ था ।

मुनि-परम्परा के विषय में, इतना और कहना चाहता हूं । प्रत्येक मुनि का चरित्र अपने आप मे अद्भुत और अद्वितीय होता है । वह पूरी एक अलग पुस्तक की अपेक्षा रखता है । यहां पर मुनियो का मात्र संक्षिप्त परिचय ही अंकित किया है । संक्षिप्त विशेषण इसलिये कि स्वर्गस्थ मुनियों के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त न हो सकी । वर्तमान मुनि तो पाठक के सम्मुखस्थ हैं । अतः उन्हें पाठक स्वयं देख-पढ़ सकता है । दूसरे संक्षिप्त इसलिये भी अपनी-अपनी परम्परा से सम्बन्धित वर्तमान के मुनि-

प्रमुखों ने जो अपने तथा अपने गुरु एवं अपने शिष्य-समुदाय का परिचय व आंकड़े भेजे, वे सब यथावत् मैंने प्रस्तुत कर दिये हैं। हां, लेखन की दृष्टि से कार्य मेरा है, आंकड़े एवं परिचय उनका है। साथ ही मुझे जो परिज्ञात था, वह मैंने और संलग्न कर दिया।

तीसरे खण्ड में मुनिमना को अर्पित श्रद्धा-पुष्प हैं। ग्रन्थ अधिक न बढ़े, इसे ध्यान में रखते हुए लेखों का कुछ संक्षेपीकरण किया है, लेखकीय अधिकार मानकर।

तीनों खण्डों में क्या-क्या, कैसा-कैसा है और किस को कैसा लगा? इसको मैं पूरे सम्मान से महत्त्व देता हूं। मेरा हर पाठक समादृत है। मैं उनके सुझाव और विचारों का खुले हृदय से स्वागत करूंगा। किसी पाठक के मानस में कोई विशेष तथ्य समुपस्थित हो, तो वह उससे मुझे अपना समझ कर अवगत करायें, ताकि अग्रिम संस्करण में उसका उपयोग हो सके।

सहयोग ;

—प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में मुझे जो अनुभव हुआ, वह संभव है वर्षों लगाने पर भी न होता। जो न होता, वह इस लेखन में सहज ही मिल गया; क्योंकि सहयोग और असहयोग के सभी क्षण देखने का अवसर मिला। जो कुछ जैसा घटा, बीता, वह सब कहने के लिये नहीं, मेरे सहने के लिये है।

—मैं अन्तर्मन से उन सभी मुनिराजों का आभारी हूं, जिन्होंने इस अंकन में मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष-रूप से सहयोग प्रदान किया। स्वनामधन्य श्री टेकचन्द जी म० व मालवरत्न श्री कस्तूरचन्द जी म० का स्नेह-सौजन्य तो कभी मेरे मानस से विस्मृत न होगा। श्रद्धाधार पूज्य गुरुदेव से सुनी हुई, लेकिन काल-व्यवधान से धुंधला रहीं कई घटनाओं को श्री टेकचन्द जी म० ने सुस्पष्ट किया तथा मुनियों के जन्म, दीक्षा आदि के आंकड़े जो उनके पास थे, मुझे समुपलब्ध कर दिये। पूज्य श्रद्धेय महामना मुनिश्री की राजस्थान में घटित कई घटनाओं व तत्रस्थ मुनियों, आचार्यों के महामुनि के प्रति विचार एकत्र करने में मुझे मालवरत्न श्री जी से सहयोग मिला। श्री बनवारीलाल जी म० व श्री नेमचन्द जी म० ने अपनी परम्परा का विवरण समुपलब्ध कर मेरा कार्य सरल किया।

—मेरे पूज्य गुरुदेव महामनीषी, प्रसिद्ध विचारक, विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण

जी म० जिन्होंने अपने कृपापूर्ण सान्निध्य व निर्देशन से मुझे सम्बल दिया और आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। इस कार्य को चरम परिणति तक पहुंचाया। उनके प्रति मैं सदैव ऋणी हूं।

—प्रसिद्ध साहित्यकार कुमार सत्यदर्शी ने सम्पादकत्व का दायित्व सफलतापूर्वक निर्वाहित किया।

—प्रसिद्ध उद्योगपति जे० डी० जैन (गाज़ियाबाद) व श्रद्धाशील हुक्मचन्द जैन (देहली) ने प्रस्तुत ग्रन्थ को मुद्रित करा कर अपनी धर्मभावना अभिव्यक्त की है।

—कपूरचन्द सुराना (देहली), ज्योतिप्रसाद जैन (पटियाला), चौ० दरिया सिंह (बड़ौदा) ने इस कार्य में रुचि ली तथा यथाशक्य सहयोग देकर चरित्रनेता के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया।

—मुद्रण-व्यवस्था-हेतु श्रीकृष्ण जैन (डिप्टीगंज, देहली), सुन्दर-मुद्रण-हेतु पवनकुमार जी (शक्ति नगर) का अथक प्रयत्न रहा।

उपसंहार :

—अन्त में इच्छुक हूं कहने का—कार्य होता है, तो त्रुटियां भी होती है। कार्य न हो, तो त्रुटि भी न हों। लेखन के विषय में, मैं अपनी क्षमताओं से परिचित हूं। यह मेरा प्रथम प्रयास है। साथ ही चारित्र-चूड़ामणि लोकवन्द्य चरित्र-नेता श्री मायाराम जी म० के विषय में भी यह प्रथम कार्य है।

प्रेस की अविवश भूलों के लिये उदारता अपेक्षित है और आशा करूंगा—कि आप इस कृति का अध्ययन-मनन कर अपने विचारों से मुझे अवगत करायेंगे।

निम्न पंक्तियां कह कर विराम ले रहा हूं—

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥

सुभद्रमुनि

अनुक्रम

(प्रथम खण्ड) : व्यक्तित्व

द्वितीय खण्ड : परम्परा

तृतीय खण्ड : श्रद्धा-बिन्दु

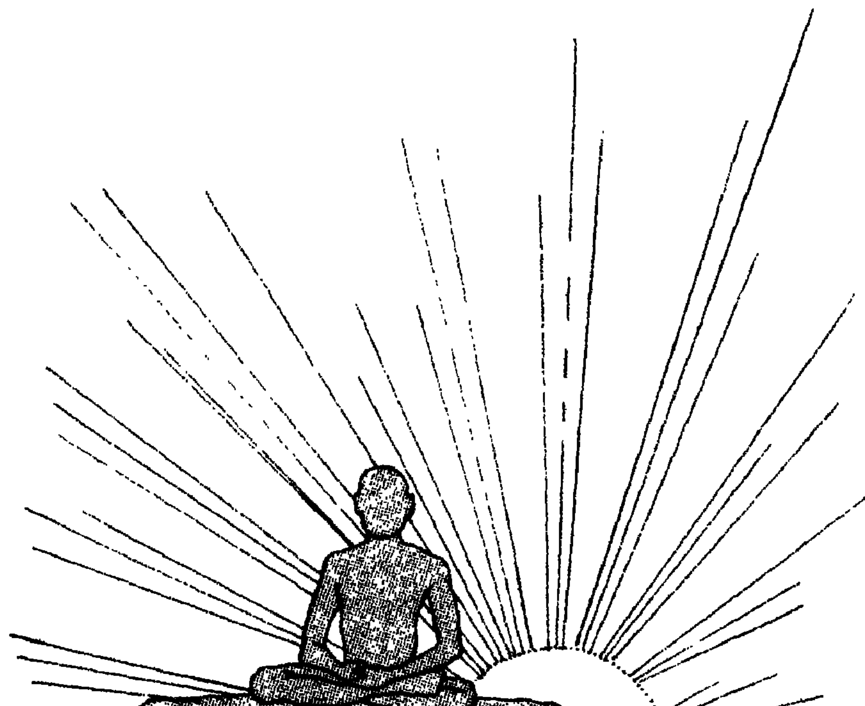
शुद्धि-पत्र

[प्रूफ शुद्धि का यद्यपि पूर्ण ध्यान रखा गया था; किन्तु फिर भी कुछ अशुद्धियां रह गयी है। अधिकांश अशुद्धियां प्रेस में अनुस्वार, मात्रा के टूटने तथा टाइप के गिर जाने से हुई है। इसके लिये हमें खेद है। कृपया अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ने का प्रयत्न करे। —सम्पादक]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	२४	सघ	सघ
१६	२१	मुन	मुनि
२७	४	गगा	गगा
२८	२८	वर	स्वर
२६	२२	आ	आप
३२	१	दिखात	दिखाते
३६	२४	वही	वही
४३	१२	स व।ओ	सखाओं
४६	१	अनुम दन	अनुमोदन
५०	२	खशी	खुशी
५१	२	हाकर	होकर
५२	२१	बदी	बदी
६२	१	ज ोत्थान	जनोत्थान
८२	७	सुन	सुनें
८४	१७	उनके	उनसे
८६	५	के	का
८७	२	मनि	मुनि
८६	४	लगगे	लगेंगे
६०	१५	सघ	सघ
६०	२५	दुष्कार्म	दुष्कर्म
६३	१३	रत्वन	रत्न
६६	१८	मयदाओं	मर्यादाओ
१०२	१३	फूल	फल
१०३	३/१०/१२	राज्यश्रय	राज्याश्रय
१०३	१५	राज्यश्रित	राज्याश्रित
१०६	२	सलाब	सैलाब
१३३	१५	जा	जो
१४६	१५	ल	ले लो
१५३	१४	द	दे
१५६/१६०	२५/२	१६६७	१६६८
१६०	१६	स्वीकृति	स्वीकृत

१६५	१०	के	को
१७१	२४	भिक्षचर्या	भिक्षाचर्या
१७६	७	में	से
१७६	२६	निर्मिमेष	निर्निमेष
१८७	२०	११०५	११०४
१८८	१६	वहां	कहां
१६६	२३	पचहुंते	पहुंचने
१६४	५	सुखदेवराम	सुखदेवराय
.१६६	६	का	की
२०५	५	वृश्र	वृक्ष
२०७	१४	जन	जैन
२०६	१६	गणवच्छेदक	गणावच्छेदक
२१०	११	मत्री	मैत्री
२११	६	स्वानाम	स्वनाम
२११	२८	इ होने	इन्होंने
२२३	८	सु ख	सुख
२२५	४	तच्व	तत्त्व
२२६	१३	गणवच्छेदक	गणावच्छेदक
२३१	१६	सन्	संवत्
२३१	२०	है	हैं
२३२	४	हैं	है
२३६	२०	लिए	के लिए
२४०	२	ये	में
२४१	१०	का	के
२४२	११	तक	कर
२४६	१	चपंमी	पचमी
२४६	६	स्थार	स्थान
२४६	१८	को।	को
२५५	६	को	कोई
२५६	६	दसरा	दूसरा
२६१	११	जी	जा
२७०	११	पूत:	पूत
२७२	५	ास	पास
२७५	२	विग ति	विगलित
२६४	१०	वराग्य	वैराग्य
२६७	१५	लकड़ी	लड़की
३०५	६	से	मे
६१०	६	आगती	जगाती
३१३	१३	लाभ	लोभ

व्यक्तित्व



1

जन्म : जीवन : मृत्यु निमंत्रण !

जन्म, मृत्यु है।
मृत्यु, जन्म है।
'जीवन', जन्म और मृत्यु का विनाश है।
जन्म, मृत्यु की नींव पर टिका है।
मृत्यु अगले जन्म की आतुर पुकार है।
एक तरह से और समझें—
जन्म, मृत्यु का मौन निमंत्रण है।
मृत्यु, जन्म की जननी है।

\+ \+ \+

मुनि 'जीवन' पाता है। मृत्यु को मिटाता है। जन्म का नाश करता है। 'जीवन' पाने का अर्थ है—मुनि का जन्म। 'जीवन' पाते ही जन्म और मृत्यु का विनाश हो जाता है।

मुनि, मुनित्व की साधक अवस्था के हर क्षण में जन्म और मृत्यु की विनाश लीला देखता रहता है—अर्धनिमीलित नेत्रों से। इसी लिए हम मुनि को जन्म व मृत्यु का विनाश करने वाला—प्रलयंकारी 'शिव' कहते हैं।

..........वह शिव है। जन्म और मृत्यु दोनों उसकी निर्मल दृष्टि में सब दिखाई देते हैं। शिवत्व के सुखासन पर बैठा वह ज़न्म व मृत्यु दोनों का श्वास प्रतिश्वास विनाश करता रहता है तथा शाश्वत 'जीवन' (आत्मा) को सदैव मौन निमंत्रण देता रहता है।

न ज़िंदगी कुछ, न मौत कुछ, सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है,
किसी की आंख खुल गई, किसी को नींद आ गई।

\+ + +

एक कथा है, अद्भुत! चीन में तीन संत थे। उन्हें लोग हंसने वाले संत कहते थे। वे हमेशा हंसते रहते थे।

शहर के, गाँव के, चौराहे पर पहुंचे। भिक्षा नहीं मांगते हंसते रहते। पहले एक हंसता। उसे देख दूसरा और ज़ोर से हंसना शुरू करता। तीसरा भी उन्हें हसता देख, हंसने लगता। लोग इकट्ठे होते। धीरे-धीरे उन्हें देखने इकट्ठी हुई पूरी भीड़ हसने लग जाती।

लोग पूछते तुम भिक्षा नहीं मांगते, हंसते ही रहते हो। वे कहते—"तुम बिना भिक्षा मांगे ही दे रहे हो, तो मांगने की क्या ज़रूरत है? हंसना हमारा उद्देश्य है। हंसना हमारी भिक्षा है। तुम हस रहे हो, हमें भिक्षा मिल रही है।

..........और वे आगे चल देते। शहर-शहर घूमते। गली-गली भटकते। गांव-गांव फेरी देते और बस हंसते रहते थे। सब पूछने वालों को उनका एक नपातुला उत्तर होता—"हसना-हंसाना हमारा उद्देश्य है। इसी में हमारा सन्देश है, इसी में हमारी भिक्षा है।"

इसी तरह उन्होंने बहुत वर्ष गुज़ार दिए। आखिर वे बूढ़े हो गए। एक दिन उन तीनों संतों में से एक मर गया। सारा शहर बचे दो संतों को देखने उमड़ पड़ा। सोचा—"हंसने वाले साधु आज ज़रूर रो रहे होंगे। देखें—उनका रोना कैसा होगा?"

संत तब भी हंस रहे थे। सारा शहर, जिसने भी सुना वही, एक साथ—आश्चर्य के गर्त में समा गया।

पूछा—"तुम्हारा साथी मर गया। वह हमेशा के लिए तुम से छिन गया फिर भी तुम्हें हंसना कैसे आ रहा है ?"

बचे दो संत बराबर हंसते जा रहे थे। एक ने कहा—"हमारी पूरी जीवन-साधना का आज रहस्य प्रकट हो गया। आप को भी पता चल गया इसी लिए हम हर दिन से अधिक हंस रहे हैं।"

"कैसे ?"

"आज एक रहस्य प्रकट हो गया—हमारा वह साथी इन अल्प के लिए नहीं था। पहले वह निरंतर मृत्यु के निकट पहुंच रहा था। आज वह अनंत में समा गया। रहस्य खुल गया—मृत्यु हर मनुष्य के निकट सरक रही है। हम मृत्यु को मिटाने के लिए हंसते हैं। हसते ही रहेंगे। तुम क्यों रुक गए ? तुम भी हंसो।

आज तक का हंसना उतना सार्थक नहीं था। जितना आज है। यह रहस्य प्रकट हो गया। इसे देख हमें और हंसना है। तुम भी हंसो। हम भी हंसे। यही सार्थक हंसी है। हंसना जीवन है। उदासीनता मृत्यु है, अंधकार है।

उस संत की अर्थी तैयार की गई। लोग उदास बने अर्थी के साथ चलने लगे। दस ही कदम चले थे कि संतों ने कहा—"ठहरो।" ·········लौट जाएं वे लोग जो उदास हों। मरने वाले को उदासीनता पसंद नही थो। कुछ लोग लौट गए।

श्मशान पहुंचे, वहा भी हसी। श्मशान के प्रबन्धकर्ता भी अनोखे मुर्दे की बाते सुन हंस पड़े। खूब हंसे। अर्थी के साथ गए सभी व्यक्ति हसे। लगा जैसे पूरी श्मशान भूमि जो हजारों वर्षो से रोने वालों को देखती आ रही थी, आज वह भी हंस पड़ी।

इसे जरा समझते चले—

'हसना' जीवन है। क्यों ?

·········कभी आपने हंसते हुए आदमी को क्रोध, घृणा करते देखा है ? कभी हंसते हुए आदमी को देखा, कि वह किसी की हत्या कर रहा है ?

.........देखा आपने कभी घृणा, अपमान, अहंकार, तृष्णा की किसी ऐसी अवस्था में बीतते हुए—किसी हंसने वाले आदमी को ?

हंसने वाला व्यक्ति हर व्यक्ति का सम्मान करता है। प्रत्येक मानव को वह सहज अपनत्व देता है।

.........नहीं देखा होगा आपने ऐसा व्यक्ति जिसमें क्रोध, घृणा, लोभ, अहंकार भी रहे हों—फिर भी वह सरल सहज, निष्पाप, निष्कपट रहा हो। बोझ, तनाव, हिंसा, क्रोध, अहंकार दुनिया का कोई पाप आपने नहीं देखा होगा—प्रसन्न रहने वाला आदमी करता हो। व्यभिचार, अनाचार, अत्याचार किया, किसी ऐसे आदमी ने जिसके प्राणों के चारों ओर आनन्द बरसा हो, हंसी बिखरी हो।

\+ + +

मौत के बाद की उदासी हमारे प्राणों को कंपा देती है। इस लिये हमें ऐसे धर्म-सन्देश देने वाले, ऐसी ही आनन्द-बांसुरी बजाने वाले संयम के एक-निष्ठ गायक महापुरुष की जरूरत थी जो मनुष्य की इस पीड़ा को हर सके। उसे ऐसा शाश्वत आनन्द दे सके, जो न कभी दूर हो और न कोई उसे छीन पाये।

वह महापुरुष १९वीं शती में हमारे बीच आया। उसने हमारी संस्कृति को महावीर के विचार और आचार के बीजमन्त्र दिये। जिन्होंने उन बीजमन्त्रों को बोया, उगाया वे खुशी में नहा उठे। आनन्द में खो गये। उन्ही बीजमन्त्रों से १९वीं शती के बाद मे 'संयमनिष्ठा' की लम्बी परम्परा स्थापित हुई—जो आज स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय का तिलक बन कर दीप्त हो रही है।

2

महाप्राण मुनि मायाराम

मुनि पहले हुआ।

समाज बाद में।

ईसा बहुत बाद में हुआ।

\+ \+ \+

.........उसे माया चिमटी। उसने उससे पल्ला छुड़ाना चाहा। वह क्रोध, अहंकार, ममत्व से बिंध गया। उसके रोम-रोम में पीड़ा होने लगी। उसका एक भी क्षण अन्तर्दाह से खाली न रहा।

यह क्रम, जब से मुनि सामाजिक हुआ था, तभी से चला आ रहा है।

\+ \+ \+

संवत् १९३४ में मुनि हुआ। वह पहले अन्तर में जागा था। उसका अन्तर आलोक से भर गया। जब उसका अन्तर आलोक से भर गया, तब उसने जनहित में आँखें खोलीं। जगत् को जगाया। जो जाग गया, वह भी आलोक से पूर्ण हुआ।

कौन था वह ?

वह था—धर्म-शास्ता, संयम का पर्याय, 'महाप्राण मुनि मायाराम'।

समाज ने, मुनि-संघ ने उन्हें, विविध विशेषणों से सम्बोधित किया। इन सब विशेषणों का कथन-अंकन एक दीर्घ परम्परा है। इसमें अन्तिम सत्य यह है—वे अनिर्वचनीय थे।

\+ \+ \+

उन्हों ने संयम पाया। संयम ही दिया। जहाँ गये, वहीं दिया। जिस ने उनकी आँखों में झाँका, वह संयम से भर गया। जिस ने उनके चरण भेंटे, वह पारस हो गया।

·········वहाँ जाति का भेद न था। वहाँ प्रान्त का विष न था। वहाँ सम्प्रदाय की भटक न थी। वहाँ शिष्यत्व का मोह न था। जो था—अमृत था। सहज था। संयम था। सत्य था। विभ्रम न था। जो था—विमल था। अक्षर था। निरहंकार था।

\+ \+ \+

प्रसिद्ध है—वे गाते थे। अत्यन्त माधुर्य था उनके स्वर में। पर इतना ही नहीं, उनके स्वर में महावीर का अनेकान्त, बुद्ध का शून्य राम की मर्यादा, कृष्ण की स्थितप्रज्ञता, शंकर की निस्संगता थी। इन सबको उन्होंने स्वय पाया, जगत् को दिया। समाज में बखेरा। व्यक्ति-व्यक्ति को आत्म-बोधि मन्त्र दिया।

···१९ वीं शती के बाद, देखा आपने कहीं ऐसा ज्योति-पुरुष! कैसी बात?

क्या वैसा दिव्य पुरुष आज तक न हुआ? बहुत हुए हैं। पर जानते हो, इसका केन्द्र १९वीं शती में है। वहीं से सब संचालित हो रहा है। वहीं के हिलाये हिल रहा है सब कुछ। मुनि समाज में सयम नाम का तत्त्व मौजूद है। यह उसी महाप्राण मुनि मायाराम की देन है। संगठन, सम्मेलन और आचार एकता के स्वर बार-बार उभर रहे हैं, इनके मूल में श्री मायारामजी म० के बीजमन्त्र काम कर रहे हैं। जातिवाद के ध्वंस का नारा स्थानकवासी समाज में सर्वप्रथम उन्हों का लगाया हुआ है। वह प्रतिध्वनित होकर आज गूँज रहा है।

उन्हों ने अध्यात्म की माया बखेरी थी।

………वह पल्लवित हुई। पुष्प महके। धरती का आँगन चहक उठा। उन्होंने संयम के बीज मन्त्र दिए।

………परवर्ती मुनियों ने वे सींचे। जिन मुनियों ने उन्हें सींचा, वे कृतार्थ हो गए। वे बाहर को भूल गये। उनका अन्तर अनत खुशियों से भर गया।

+ + +

वे असीम थे। अनन्त में रमे। आनन्द में खोये। एक संगीत छोड़ा था, उन्होंने………जो आज भी बज रहा है। आओ उसे सुनें।



3

तीर्थ-भूमि

श्रद्धास्पद श्री मायाराम जी म० के चरित-लेखन में सर्वत्र, संयम, त्याग, वैराग्य, योग और मुनित्व की चर्चा इष्ट है । वर्तमान का मुनि हो या अतीत का श्रद्धेय के ऊर्जस्वल जीवन का अकन और महत्त्व ही श्रद्धालु को प्रिय होता है । उसे उसके जन्म-स्थान, जाति परिवार, प्रदेश, भाषा आदि से कोई सरोकार नहीं होता । तथापि हम उनके मुनिदीक्षा से पूर्व का अंकन इसलिए कर रहे है, कि वहाँ से भी साधक कुछ पाए । स्वयं को जगाने को प्रेरणा शक्ति को प्राप्त करे । कालजयी पुरुषों का 'जीवन' पाने से पहले का परिचय इसीलिए आवश्यक भी है । अतः जन्म-स्थान से लेकर दीक्षापूर्व का सक्षिप्त परिचय रेखाँकित किया जा रहा है ।

बड़ौदा ग्राम :

बड़ौदा ग्राम हरियाणा-संस्कृति का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व करता है । यहाँ की मिट्टी में स्नेह की सुगध है । मान-मर्यादा सरलता और भक्ति का आनन्दनद यहाँ दिन-रात बहता रहता है ।

यहाँ के लोग, त्याग-तपस्या, सदाचार और साधुता के पुजारी हैं । वैसे तो भारतवर्ष ही ऋषि-मुनियों का देश है । परन्तु इस ग्राम की अपनी निजी विशेषता है, कि भक्ति-भावना, भगवद्भजन और

बन्धु-भाव में यहाँ के लोग भीगे रहते हैं। खेत में हो, खलिहान में हो, गाड़ी के जुए पर बैठा किसान हो, चाहे घास का गट्ठर सिर पर उठाये आ रहा कृषक हो, भगवद्-भक्ति के गीत गुनगुनाता मिलेगा। जब वह किसी सन्त को देखता है, तो उसके कर बरबस अंजलीबद्ध हो जाते हैं।

उद्भव और विकास :

इस ग्राम की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के विषय में खोज करने पर पता चला है, कि यह ११वीं शती में अस्तित्व में आ चुका था; किन्तु १५वीं शती के बाद से तो आज तक के प्रमाण निरन्तर उपलब्ध है। सर्वप्रथम यह ग्राम किसने बसाया ? इसके प्रमाण अनुपलब्ध हैं। श्रुति-परम्परानुसार यह ग्राम किसी समय हिन्दू जुलाहों का ग्राम था। उनके यहाँ ५०० परिवार थे। ५०० परिवारों का यह हिन्दू जुलाहों का गाँव कितने समय में समृद्ध होकर इस संख्या तक पहुंचा होगा, यह भारत के गाँव बसने और उजड़ने की कालयात्रा से ज्ञात किया जा सकता है।

समय बीतता रहा। इस बीच इस गाँव में कुछ मुसलमान राजपूत आकर बस गए। हिन्दू जुलाहों का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया। दिन-प्रतिदिन वे क्षीण होते गए और मुसलमान बढ़ते गए। उनका मकान-से-मकान सटा। आदमी बढ़े। पूरा गांव मुसलमानों की आबादी से भर गया।

यहाँ आते-आते इतिहास ने अपने आपको दुहराया। या यूं कहें कि नियति ने करवट बदली। पंजाब-स्थित बुढलाडा मण्डी के निकट-वर्ती गाँव मत्ती, (जो अब भी वर्तमान है—यह पहले भी चहल-गोत्रीय जाटों का गांव था, और आज भी है) के दो चहल-गोत्रीय जाट (क्षात्रवंशी) भाई किन्हीं पारिवारिक कारणों से गाँव छोड़कर चल दिए।

उन में से एक छोटा भाई बड़ौदा के समीप बोबुआ ग्राम में जाकर परिवार-सहित बस गया। बड़ा भाई जिसका नाम जगतराम

था, बड़ौदा के समीप सहेड़ीखेड़ा नामक स्थान में रहने लगा। वहाँ उसके परिवार की वृद्धि हुई। एक दिन उसने सोचा—परिवार बढ़ता जा रहा है। सहेड़ीखेड़ा परिवार के लिए उचित और योग्य स्थान नहीं है। अतः किसी योग्य स्थान पर निवास करना चाहिए। उसने बड़ौदा ग्राम के मुसलमानों से सम्पर्क किया। मुसलमान बन्धुओं का स्नेह निमन्त्रण मिला। चौ० जगतराम अपने दोनों पुत्र—चौ० जांडू सिंह और चौ० लोड सिंह सहित बड़ौदा में आकर रहने लगे।

हमने कहा—इतिहास अपने को दुहराता है। जगतराम बडौदा में आए। कुछ समय पश्चात् मुसलमानों का ह्रास होने लगा। धीरे-धीरे उनका अस्तित्व मिट चला। चहल-गोत्रीय जगतराम का परिवार, बढ़ते-बढ़ते पूरे गाँव में छा गया। आज चहल गोत्रीय उस परिवार की संख्या एक हजार से बारह सौ तक पहुंच गई। चौ० जगतराम के दोनों पुत्र गाँव के दो भागों में विभाजित होकर रहे थे। इस हेतु बड़े पुत्र के परिवार से बड़ी आल और छोटे पुत्र के परिवार से छोटी आल प्रसिद्ध हुई। बड़ी आल से आगे चलकर स्वतन्त्र एक गाँव बसा, जिनका नाम बड़ौदी अभिहित किया गया। बडौदी भी वर्तमान में जैनों का ही ग्राम है।

बड़ी आल :

बडी आल की एक अनूठी विशेषता यह है कि संवत् १९३४ से आज (संवत् २०३४) तक, इस सौ वर्ष की अवधि में यहाँ से एक सन्त-धारा बही, जो आज तक अखण्ड बहती चली आ रही है। भारत की धर्म धरती पर यह अकेला ही ऐसा गाँव है, जहा से मुनि बनने की परम्परा क़ायम हुई, जो सौ वर्ष से बराबर चली आ रही है। एक ही गोत्र और एक ही जाति के मुनियों की अखण्ड-परम्परा अन्यत्र मिलनी असम्भव है। यह धर्म-जगत् का बहुत बड़ा आश्चर्य है।

बड़ौदा तब और अब :

मुनिमना श्री मायाराम जी म० के समय में बड़ौदा ग्राम पटियाला स्टेट के अन्तर्गत था। उस समय पटियाला स्टेट में महा-राजा नरेन्द्र सिंह का शासनकाल चल रहा था।

इस समय बड़ौदा हरियाणा प्रदेश के जींद जिलान्तर्गत है। देहली से पंजाब जाने वाले मार्ग पर पार्श्व प्रहरी की तरह यह जींद से दस मील दूर आगे खड़ा मिलता है। पंजाब से देहली आने वाले व्यक्ति को नरवाना से १२ मील आगे आना होता है।

बड़ौदा में धर्म की प्राचीनता और जैनत्व के बीज खोजने पर हम ने पाया कि यहाँ जैन-धर्म ऐतिहासिकरूप में विद्यमान है। प्रचार, विस्तार क्षेत्र की खोज करने पर हम पाते हैं—

संवत् १८६५ (फाल्गुन शुक्ला ११) में तपस्वी श्री रूपचन्द जी म० ने मुनि-दीक्षा बड़ौदा ग्राम में ग्रहण की थी।

बड़ौदा ग्राम, श्री मायाराम जी म० से पूर्व श्री गंगाराम जी म० व श्री रतिराम जी म० का विशेष स्नेहभाजन रहा था। यहाँ इन मुनिराजों ने कितने ही चातुर्मास किये हैं।

महान् तपस्वी श्री नीलोपद जी म० के बड़ौदा चातुर्मास करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

एक तथ्य स्मरणीय है। पहले बड़ौदा ग्राम में जैन धर्म केवल वश्यों का धर्म कहलाता था। अन्य जातियों में इसका प्रचार-प्रसार नहीं था। आज स्थिति यह है कि अखण्ड गाँव अपने को जैन कहलाने में परम गौरव का अनुभव करता है। पूरे हरियाणा प्रान्त में एक-मात्र बड़ौदा ग्राम ही ऐसा ग्राम है, जो जन-गणना के समय सरकारी आँकड़ों में 'जैनों का ग्राम' अभिलिखित किया जाता है। यह सब महाश्रमण श्री मायाराम जी महाराज का प्रभाव है।

इस प्रसंग में यह उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं हो रहा है कि—

श्री मायाराम जी म० ने संवत १९३४ में मुनि-जीवन की दीक्षा लेकर यहाँ के जन-मानस में त्याग की जो चिंगारी छोड़ी थी, वह प्रज्वलित हुई। परिणाम-स्वरूप एक के बाद एक, अनेक ग्रामवासी प्रभावित हुए और उन्होंने श्री मायाराम जी म० के संयम-पथ को स्वीकार किया। यहाँ उन श्रद्धेय महापुरुषों के नाम स्मरणीय हैं—

श्री जवाहरलाल जी म०, श्री केसरीसिंह जी म०, श्री नानकचन्द जी म०, श्री देवीचन्द जी म०, श्री सुखीराम जी म०, श्री रामनाथ जी म०, श्री हिरदुलाल जी म०, श्री अखेराम जी म०, और पूज्यपाद योगिराज श्री रामजीलाल जी म०। वर्तमान मे भी यह मुनि-परम्परा विद्यमान है।

तीर्थ-भूमि :

अस्तु। बड़ौदा ग्राम तब जो था वह इतिहास का सत्य है। वर्तमान का सत्य है—मुनि मायाराम जी का श्रद्धापुंज स्मारक। यही कारण है उमगित मन से और अति उत्साह से धर्मजगत् के इस तीर्थ की पुण्य-धरा का स्पर्श करने श्रद्धालु जन जाते है। वहा पहुच कर सच-मुच मुनिजन और गृहस्थजन खुशी मे नहा उठते है।

अन्त में हम कहे—इस ग्राम को तीर्थ-भूमि कहलाने का पूरा श्रेय परम श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० को ही है। १२५ वर्ष के बाद भी मुनि मायाराम जी की उर्वरा जन्म-भूमि आज भी मुनित्व के बिरवे उगा रही है।

4

वंश और परिवार

महत्व इस बात का नहीं है, कि श्री मायाराम जी म० का वंश-परिचय क्या है ? न मूल्य इस बात का है, कि उनके परिवार का क्या परिचय है ?

महिमा इस बात की है कि, श्री मायाराम जी का वंश महिमा-मंडित श्री मायाराम जी म० जैसी विभूति से कितना प्रभावित, आकर्षित और श्रद्धावनत हुआ।

वंश-परिचय जानना हमारे लिए इसलिए ज़रूरी है, कि श्री मायाराम जी म० द्वारा प्रतिबोधित बड़ौदा के अनेक-विध व्यक्तियों ने जिन-दीक्षा स्वीकार की थी। ये सभी परस्पर वंश-परम्परा की दृष्टि से सम्बन्धित थे। कौन, कहाँ, किस से, कैसे सम्बन्धित थे? इसका विवरण वंश-परिचय से जाना जा सकेगा।

बड़ौदा ग्राम में चहल वंश के जनक चौ० जगतराम के बड़े पुत्र की परम्परा में कई पीढ़ी व्यतीत होने के पश्चात् चौ० रूपचन्द हुए। ये सर्वप्रथम नम्बरदार बने। इससे पूर्व नम्बरदारी बड़ौदा में बसे मुसलमानों के पास थी। चौ० रूपचन्द के बाद नम्बरदार का पद इस कुल में निरन्तर चलता रहा। आगे चल कर इसी क्रम में चौ० गरीबूराम हुए। यहाँ से आगे का परिचय निम्न तालिका से जान

सकेंगे—

नम्बरदार चौ॰ गरीबूराम

- नम्बरदार चौ॰ तुरतीराम
  - नम्बरदार चौ॰ जोतराम
    - चौ॰ आदराम जी
    - श्री मायाराम जी म॰
    - श्री सुखीराम जी म॰
    - श्री रामनाथ जी म॰
- चौ॰ आशाराम
  - चौ॰ रामदयाल
    - श्री जवाहरलाल जी म॰
    - श्री हिरदुलाल जी म॰
    - चौ॰ गुणियाराम जी

चौ॰ गरीबूराम की ऊपरस्थ पीढ़ियों में श्री केसरीसिंह जी महाराज, श्री देवीचन्द जी महाराज, योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज के पिता, पितामह आदि संलग्न हैं।

श्री मायाराम जी का पारिवारिक परिचय भी लगे हाथ समझते चलें। छोटा सा परिवार, परन्तु विलक्षणता बहुत अधिक।

नम्बरदार जोतराम :

नम्बरदार जोतराम जी जीवन-चरिताधार श्री मायाराम जी के पूज्य पिताजी थे। इनका निजी परिचय प्रसंगानुसार समझ, जान लीजिये —

नम्बरदारी का पद उस युग में आदर, महत्त्व, बुद्धि-कौशल का सूचक था। इससे वे अलंकृत थे। इसके अलावा कृषि, पशुपालन आदि के द्वारा समृद्ध थे। बड़ौदा ग्राम में उनका यश और आर्थिक महत्त्व पूरी तरह से व्याप्त था। वे स्वभाव के साधु पुरुष थे।

उनकी सहृदयता और आतिथ्य-सत्कार की भावना ही उनकी कीर्तिपताका थी। पूरा गांव उनके आतिथ्य-गुण के कारण प्रभावित था। बड़ौदा के आस-पास से कोई भी पथिक बड़ौदा में काम से आता।

यातायात के विपुल साधन न होने के कारण रात्रि-विश्राम करता, सब का उनके यहाँ भरपूर स्वागत होता था। वे अतिथि को देवता-तुल्य मानकर उसका यथोचित सत्कार और सम्मान करते थे।

अकाल की स्थिति में, सच कहा जाये, तो वे भामाशाह बन जाते थे। जब आस-पास ग्रामों में वर्षा के अभाव से अकाल की स्थिति उत्पन्न होती थी, तब उन्हें नम्बरदार, जोतराम याद आते थे। अकालग्रस्त लोग अपना गाँव छोड़ कर उनके पास जाते और सहायता माँगते।

चौ० जोतराम से उन्हें पूर्ण सहयोग, आश्रय प्राप्त होता था। सद्गृहस्थ की चर्चा में हमें कबीर की याद आती है।

कबीर पूरी ज़िंदगी गृही रहे। निरक्षर रहे। पर जिस निरक्षर कबीर ने, जुलाहे का कर्म करते हुए, जो अक्षर-गीत, अक्षर-पद, अक्षर-राग छेड़ा, उसकी अमर-ध्वनि चार शताब्दी बाद भी सुनाई पड रही है। जोतराम नम्बरदार भी निरक्षर थे, परन्तु कृषि-कर्म करते हुए उन्होने जैनत्व में आस्था का नाद बजाया। वह आज तक बजता हुआ स्पष्ट सुनाई दे रहा है।

माता शोभावती :

मायाराम जी की पूज्य माता का नाम श्रीमती शोभावती था। हिसार ज़िला अन्तर्गत घिराह गाँव में वे जन्मी थी। नम्बरदार जोतराम की जीवनसंगिनी बनी। श्री मायाराम जी को अपनी कूख से जाया। उस मायाराम को जाया, जिसका हम यथामति कुछ अकन करने जा रहे हैं। श्रीमती शोभावती साक्षर नहीं थीं, परन्तु शील सदाचार, साधुता में उनकी अनन्य आस्था थी। हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं, कि माता शोभावती के धर्ममय शुभ सस्कारों के कारण ही मुनि मायाराम जैसा महाव्यक्तित्व सघ, समाज, राष्ट्र को प्राप्त हो सका।

भाई :

मायाराम जी स्वयं सहित चार भाई थे। चारों भाइयों की

अपनी-अपनी विशेषता है—जिसे यथा स्थान क्रमश: हम पढ़ें, समझेंगे ही किन्तु प्रकृति का चमत्कार देखिए, उनका जन्मक्रम कितना विलक्षण है।

आदराम जी को माता शोभावती ने सवत् १९०८ में जन्म दिया। मायाराम जी को सवत् १९११ में पृथ्वी पर उतारा। सुखीराम जी को सवत् १९१४ में। रामनाथ जी को सवत् १९१७ में जन्मा।

चारों भाइयों में लगभग तीन-तीन वर्ष का अतराल। ●

5

जन्म व शिक्षा

श्री मायाराम जी का 'देह जन्म' संवत् १९११ सोमवार आषाढ बदि २ (ईस्वी : १२ जून १८५४) में हुआ। उनकी पूज्य माता श्रीमती शोभावती थीं। पिता श्री जोतराम नम्बरदार के नाम से जाने जाते थे। शोभावती का मन उस दिन खुशियों से भर गया, जिस दिन उसने अपने सलौने लाल मायाराम को जन्म दिया।

बड़ी आल के सभी लोगों ने खुशियां मनाईं। बधाई दी। परिवार के सगे, पड़ौसी और रिश्तेनाते के लोग आए। महिलाएं मंगल-गीत गाती हुई समुद्र की लहरों-सी उमड़ीं। इस बधाई-वेला में सबने मिलकर उस चांद-से बालक का नाम रखा—'मायाराम'।

पीछे हमने जाना—चौ० जोतराम का घर-परिवार हर भांति समृद्ध था। धन-धान्य, वैभव, पशु, जमीन के साथ प्रतिष्ठा भी प्रचुर थी। पिता समृद्ध हो, ऐसे में शिशु का शैशव सुखमय बन जाता है। प्रस्तुत में भी स्वाभाविक सत्य है—मायाराम जी का शैशव मोदपूर्ण क्षणों में बीता हुआ।

'मायाराम में कुछ विलक्षणता है'—ऐसा सब मानते थे। परिवार, आस-पड़ोस सब की दृष्टि उन पर टिकी थी। यह विलक्षणता केवल शरीर तक ही नहीं थी। प्रत्यक्षदर्शियों के कथनानुसार हम कहते हैं—मायाराम जी में शारीरिक सौन्दर्य अद्भुत था। किन्तु

कायिक सौन्दर्य से तो बहुत व्यक्ति युक्त होते हैं। उनमें दैहिक सौंदर्य के साथ-साथ और भी विशेषता थी। अल्पावस्था होने पर भी विचारों में परिपक्वता, शालीनता, सौम्य-मृदु व्यवहार, पूज्यजनों के लिये विनयभाव।

उनके कार्य-कलापों को दृष्टिगत कर—सब सोचते थे—भविष्य में यह कुछ बनेगा! चहल गोत्र का प्रकाश होगा!! पर बनेगा कैसे? इस सम्बन्ध से कोई स्पष्ट चित्र किसी के मस्तिष्क में न था। सामान्य रूप से अशिक्षा-पूर्ण ग्राम्य जीवन था। बड़ौदा तो क्या? आस-पड़ौस के गाँवों में भी शिक्षा-स्थान न था। ऐसे में ही मायाराम को रखा जा रहा था। पर आशायें थीं—यह बाल रवि पूरे चहल वंश को अपनी सुनहरी किरणों से द्योतित करेगा।

जीवन जौहरी : एक युग्म

इस बीच जीवन के सच्चे जौहरी दो मुनिराज हमारे सामने आते हैं। इन्हें हम जान लें। ये मुनि हैं—श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म०।*

श्रद्धेय जीवन-चरिताधार श्री मायाराम जी म० जिस समय केवल बालक मायाराम थे, उस समय ये मुनि विचरण-क्रम से बड़ौदा ग्राम में आते रहते थे। बड़ौदा उनका विशेष कृपा-पात्र क्षेत्र था। इस मुनि युगल का विचरण-स्थल हरियाणा प्रदेश था। ये मुनि मन्त्र, तंत्र, ज्योतिष स्वर-विज्ञान, लक्षणशास्त्र, शकुनशास्त्र के महान् ज्ञाता थे। अन्वेषण की दिशा में वे गहरे पैठे हुए थे। पुरातत्व के ज्ञाता, अनुपलब्ध ग्रंथों के जीवित ग्रंथागार थे।

बड़ौदा वे अक्सर आते। ठहरते। जन मानस को जगाते। रहते और चले जाते। एक दिन उन्होंने सहसा बालक मायाराम को देखा। बालक को कोरी आँखों से देखा, तो उनका ज्योतिर्विज्ञान लक्षण-बोध, शकुनविद्या सब का सुमेल स्थापित हो गया। उनके ज्योतिष ने देखा—यह ज्योतिपुरुष बनेगा। उनके लक्षण-विज्ञान ने

---

* विशेष परिचय परम्परा-खण्ड में देखिये।

बताया—यह राज्योचित सम्मान पाएगा। शकुन-विचार ने उन्हें कहा—यह महान् क्रांतिकारी पुरुष बनेगा।

बनेगा कैसे ? मुनि प्रवर स्वयं नहीं आंक पा रहे थे।

ज्योतिष-शास्त्र से प्रेरित मुनियों ने प्रथम परिचय हेतु जीवन-चरिताधार से उनका नाम पूछा। माता-पिता, जाति का परिचय ज्ञात किया। पश्चात् एक दिन चौ० जोतराम से सम्पर्क कर उन्होंने कहा—नम्बरदार ! तुम्हारा यह पुत्र बहुत होनहार है। इसमें बड़ी सम्भावनायें छिपी हैं। तुम इसकी शिक्षा आदि की व्यवस्था करो।

तात्कालिक ग्राम्य जीवन में यह सम्भव न था। तब मुनिश्री ने स्वयं बालक मायाराम को अक्षर-ज्ञान से लेकर जीवन की ऊंचाईयों तक पहुंचा देने का शिव-सकल्प किया।

माता शोभावती व पिता जोतराम ने जब यह देखा—मुनि युगल मायाराम को अक्षर-बोध दे रहे हैं, तो मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। वे समय-बे-समय आकर मुनियों से कहते—आप मायाराम को पढ़ना सिखा रहे हैं। हमारा मन बहुत खुश है। आप इसे और शिक्षा दें।

मुनियों ने मायाराम जी को अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ धर्म का भी बोध करवाया। अल्प समय में ही उन्होंने पढ़ना-लिखना यह सब सीखकर सामायिक सूत्र, पच्चीस बोल, नवतत्त्व, छब्बीस द्वार, प्रतिक्रमण तक का ज्ञान अर्जित कर लिया।

यथाक्रम से मुन बड़ौदा ग्राम में आते रहे। मायाराम जी का स्वाध्याय निरन्तर चलता रहा। अब वे गम्भीर अध्येता बन चुके थे। अतः मुनियों ने उन्हें ग्रन्थ, शास्त्रों का गहन ज्ञान परिचित करवाने का उपक्रम किया।

मुनि युग्म के सान्निध्य में मायाराम जी ने आगम ग्रन्थों का अध्ययन ही नहीं किया अपितु उन्होंने पांच आगम कण्ठाग्र भी कर लिये। आगम का गम्भीर ज्ञान ही उनके वैराग्य का बीज कारण बना।

\+ \+ \+

मुनिद्वय से शिक्षाभिलाषी मायाराम ने ग्रन्थ, आगमों का अध्ययन किया। इसके साथ—आध्यात्मिक गीत, पद, सज्झाय (खण्ड काव्य) ढाल (महाकाव्य) को भी सीखा। सीखा ही नहीं, उन्हे अपने कण्ठ-सितार पर गुनगुनाया भी। महाप्राण मुनि मायाराम जी के कण्ठ-माधुर्य की चर्चा उनके पूरे जीवन में होती रही। जहाँ व गये, वहीं यह चर्चा हुई। प्रस्तुत जीवन-वृत्त में भी पाठक पायेंगे, कि पृष्ठ-पृष्ठ पर उनके कोकिल-कण्ठ का चमत्कार बिखरा पड़ा है।

ऐसा क्या आकर्षण था, उनके स्वर में? इसे जान ले। प्रकृति से उन्हें जन्मना कुछ ऐसा कोकिल-कण्ठ प्राप्त हुआ था, कि जिस किसी ने भी उसे सुना, वह उन्हे विस्मृत न कर सका। इसके आज भी जीवन्त प्रमाण विद्यमान हैं।

गाँव के जिस गली-मुहल्ले में वे समय-बे-समय जाते, खेत-खलिहान में जहाँ कहीं होते, अथवा रात्रि का नीरवनद जब बहता होता—ग्रामवासी, पारिवारिक, मित्र-साथी उनसे कुछ-न-कुछ गाकर सुनाने का अवश्य आग्रह करते।

मायाराम जी गाते। विभोर होकर गाते। पद में डूब कर गाते। श्रोता को ऐसा लगता जैसे—संगीत की आत्मा आज देहधार कर स्वयं गा रही है और प्रकृति का अणु-अणु सितार का तार बनकर उसका अनुकरण कर रहा है। उनके इस विलक्षण गुण पर सभी ग्राम-निवासी विमोहित थे।

\+ \+ \+

मुनियुगम ने बालक मायाराम को ज्ञान-नेत्र तो दिये, परन्तु उसे अपना दीक्षित शिष्य नही बनाया। वे चाहते तो उन्हें अपना शिष्य बना कर अपने पास रख सकते थे। पर सत्य के पारखी मुनियों ने अपने पास शिष्यत्व की दीक्षा देकर रखना उन्हें उचित नहीं माना। वे मानते थे कि ज्योतिष, मन्त्र और तन्त्र-विद्या में मायाराम का विशाल और दिव्य तेज-युक्त जीवन केन्द्रित और सीमित हो जायेगा।

मायाराम जी के पुनः-पुनः दीक्षाप्रदान करने हेतु प्रार्थना किये

जाने पर मुनि युगल निरन्तर एक ही बात कहते रहे—"समय आने दो।" ऐसा ही हुआ। उनके 'समय' शब्द में न जाने क्या-क्या छिपा हुआ था। समय सरकता रहा और मायाराम जी स्वयं ही बड़ौदा ग्राम में अनेक मित्रों के मस्तिष्क में निर्वेद के बीज बखेरने लगे। उनका मित्र-वर्ग उनके विचारों में डूबता चला गया—जिनकी चर्चा हम अगले पृष्ठों पर यथा प्रसंग करेंगे।

6

कर्तव्य एवं निर्वेद

श्री मायाराम जी मात्र १२ वर्ष के थे, एक-के-बाद एक, कर काल ने मायाराम के माता-पिता को उठा लिया। उनके सिर से वंदनीय माता-पिता का साया उठ गया।

बहलवंश में चले आ रहे नम्बरदार का पद श्री आदराम को सौंपा गया। वे मायाराम जी से चार वर्ष बड़े थे। वे भी चार वर्ष ही नम्बरदारी का पद वहन कर पाए। २० वर्ष के पूर्ण यौवन का स्पर्श करते-करते काल-कवलित हो गए। मायाराम अभी १६ वसन्त ही पूरे कर पाये थे।

अब उनके जीवन में कठिन-कठोर परीक्षा का समय आया। एक ओर मायाराम के मन में गुरुयुग्म का दिया हुआ ज्ञान अंकुरित हो रहा था तो दूसरी ओर परिवार का दायित्व उन्हें विवश कर रहा था—घर-गृहस्थी के संचालन को।

कर्तव्य और निर्वेद के इस संघर्ष में उन्होंने परिवार के दायित्व का वहन स्वीकार किया।

स्वर्गीय आदराम का परिवार व दो लघुभ्राता एवं अन्य आश्रित जनों का पालन-पोषण, रक्षण अब उनके जिम्मे था।

यद्यपि उनके वैरागी मन को यह सब बन्धन लग रहा था—पर बन्धन को बन्धन मानकर भी उन्होंने खुशी-खुशी उसे निभाया;

क्योंकि यह परिवार का महत्वपूर्ण दायित्व था।

चहलवंश में नम्बरदारी उसके संस्कारों में समा चुकी थी। पूरा बड़ौदा ग्राम मानता था, कि नम्बरदारी का महत्वपूर्ण पद जोतराम के उत्तराधिकारियों में ही सुरक्षित रह सकता है। मायाराम जी चूंकि गुरु श्री गंगाराम जी व श्री रतिराम जी द्वारा साक्षर हो चुके थे, अतः पिता की नम्बरदारी में वे साथ-साथ आते-जाते रहे। उनके बाद जब यह पद मायाराम जी के बड़े भाई आदराम को सौंपा गया था, तब भाई ने भी मायाराम जी को अपनी नम्बरदारी में साथ-साथ रखा। वे भाई की नम्बरदारी में पिता की तरह सब जगह आते-जाते रहे। उनका सहयोग करते रहे। पूज्य पिता व स्नेहमूर्ति भ्राता के असामयिक निधन के पश्चात् मायाराम जी को नम्बरदारी का स्वयं यह पद ग्रहण करना पड़ा। किया और निष्ठा पूर्वक उसका निर्वाह किया। मायाराम जी का नम्बरदारी का कार्यकाल सात वर्ष रहा। १६ वर्ष से २३ वर्ष के कार्यकाल में ग्रामवासियों ने अनुभव किया—"मायाराम नम्बरदार ही नहीं वह हमारा सच्चा हितैषी है"। इस प्रकार मायाराम का व्यवहार जनता के साथ नम्र और स्नेहपूर्ण था। ग्रामीण वृद्धजनों का यह वाक्य कितना विस्मयकारक है—उन्होंने अपने कार्य काल में गली-मौहल्ले और गांव से एक केस भी कचहरी में नहीं पहुँचने दिया।

समस्याएं, द्वन्द्व और क्लेश का उत्पन्न हो जाना तो मानवीय स्वभाव है। यह सब होता था; परन्तु मायाराम तत्काल उनका ठोस और स्थायी समाधान करते और उन्हें कोर्ट कचहरी जाने से रोक दिया करते।

समस्या स्वार्थ से पैदा होती है। मायाराम समस्या को तो सुनते ही थे—कानों से। विवेक और ज्ञान से उसे तौलते, फिर लोगों के व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर ऐसा समाधान करते; कि न उन्हें शिकायत रहती और न कचहरी का मुँह देखना पड़ता। राजनीति की अपेक्षा समस्या को मानवीय मानदण्डों से आंकना उन्होंने अपनी नीति बना ली थी। उनका समाधान समस्याओं का ऊपरी समाधान नहीं होता था, कि स्वार्थ उभरा और फिर समस्याएं खड़ी

हो गई। उसके समाधान में मानवता मंडित होती थी।

\+ \+ \+

यहाँ उल्लेखनीय यह है, कि श्री मायारामजी का मन वैरागी बना। अन्तर जागा। लेकिन उनका परिवार मानव परिवार था। वैराग्य, निर्वेदता, निर्ममत्व से उसका सम्बन्ध नहीं था। पारिवारिक दायित्ववश वे २४ वर्ष तक घर में रहते हुए भी मन से मुनि बने रहे।

पारिवारिक जनों के सोचने का ढंग दूसरा था। वे चाहते थे— मायाराम पूरी तरह से घर में बस जाये। विवाह करवा ले तथा घर-गृहस्थी का पालन करें। इस हेतु उनका निरन्तर आग्रह चलता रहता था।

'देवर' जाट जाति में परम्परा से ही द्वितीय वर माना जाता था। पारिवारिकों ने मायाराम जी को इसके लिए विवश किया, कि तुम भाभी से विवाह करलो। एक दिन उन्होंने अपनी भाभी के चरण-स्पर्श कर कहा—"भाभी वैसे मैं हर नारी में मातृत्व के पवित्र दर्शन करता हूँ। लेकिन आज 'भाभी' के पद का 'माँ' का गौरवपूर्ण पद देकर समादृत कर रहा हूँ। तुम मेरी माँ हो और मैं पुत्र हूँ।

भाभी चाहती थीं—मायाराम भले ही मुझे स्वीकार न करे। यह उसकी इच्छा है। मैं उसके सुकुमार मन को इसके लिये कुछ भी न कहूँगी; किन्तु मायाराम अपना विवाह अवश्य करवा ले, वह निर्वेद की सफेद चादर अभी से न ओढ़े। घर के प्रमुख दो व्यक्तियों के निधन के पश्चात् भरा-पूरा यह घर सूना पड़ा है, तब के बाद एक भी तो मङ्गल कार्य इस घर में नहीं हुआ। मायाराम का विवाह हो, तो घर-आँगन गीतों की सुमधुर गूंज से भर जाये। घर में वसन्त उतर आये।

पर मायाराम जी विवाह रचाने को कैसे राजी होते? उन्हें तो नैष्ठिक ब्रह्मचर्य साधना का एक अनूठा उदाहरण बनना था, जो पूरे साधु-समाज को आज भी नतमस्तक होने को बाध्य करता है।

मुनियुगल से उन्होंने १२ वर्ष की अवस्था में ज्ञान पाया था। इस बीच किशोर अवस्था की उथल-पुथल भरी वेला आई। फिर मदमाता यौवन आया। वे २४ वर्ष के हो गए; परन्तु उनके वैरागी मन ने कभी फाग खेलना भी स्वीकार नहीं किया।

इसीलिए तो आज भी संयमनिष्ठ मुनि कहते हैं--"वैराग्य तो चारित्रचूडामणि श्री मायाराम जी म० का था। २४ वर्ष के जीवन में उन्होंने कभी होली नहीं खेली।"

पूरे गाँव की स्त्रियाँ फाग के दिनों में कहा करती थीं—"होली पर और कुछ भी करना, पर मायाराम पर रंग मत डाल देना। वह जोगी है। उस पर रंग डाल दिया, तो शाप लग जाएगा।"

हमें स्त्रियों की इस वार्ता में मायाराम जी के व्यक्तित्व की गरिमा और उनकी ब्रह्मचर्य-निष्ठा व संयमसाधना के दर्शन होते हैं।

7

गंगा के तट पर

मायाराम जी ने कुछ स्थितियों को चुनौती के रूप में माना था। कुछ परिस्थितियों और परम्पराओं को उन्होंने बिना इच्छा के भी स्वीकार किया था। इस सन्दर्भ में एक प्रसंग प्रस्तुत है।

उन्हें किंचित भी यह आस्था नही थी, कि अस्थियों को गगा में प्रवाहित करने से मृतक की आत्मा का कोई हित सम्पादित होता है। पर बेमन मे स्वीकार परम्पराओ के बीच भी वे अतीत होते रहे।

मायाराम जी अपने स्वर्गवासी बड़े भाई आदराम की अस्थियाँ गगा में प्रवाहित करने घर से चले। मार्ग में उन्हें बड़ौदा और दूर-पास गाँव के एक-एक कर आठ-दस आदमी मिल गए। सभी को गगास्नान के लिए जाना था। मायाराम को केवल परम्परा निर्वाह-हेतु अस्थियाँ प्रवाहित करनी थी। गगा पहुँचे। अस्थियाँ प्रवाहित कर दीं—निश्चिन्त हो गए।

साथ में आए अन्य लोगों ने गगा में स्नान किया, डुबकियाँ लगाईं। मायाराम जी चुप साधे सब कुछ देखते रहे। सोचते रहे—'इन लोगों की अस्था है—गगा का बिन्दु-बिन्दु पवित्र है। इसमें स्नान करने से सब दोष-पाप धुल-पुंछ कर साफ़ हो जाए गे। मेरी आस्था न होते हुए भी मैं सैकड़ों मील दूर से गगा के तट पर चला आया। फिर इनकी तो आस्था है। इस आस्था में ये गगा को ठीक

से समझ नहीं पा रहे हैं। आस्था अपना फल तभी देती है, जब ज्ञानयुक्त होकर मन की गंगा में नहाया जाये। मन में अज्ञान भरा रहे तब तक गंगाप्रवाह में स्नान करने से क्या होगा ?'

+ + +

गंगा दो हैं—

एक बाहर की गंगा।

दूसरी अन्तर की गंगा।

कहा गया है, जब गंगा धरती पर उतरी, तो आधी उतरी। आधी स्वर्ग में रह गई। इसे हम यूं कहें—'गंगा आधी बाहर है। आधी अन्दर। अन्दर को गंगा में डूबने का अर्थ है—स्वर्ग। बाहर की गंगा में नहाने का अर्थ है, की बहाव की ओर बहना। अर्थात् तुम्हारा बाहरी प्रयत्न तुम्हें भटका रहा है, बहा रहा है। वह तुम्हे यथार्थ गंगा के किनारे पर पहुंचने नहीं देता। सच तो यह है कि तीर्थयात्रा बाहर हो ही नहीं सकती। बाहर तो संसार है, तीर्थ नहीं। भटकाव है, बहाव है, गंगा नहीं। तीर्थयात्रा भीतर की करो। जितने तुम भीतर जाओगे, पा जाओगे। अन्दर रम कर देखो। खो जाओ अन्दर सच्चे तीर्थ के तट पर पहुँच जाओगे। वहीं गिरनार है। वही संवेद-शिखर है। वही राजगृही है। वहीं पावापुरी है। कैलाश-काशी बाहर है ही नहीं। बाहर का अर्थ है भ्रांति, अन्दर का अर्थ—तीर्थ। उस अन्दर की गंगा का बिन्दु-बिन्दु पवित्र है। उस पवित्रता में मन का अणु-अणु धुल जाता है।

गंगा जो आधी ही उतरी है धरती पर, वह आधी स्वर्ग में मौजूद है। भीतर की गंगा स्वर्ग की आधी गंगा है। अमृत वहीं है। बाहर की गंगा में नहाते रहो, कुछ न मिलेगा। मछलियाँ गंगा में रहती हैं—क्या वे बेचारी आज तक स्वर्ग में पहुँच सकीं ? मगरमच्छ गंगा में ही नहाता रहता है। तुम नहाकर लौट आते हो। मछली और मगर तो वहीं रहते हैं। उनसे ज्यादा क्या नहा पाओगे ?

बड़ी साफ़ बात है।

—गंगा भीतर है। जो मूल्यवान् है, वह सब भीतर है। निस्सार

बाहर है। कचरा सब बाहर। धन तुम्हारे अन्दर है।

\+ + +

मायाराम जी अपने १० साथी यात्रियों को गंगा में नहाते, तैरते और डुबकियां लगाते देख रहे थे। साथी जब नहा चुके, तो भूख सताने लगी। मायाराम जी ने अपना पाथेय खोला। जो था, खा लिया। साथी लोग स्वय-पाक के अधिक विश्वासी थे। परस्पर विचार-विमर्श हुआ। खिचड़ी बनाना तय किया। नहाते और विचार-विमर्श करते-करते अंधियारा घिर चला। चावल, दाल, हल्दी, नमक, मिर्च खरीदते-खरीदते धरती पर खासा अंधेरा उतर आया। ईंधन जुटाकर साथियों ने एक से कहा—'गंगा का पवित्र जल ले आओ। खिचड़ी पकने में कौन समय लगता है ?'

साथियों में से एक गगा का पानी लेने गया। पानी बर्तन में डाला। उसमें चावल-दाल डाले। थोडी देर में खिचड़ी पक कर तैयार हो गई। मायाराम जी को साथियों ने खाने का निमन्त्रण दिया। किन्तु वे तो दिन से ही पाथेय खा चुके थे! उन्होने रात्रि-भोजन करने के लिए इन्कार कर दिया। साथियों ने खिचड़ी खायी। खिचड़ी कुछ बच गयी। उसे सुबह के लिये रख कर, सब साथी सो गये। फिर प्रातः उठे। नहा-धोकर नाश्ते के लिये बैठे। दिन निकल आया था। नरम-नरम धूप खिल चुकी थी। साथियों ने इस बार भी मायाराम जी को बासी खिचड़ी खाने का निमन्त्रण दिया।

रात्रि में पकाये भोजन के लिये भी उन्होंने इन्कार कर दिया। साथी परस्पर खाने बैठे। एक साथी ने खिचड़ी खाते हुए साश्चर्य सहसा प्रश्न किया—

खिचड़ी में गोलागिरी किसने डाली है ?

'किसी ने भी नहीं'—सब बोले।

गोलागिरी तो इसमें हैं।

तभी खाना खाते दो साथी और बोले—हाँ! गोलागिरी तो इसमें है। पर डाली तो किसी ने भी नहीं थी। बहुमत का वर था।

साथियों की इस समस्या में मायाराम जी निकट आये। उन्हों ने ध्यान-पूर्वक देखा और बोले—अरे! यह गोलागिरी नहीं है। ये तो छोटी-छोटी मछलियां है।

खिचड़ी में मछलियों की बात सुनकर सबको अति आश्चर्य हुआ। सभी साथी खिचड़ी के इर्द-गिर्द जमा हो गये। मछलियों को सभी प्रत्यक्ष देख रहे थे।

ये मछलियां खिचड़ी में किसने डाली ?

इस कटु प्रश्न के समाधान में मायाराम जी ने कहा—रात में पानी कहाँ से लिया था ?

'गंगा से'—एक साथी बोला।

क्या पानी को वस्त्र से छान लिया था ?

'नहीं' ! सकुचाते हुए साथी ने कहा।

'गगा का पानी तो पवित्र होता है उसे छानने की जरूरत ही क्या थी ?'—उसने पुनः कहा ।

मायाराम जी बोले—नहीं ! पानी तो छानना ही चाहिये।

आओ जरा देखें तुमने पानी कहाँ से लिया था।

रात में जिस स्थान से पानी लिया गया था। उस स्थान को देखा तो सचमुच खिचड़ी में पड़ी मछलियों जैसे छोटी-छोटी असंख्य मछलियाँ वहाँ तैर रही थीं।

सब साथी ठगे-से रह गये।

तब मायाराम जी ने अपने गुरु श्री गगाराम जी म०, श्री रतिराम जी म० को याद किया और कहा—"बन्धुजन, आप लोग तो श्रद्धा-पूर्वक गगा-स्नान या तीर्थ-यात्रा पर चलकर आए हैं जबकि गगा स्नान से पाप नष्ट होते हैं···ऐसी मेरी तनिक भी आस्था नहीं है। मैं मात्र परम्परा निर्वाह के लिए अस्थियां प्रवाहित करने आया हूँ। तुम्हारे पाप धुले या नहीं, इसे एक तरफ रहने दो। परन्तु तीर्थ-क्षेत्र में आकर खिचड़ी के साथ मछलियों को खाने का नया पाप तुमने और कर लिया।"

साथी लोग मायाराम जी की जड़वत् बन कर बात सुन रहे थे। उनसे उत्तर देते न बना। अपनी हार और अज्ञानता को स्वीकार करते हुए वे बोले—"तुम ने रूखा-सूखा खाना खाकर भी पुण्य अर्जित किया। हम लोगों ने सामूहिक खिचड़ी खाकर सामूहिक पाप किया है। सचमुच तुम्हें तुम्हारे गुरु ने ज्ञान ही नहीं दिया है, पाप से बचने की पवित्र दृष्टि भी दी है। हमारा यात्रा करना व्यर्थ रहा। तुमने गंगा में स्नान न करके भी तीर्थयात्रा का सच्चा फल पाया है।"

सब साथी अपने पड़ाव पर पहुँचे। दूसरे लोगों को भी सच्चाई का पता चला। सब यात्री मन-मन अपनी यात्रा को व्यर्थता पर खिन्न थे। मायाराम अपने विवेक की सचाई पर मुग्ध हुए थे। गुरुयुगल की कृतज्ञता स्वीकार करते हुए तीर्थ-यात्रियों का समूह चींटियों की पंक्ति-सा चल पड़ा, अपने घर-गाँव की ओर।

8

ज्योतिषी ने कहा

बुडौदा में ज्योतिषी आया।

चौपाल में बैठा था ज्योतिषी। सारा गाँव उमड पड़ा, भविष्य पूछने। सबने अपना-अपना हाथ दिखाया। व्यक्तिगत, पारिवारिक समस्याओ के साथ ग्राम-विषयक प्रश्न भी पूछे गये। ज्योतिषी ने सब वताया। अतीत बखाना, भविष्य जनाया। कृषि मे उन्नति, अवनति की बात बतायी। प्रतिबन्ध तो कुछ था नही। सभी तरह के लोग आये। औरतें क्यो पीछे रहती! उन्होने भी पुत्र-पौत्र-जन्म पूछे। इस सब के बाद भेंट से उसकी झोली भरी।

दूध के गिलास आए, मक्खन आया। थाल में भोजन आया। ज्योतिषी छका। छक गया तो ख्याल उभरा नम्बरदार के हाथ देखे।

मायाराम जी दूर से चुप बैठे सब देख रहे थे। ज्योतिषी ने देखा—नम्बरदार चुप साधे अकेले दूर-दूर बैठा है। उसने आगे होकर कहा—"नम्बरदार तुम हाथ नही दिखाना चाहते हो? आओ मैं तुम्हारा हाथ देखता हूँ।"

१७ वर्षीय किशोर नम्बरदार ने कहा—"मुझे हाथ दिखाने में रुचि नहीं है।"

क्यों?

ज्योतिषी की जिज्ञासा बढ़ी। उसने सोचा—सब आगे बढ़-बढ़

कर हाथ दिखाते हैं। यह कैसा व्यक्ति है, जो बड़ी गहरी और अर्थपूर्ण बात कर रहा है ? तभी गांव के साथी पीछे पड़ गए। मायाराम का बरबस हाथ पकड़ा और ज्योतिषी से कहा—"देखो इसका हाथ ! बोल अब कहाँ जायेगा ?" कहकर मायाराम का हाथ ज्योतिषी के आगे बढ़ा दिया, साथियों ने।

ज्योतिषी ने मायाराम जी का हाथ गौर से देखा। वह आश्चर्य में डूबा। बार-बार सिर हिलाया। आँखें नचाईं। भौंहें चढाईं।

साथी बोल पडे—"क्यों नहीं कुछ बताते ? जैसा देख रहे हो वसा ही कहो। क्यों नहो कहते। क्यों छुपा रहे हो ?"

ज्योतिषी ने गम्भीर बन कर कहा—"यह तो विलक्षण पुरुष है। यह इस गांव के घरौंदे में कैसे पैदा हो गया ? इसके हाथ में तो राजयोग है। इसे राजा होना चाहिये। यदि पूरे सचाई जानना चाहते हो, तो सुनो—इसकी रेखाएं बोल रही हैं, यह राजाओं का राजा होगा।"

यह सुन कर साथियों के अतिरिक्त बड़े-छोटे सभी खिलखिला उठे।

अपनी बात की उपेक्षा होती देखकर, ज्योतिषी गम्भीर होकर फिर बोला—"राजयोग ! राजयोग नहीं बदल सकता। यह बात भिन्न है कि राजयोग, महाराजयोग बन जाये।" उसका स्वर कड़क था।

..........."क्या मतलब ?" नम्बरदार ने पूछा।

"मतलब यही कि राजयोग सन्यास में बदल जाये। फिर भी वह राजयोग महाराजयोग कहलायेगा, न कि किसान का बेटा है, तो नम्बरदारी पाकर राजयोग खो दे।

चौपाल में उपस्थित सब लोग स्तंभित हो गए। ज्योतिषी फिर बोला—मेरी बात याद रखना। तुम जानोगे। यह गांवों की बाड़ों में उलझने वाला नहीं है। इसकी रेखा बोलती है, यह बहुत बड़ा सम्मान पाने वाला और वर्षों तक लोगों की श्रद्धा का आधार

बनेगा। इसकी रेखा बड़ी गहरी उजली और साफ़ है। यह राजाओं जैसे यश को पाएगा—यह मिट जाने वाली सचाई नहीं है।

\+ \+ \+

समय बीता। कालचक्र बहुत आगे चला गया। इसके साथ, इतिहास के पृष्ठों पर बहुत कुछ घट गया। जो घटा है, उसे आप, हम सब जान रहे हैं।

तभी तो बड़ौदा ग्राम के बुजुर्ग परस्पर वार्ता करते हुए कहते हैं—कहा था, ज्योतिषी ने·········



9

उन्हें मर्यादा प्रिय थी

मायाराम जी की हृदय-वसुधा पर वैराग्य के फूल खिल चुके थे। वे अन्तर में जाग चुके थे। पर रहते थे कबीर की तरह घर में ही। घर में सन्यास घटने लगे, इस से बढ़कर सयम और क्या हो सकता था? सन्यास लेने या देने जैसा स्थूल तत्त्व नही है। 'सन्यास' और 'संयम' घटित होते है। ये उठाकर झोली में भर लेने, अक में समेट लेने जैसे तत्त्व नही है। संन्यास जब घटता है, तब न जंगल में जाना होता है, न गिरि-कंदराओं की ओर भागना होता है।

तो मायाराम जी में संन्यास कैसे घटा? संयम का अकुर कैसे पनपा? इसे जानना है। पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल म० ने बताया। हम सब भी जान लें।

+ + +

मायाराम जी युवा हो चुके थे। उनके भाई आदराम जी विवाहित थे। घर में भाभी आ गई थी। मायाराम जी ने भाभी को आदर दिया। भाभी ने मायाराम पर वात्सल्य उडेला।

भाभी घर में रहती रही। रहते-रहते काफ़ी समय पीछे सरक गया। एक दिन उसे नेहर जाना पड़ा। फसल के दिन थे। विकट समस्या। घर से एक सदस्य बाहर चला जाए, तो फसल के काम में

हर्ज होता ही है। वह जाना भी नहीं चाहती थी। पर नैहर का दायित्व भी विवाह हो जाने पर हर नारी के पीछे नैतिक दृष्टि से लगा रहता है। घर-गृहस्थी ठहरी। उसे नैहर जाना जरूरी था। वह चली गई।

गृहिणी चली गई तो रोटी बनाने की समस्या अगले ही समय खड़ी हो गई। कौन बनाए रोटी ? पास-पड़ौस को टटोला। दूर-दराज़ के रिश्ते का एक घर ख़याल में आया। फ़सल के दिनों में समय बे समय जोतराम नम्बरदार और आदराम उनकी मदद करते रहते थे। रोटी बनाने की भीड़ पड़ने पर उस घर में ख़बर गई।

दूर-दराज़ का रिश्ता समय बे-समय काम क्यों न आता ? नम्बरदार जोतराम और आदराम उन पर फसल के दिनों में भीड़ पड़ती, तो उमगे-उमगे जाया करते और हाथ बँटाते थे।

वहाँ से खबर आई—"रोटी बनाने की मुसीबत मत मानना। हमारे घर से कोई भी महिला आकर रोटी बना जाया करेगी।"

उस घर से हर रोज़ महिला आती! रोटी बना जाती। कभी लड़की आती, कभी बुढ़िया आती। इस तरह कई दिन बीत गए।

इसी घर से एक दिन, वधूटी आई रोटी बनाने। नव वधू रिश्ते में मायाराम जी की भाभी ही लगती थी। घर के सभी सदस्य खेत जा चुके थे। घर में मायाराम जी अकेले थे।

उसने आते ही पहली बात की—"भाभी को कहाँ भगा दिया ? लड़ती होगी ?" मायाराम क्या उत्तर देते ?

"आटा कहाँ धरा है ?" मायाराम कुछ उत्तर दें, इससे पहले फिर एक सवाल थोपा—"घी कहाँ है।" मायाराम बोलने को हुए तब तक तीसरा सवाल—"न पानी का पता, न नमक का। न मिर्च दिखाई दे रही है, न हल्दी। बताओ रोटी कैसे बनाऊं ?"

इतने में एक और सवाल धर पटका—"रोटी क्या बनाऊ? उपले, लकड़ी तक का पता नहीं।"

बूढ़े लोगों की श्रुति-परम्परा ने कहा—"वधू जानती सब कुछ थी। उसे आटे का भी पता था, मिर्च और हल्दी का भी पता था;

परन्तु उसे इष्ट कुछ और था। उसका मन मायाराम जी के अमल सौन्दर्य पर समर्पित था।

वधू से भी बढ़कर छेड़ की कुछ साथी युवकों ने। वे चाहते थे, मायाराम का मन ससार में लौटे। अध्यात्म की रूखी-गहरी बातें यह छोड़ दे। उन्होंने देखा, आज मायाराम और नववधू पूरे घर में बस दो ही है। उन्होने उस्तादी का पैंतरा चला। बाहर से दरवाज़े की कुडी बन्द करदी। अब घर में थे—मायाराम और नववधू।

मायाराम जी चुप साधकर बैठे थे। नववधू ने उन्हे खूब छकाया। आटे दाल से लेकर पानी का घडा, गिलास कटोरा, कहाँ रखे है ? यह सब पूछ-पूछकर।

मायाराम जी के संन्यासी मन को राम की मर्यादा याद आ गई। वह घर से बाहर जाने लगे। दरवाजे पर पहुँचे तो दरवाजा बाहर से बन्द। अब क्या हो—सकट ! विचित्र स्थिति !

राम ने सीता को वन भेजा था। मायाराम जी ने सोचा—"मै क्या करू ? मैं तो खुद जा सकता हूँ, कही भी। बाहर दरवाजा बन्द है। घर में रोटी बनाने का नाटक रचती यह नववधू। सब लोग क्या कहेगे ? न जाने क्या सोचेंगे ?"

इधर देखा, उधर देखा। घर से बाहर जाने का कोई रास्ता नज़र न आया। चौंक में एक बल्ली पडी थी। उन्होंने बल्ली को खड़ा किया। उसके सहारे छत पर चढ गए और वे छत से गली में कूद पड़े। पाँव में चोट लगी।

चोट गहरी थी। कई दिन तक उपचार किया। पैर ठीक हो गया। साथियों को उपहास करने का मसाला नहीं मिला।

\+ \+ \+

घटना से लगता है कि मायाराम जी के जीवन में संन्यास घटा। जरूर घटा। अनुभवहीन मदमाती जवानी की चौखट। मकान का दरवाजा बाहर से बन्द। अगर मायाराम जी के मन में सन्यास न घटा होता, संयम का अंकुर न पनपा होता, तो आप भी

सोच सकते हैं, हम भी सोच सकते हैं, कोई भी सोच सकता है—तब मायाराम केवल एक युवक हो सकते थे, और कुछ नहीं। परन्तु मायाराम जी के संन्यासी मन ने छत से कूद कर राम की मर्यादा को जिला दिया।

बोलो! अब तुम कहोगे, कि मायाराम मन से संन्यासी थे? हाँ हम कहते हैं—चादर ओढ़कर तब तक उन्होंने संन्यास नहीं लिया था।''

10

तब गुरु मिले

सत्य की उपलब्धि गुरु की कृपा से हो सकती है। लेकिन गुरु कभा कृपा से नही मिलते। उन्हे तो खोजना होता है। गुरु को खोजने का अर्थ है शिष्यत्व का प्रकट हो जाना। जब शिष्यत्व प्रकट हो जाता है, तब गुरु तो खोजने पर सहज ही मिल जाते है।

जब गुरु मिलते है। उनमें शिष्य का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अह नष्ट होता है—तब गुरु का कृपा-प्रसाद मिलता है। तभी शिष्य मे पूर्णत्व का प्रकटीकरण होता है।

+ + +

मायाराम जी मे शिष्यत्व का अकुर तो फूट चुका था, परन्तु कृपा की अमृतवर्षा करने वाले गुरु से सपर्क बाकी था। खोज जारी रही। प्रयास से वह खाली कभी न रहे। खोज का चरम बिन्दु उन्होने छुआ। तभी गुरु श्री हरनामदास जी म० के उन्हे चरण-स्पर्श मिले। जब गुरु से सपर्क हुआ, तो वह भी एक घटना बन गई। घटना यूं घटी—

एक समय (स० १९३४) मायाराम जी सरकारी कार्यवश बडौदा ग्राम से पटियाला गये। कार्य पूरा हुआ। तब तक शाम ढल आयी थी। दूर स्थित बड़ौदा लौटने का समय नही रहा था। इस बीच उन्हे स्मरण आया—पंजाब प्रान्तस्थ नगरों में मुनिजनो का परिव्रजन अक्सर रहता है। सम्भव है—यहाँ पटियाला में भी कोई

मुनिसंघ आया हुआ हो। यदि मुनि यहाँ हों, तो उन्हीं के सामिप्य में सायंकालीन सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धर्म-क्रिया की जाये।

मायाराम जी ने किसी से पूछा, तो पता लगा—पं० श्रीरामबख्श जी म०, तपस्वी श्री नीलोपद जी म०, मुनि प्रवर श्री हरनामदास जी म० आदि मुनि पटियाला की पुरानी गुड़मण्डी में विराजमान हैं।

उसी क्षण उमगित मन से मायाराम जी वहाँ पहुचे। चरण-वन्दन किया। परिचय हुआ। नाम, कहां से आये हो? आदि वार्ता होते-चलते प्रतिक्रमण (विशेष धर्म-क्रिया) का समय आ पहुँचा।

मुनिवर्ग एवं मायाराम जी अपनी-अपनी उपासना में निमग्न हुए। उपासना पूर्ण हुई, तो मुनियों से धर्मोपदेश ग्रहण करने का इच्छुक श्रोतृवर्ग उपस्थित होने लगा। कुछ समय तक मुनियों का धर्म-प्रवचन हुआ। इसके पश्चात् भी गृहस्थ समुदाय वहीं बना, बैठा रहा। कुछ अन्य व्यक्तियों ने भक्ति-गीत, पद आदि गा-गाकर सुनाये। इसी क्रम में मायाराम जी से मुनिराजों ने पूछा—क्या तुम्हें भी कोई गीत, पद गाना आता है? विनम्र शब्दों में मायाराम जी ने कहा—आपकी कृपा है।

तो सुनाओ!

मुनियों का आदेश शिरोधार्य कर, मायाराम जी ने सोलह सतियों की सज्झाय (खण्ड काव्य) सुनानी प्रारम्भ की। रात्रि के नीरव क्षण थे। प्रकृति के अणु-अणु में निस्तब्धता व्याप्त थी। ऐसे में अद्‌भुत कण्ठ के धनी ने ज्यों-ज्यों पद गाये, त्यों-त्यों उनका जादुई प्रभाव बढ़ने लगा। लोग जमा होने लगे। जिस किसी के कानों तक उनकी स्वर-लहरी पहुंची, वहीं कार्य छोड़कर तत्क्षण उनकी अदृश्य स्वर-माधुरी में खिंचा चला आया और उनके कण्ठ-माधुर्य में मुग्ध हो डूब गया।

पद पूर्ण भी नहीं हुआ था, कि मुनियों की हृदय-अवनी पर एक प्रश्न उगा—"इस व्यक्ति के स्वर में कितना अद्‌भुत आकर्षण है? जिस किसी ने सुना वह बरबस यहाँ खिंचा चला आया। यदि यह मुनि दीक्षा स्वीकार कर ले, तो अपने साथ-साथ अन्य कितनी आत्माओं

को सत्पथ पर लाकर उनका कल्याण करेगा ?"

मनोगत भावों को कार्यान्वित करने के उपक्रम में मुनियों ने दो व्यक्तियों का स्मरण किया। उन्हें बुलवाया।

वे दो व्यक्ति थे—काशीराम, शीशराम। दोनों ही पटियाला नगर के प्रतिष्ठित गृहस्थ। काशीराम राजा के दीवान थे। शीशराम बड़े व्यापारी।

मुनिराजों ने उनसे कहा—"क्या तुम धर्म का उद्योत चाहते हो ?" गुरुदेव ! इसके लिए तो हम पूर्ण समर्पित हैं। जो आज्ञा हो, हृदय से स्वीकार है।

"यह आगन्तुक व्यक्ति दीक्षित होना चाहिये !" मुनिराजों ने संकेत किया।

उपस्थित दोनों पुरुषों ने कहा—गुरुदेव ! यह कार्य तो आपका है। आप ही किसी को उद्‌बुद्ध कर सकते हैं। हां, दीक्षा-विषयक व्यवस्था में किसी प्रकार की कोई बाधा हो, तो उसे हम दूर करेंगे।

तत्पश्चात् मुनियों ने मायाराम जी से वार्ता की। वार्ता में उन्हें ज्ञात हुआ—यह तो प्रत्येक-विध धर्म का ज्ञाता है और श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म० का शिष्य है।

मुनियों का आश्चर्य चरम सीमा पर पहुंच गया। उनकी मन-अवनी में सन्देह का का एक अंकुर और उभरा—"मुनि युगल (श्री गंगाराम जी म० व श्री रतिराम जी म०) ने अब तक जिन-शासन के इस वरद पुत्र को जिन-दीक्षा क्यों नहीं दी ? लगता है—इसके पीछे कोई तत्त्व छिपा है। तभी गुरु श्री हरनाम दास जी म० ने सचोट एक प्रश्न पूछा—

"मुनि जीवन के प्रति तुम्हें अनन्य आस्था है। अनेक आगम ग्रन्थों का अध्ययन भी तुम्हें मुनियुगल ने करा दिया है। तुम्हारे स्वर में गजब का माधुर्य है। वाणी में गाम्भीर्य है, साधुत्व को तुम जीवन का सार मानते हो—संसार तुम्हें निस्सार भी प्रतीत होता है। फिर आखिर क्या है वह कारण, कि अब तक तुम मुनि दीक्षा न ले सके ? या यूं कहो कि तुम्हें किसी ने शिष्यरूप में स्वीकार नहीं किया।"

शिष्यत्व के चरम बिन्दु पर पहुंचे मायाराम जी को लगा, कि आज मुझे दीक्षा-मंत्र देने वाले पवित्र पुरुष ने स्वयं ही आवाज देकर पुकार लिया है। मेरी चिर आकांक्षा आज पूर्ण होने जा रही है। वे बोल उठे—"महामुने ! मैं आज तक दीक्षित करने वाले गुरु की ही खोज में राह भूले पथिक की तरह बार-बार भटक रहा था। आज आपके प्रश्न ने मुझे जीवन दिया है। मैं अनुभव कर रहा हूँ, कि उस राह भूले पथिक का आपने हाथ थाम लिया है। मैंने अनेक बार मुनिद्वय से दीक्षा देने की प्रार्थना की। प्रत्येक बार वे यही कहते हैं—समय आने दो। मुझे लगता है—आज वह समय आ पहुंचा है। अब आपको ही दीक्षामंत्र देना होगा।

मायाराम जी ने यह सब ऐसे कह दिया, जैसे खोज करते-करते उन्होंने सच्चे गुरु को पा लिया हो और गुरु में अपना अहं खो कर उनमें सदा को समा गये हों।

मुनि हरनाम दास जी म० ने मुनि-युगल के पास अनुमति लेने के लिये सन्देश भिजवाया। उधर से उत्तर मिला—"अब तक हम इसे इसीलिए दीक्षित नहीं कर रहे थे, कि यह हमारे पास चमत्कारी तो बन जायेगा, किन्तु जैनत्व का सच्चा व्याख्याकार या जैनत्व की भारत के गाँव-गाँव में गंगा बहाने वाला नहीं बन पाएगा। इस से अधिक विकास की सम्भावनायें हमारे पास मिटती देख कर हमने इसे दीक्षित शिष्य बनाकर अपने पास नहीं रखा।

अब आप इसे दीक्षा दें। हम इसके उज्ज्वल भविष्य की शुभाशा करते हैं। आप मायाराम से पूछें। हमने हमेशा उसे एक ही बात कही है—समय आने दो। समय तुम्हारी प्यास को तृप्ति देगा। समय आएगा और योग्य गुरु तक तुम्हारी आवाज़ पहुंचेगी। वे तुम्हें दीक्षित करेंगे।"

मुनियुगल के इस उत्तर पर पंजाब का समूचा मुनिसमाज आश्चर्य के धरातल पर बैठा हुआ सोचने लगा—"धन्य है मुनियुगल की उदारता, दिव्यदृष्टि, उदात्त भावना। मायाराम जैसे विलक्षण व्यक्तित्व को उन्होंने परखा भी खूब और उसके अभ्युदय के साथ समाज की कल्पना भी उनमें खूब जगी। अन्यथा क्या श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म०, मायाराम जी को अभिदीक्षा-प्रदान कर

हमेशा के लिए अपना शिष्य नहीं बना सकते थे ? जरूर बना सकते थे। यहाँ मुनियुगल का त्याग कितना उत्कृष्ट है ! और मायाराम का धैर्य भी गजब का है। १२ वर्ष अतीत हो गए। 'समय आने दो' पर कितनी आस्था थी उन्हें।"

तो इस तरह विलक्षण व्यक्तित्व की मंगलमूर्ति श्री मायाराम जी को गुरु मिले।

बड़ौदा में समाचार पहुंचा—मायाराम जिन-दीक्षा अंगीकार कर रहा है। पारिवारिक, कौटुम्बिक सभी ने पटियाला जाकर, उन्हे लौटा लाने के बहुश: प्रयत्न किये।

मायाराम जी कैसे लौटते ? वे तो गुरु के कृपा-सागर में अविरल प्रवहमान गंगा की भाँति समाकर, अपना अस्तित्व मिटा चुके थे।

पटियाला तब भी था, आज भी है। तब वह स्वतन्त्र स्टेट था। आज वह प्रांत में समा गया है। पटियाला में ही एक मास के अल्प काल में मायाराम जी ने सवत् १९३४, माघ शुक्ल ६ को पूज्य श्री हरनामदास जी म० से जैनेन्द्री दीक्षा का आजीवन के लिए अभिमंत्र पाया था। श्री हरनाम दास जी म० का यह मंत्र हमेशा के लिए उनका संयम-मंत्र बन गया।

11

दीप जले, दीप से !

दीप, दीप को जब छूता है, तो उसे प्रज्वलित करने के लिये दीक्षित कर लेता है। अपना समस्त स्वत्व दूसरे दीप में भर देता है, दीप ! इसे प्रकाश-दीक्षा कहते हैं। यह दीप की अद्भुत विशेषता है।

संयम के जलते दीप से जब कोई पिपासु अपना अन्तर्मन जोड़ता है, तब उसमें भी प्रकाश-दीक्षा की बात यथावत् घट जाती है। एक साधक दूसरे साधक के मनःप्रसाद में संयम का दीप जोड़ता है और स्वयं अलग हो जाता है।

प्रकाश-दीक्षा देने वाले का काम समस्त जीवन किसी व्यक्ति के रास्ते में दीप लेकर खड़ा रहना नहीं होता। अपितु पिपासु को स्वयं दीप बन कर जलना होता है।

+ + +

मायाराम जी ने मुनित्व की चादर जब ओढ़ी, तब अपने विचारों को विरासत में अपने सखाओं को दे गये। उनके बचपन के ये साथी थे क्रमशः—जवाहरलाल जी, केसरीसिंह जी, नानकचन्द जी, देवीचन्द जी, अखेराम जी, सुखीराम जी, रामनाथ जी, हिरदुलाल जी। इनमें सुखीराम जी, रामनाथ जी, मायाराम जी के सहोदर थे। हिरदुलाल जी, जवाहरलाल जी के छोटे भाई थे।

इन आठ व्यक्तियों को मायाराम जी ने घर में रहते हुए ही

अपने विचारों के अनुरूप मोड़ लिया था। इन सभी को सामायिक-सूत्र, पच्चीस बोल, प्रतिक्रमण, आदि का बोध उन्होंने स्वयं दिया था तथा ये सभी मायारामजी के चरण-पथानुयायी थे। सभी का आन्तरिक संकल्प था—जो पथ मायाराम जी को इष्ट है, वही हमें स्वीकार है। मायाराम जी के दीक्षा-ग्रहण करने के अनन्तर हम इन्हीं का शिष्यत्व स्वीकार करेंगे।

उक्त आठ साथियों को वे चलते हुए कह गये—मै संयममार्ग पर जा रहा हूँ। जब तुम्हें लगे—अब हम में संयम घट गया है, तब मेरे पास आ जाना। जिसे यह अनुभव हो, अभी सयम बोझ बन रहा है, वह न आए। जब सहजता के अंकुर फूट पड़े, तभी चले आना। त्वरा मत करना। समय की कोई कृपणता नही है। सयम घटने में वर्षों नही लगते। वहाँ तो क्षण भी बहुत होता है।

और रुको।

"प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का ध्यान रखते रहना। वहा अन्तर्मुहूर्त कितना महत्त्वपूर्ण था? मरुदेवी को मत भूलना। वहाँ क्षण कितना मूल्यवान् था? मैं जाता हूँ तुम तब आना, जब आने के बाद पिछले सब रिश्ते अतीत हो जाए।

—लगे, पिछला सब कुछ अतीत हो सकता है, भुलाया जा सकता है। अतीत मिट सकता है। तब आ जाना। एक साँस भी बाकी रह जाये, तब भी आ जाना। समय उसमे बाधक है ही नही। वहा तो मिट जाना ही सार्थक है। सत्य है।

पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने हमें बताया—"श्री मायाराम जी मुनि बने। पीछे गाँव में आठों की टोली चर्चा करती। ज्ञानवार्ता होती। अध्ययन होता। सामायिक में मन को बाँधा जाता। मन को सन्यास मे रमाना था। समय का प्रतिबन्ध न था।

प्रतीक्षा उधर मुनि मायाराम जी को भी थी, इधर प्रतीक्षा थी, उनके विचारों में रमे खोये आठ साथियों को भी, वे इन्तजार कर रहे थे। उनमें प्रतीक्षा की घड़ी की आखिरी सीमा थी--आखिरी

सांस। इधर आठों को इन्तजार थी मन चातक पर सावन घन के बरस जाने की। मन के भीग आने की। स्वाति की बूंद को पी लेने की।"

श्री योगिराज जी म० ने आगे कहा—"मायाराम जी के दीक्षा उत्सव पर जवाहरलाल जी पहुंचे थे। बाद में भी अनेक बार श्री मायाराम जी म० से मिलते रहे। मन को कहते रहे। संन्यास घटने में समय था। अत: चुप सब सहते रहे।

इधर श्री मायाराम जी म० और जवाहरलाल जी मिलते रहे। उधर जवाहरलाल जी के पारिवारिकों ने उनके द्विरागमन (मुकलावा) की तैयारी की। यहाँ ज्ञातव्य है—जवाहरलाल जी का विवाह बाल्यभाव में ही हो गया था। श्री मायाराम जी म० ने गुरु श्री हरनामदास जी म० के सान्निध्य में नौ माह ही बिताए थे कि जवाहरलाल जी (संवत् १९३५) मुकलावे के बाद घर में आने वाली पत्नी की शक्ल देखे बिना ही श्री मायाराम जी म० के पास पहुँच गए। कहा—'बस, अब मैं आ गया हूँ। अब तो साथ ही मरना जीना है। ओढ़ा दो मुनि-जीवन की चदरिया मुझे भी।'

घर से माता, पिता, बन्धु-बान्धव, रिश्ते वाले और गैर रिश्ते वाले—सब आए। जवाहरलाल को बड़ौदा लौट चलने को कहने के लिए।

जवाहरलाल जी क्यों लौटते? नहीं लौटे। वे श्री मायाराम जी के साथ मरने-जीने का व्रत ले चुके थे।

अन्तत: माता-पिता, बन्धु-बान्धव व ससुराल-पक्ष-सबने कहा—"हम तुम्हारी राह से हटते हैं। जहाँ तक जाना है चले जाओ—पूरा रास्ता निराबाध है।"

सं० १९३५ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ की शुभ वेला में श्री जवाहरलाल जी* ने पटियाला नगर में मुनित्व अंगीकृत किया और श्री मायाराम जी के सदा-सदा के साथी, सहयोगी, गुरुभ्राता बन गये।

दोनों गुरुभ्राता मुनि-समाज के प्राण थे। वे युग्म थे। अभिन्न

*विशेष परिचय परम्परा खण्ड में देखें।

थे। श्री मायाराम जी म० के प्रत्येक क़दम को अनुमोदन प्राप्त था, श्री जवाहरलाल जी म० का।

\+ \+ \+

संवत् १९४५ में मुनिप्रवर श्री हरनामदास जी म०, श्री मायाराम जी म० आदि मुनिराज घूमते-विचरते, उत्तर प्रदेश के मेरठ जिलान्तर्गत अमीनगर सराय क़स्बे में पधारे। मुनियों का आगमन सुनकर पंडित श्री सोहनलाल जी के पुत्र श्री शंभुराम जी उनके समीप आये। उन्होंने निकट से मुनियों को देखा, तो आकर्षित हुए।

.........और अन्त में गुरु श्री हरनामदास जी म० का (संवत् १९४५) में शिष्यत्व स्वीकार कर, श्री शंभुराम जी*, श्री मायाराम जी के दूसरे गुरुभ्राता बने।

इस प्रकार श्री हरनामदास जी म० के तीन शिष्य हुए। ●

*विशेष परिचय परम्परा-खण्ड में देखिए।

12

शिष्यानुक्रम

महावीर ने अढाई हज़ार वर्ष पहले क्षण भर में, राजमहल छोड़ दिया था। छोड़ा तो बस छोड़ दिया। पीछे मुड़कर नही देखा। वे जंगल-जंगल चले, कदराओं में रुके। खंडहरों और ध्वस्त प्रासादों मे ठहरे। उपवासी रहे तो लम्बे समय तक उपवासी बने रहे। पर चलना नहीं तजा। चलते रहे। उनके अन्दर में एक प्यास थी। खोज थी। आत्मा के दीवट में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हो गई। तब रुक गए।

और तभी उन्होंने मुनियों से कहा—"चलते रहो। रुको मत। चलते रहना बड़ा ज़रूरी है। यात्रा लम्बी है। पड़ाव मत डालो। पड़ाव से पराजय होगी। गति से मंज़िल पर पहुंच जाओगे। पर यह ख़याल में रख लेना—यात्रा ऐसी न हो कि भागते ही रहो। भिक्षु-भिक्षुणिओं, गाँव-गाँव से गुज़रो। हर गाँव में व्यक्ति-व्यक्ति को जगाते हुए चलो। रुको मत, बढ़ते रहो। पर शरीर को सताओ भी मत। जब शरीर यात्रा में बाधक बन जाए, तो रुक सकते हो। इस रुकने को जैन परम्परा ने एक शब्द दिया 'स्थिरवास'।

पंजाब मुनि-सम्प्रदाय के महान् आचार्य श्री अमरसिंह जी म० ने अमृतसर में स्थिरवास लिया था। स्थिरवास में सेवा, सहयोगी

की जरूरत उभरती है। तो समय-समय पर श्री नीलोपद जी म०; श्री हरनामदास जी म०, श्री मायाराम जी म० आदि मुनि श्री अमरसिंह जी म० की सेवा में उपस्थित होते रहते थे।

\+ \+ \+

एक बार बड़ौदा ग्राम में सदेश पहुँचा। पंजाब-सम्प्रदाय के शिवस्वरूप आचार्य श्री अमरसिंह जी म० की सेवा में श्री मायाराम जी म० गुरुजनों सहित उपस्थित हैं।

पीछे छूटी सात साथियों की मंडली ने यह सन्देश सुना। सातों का धीरे-धीरे राग मिट रहा था। गोधूलि की बेला मिट चुकी थी। बड़ौदा अंधेरे में डूब चुका था। श्री मायाराम जी के विचारों का विज्ञान, प्रकाश बनकर जगमगा रहा था। चार साथियों ने उस प्रकाश में सामूहिक निर्णय किया—

"बहुत विलम्ब होता जा रहा है। हमारा लक्ष्य श्री मायाराम जी म० के समीप पहुंचकर उनके सान्निध्य में संयम प्राप्त करने का है। कुछ भी हो आज ही रात अमृतसर चलना है।"

निर्णय लेने वालों के नाम क्रमशः—श्री केसरीसिंह जी, श्री नानकचन्द जी, श्री देवीचन्द जी और श्री हिरदुलाल जी। इन चारों में नानकचन्द जी अपनी माँ के इकलौते पुत्र थे और हिरदुलाल जी श्री जवाहरलाल जी के लघु भ्राता थे।

काली अधियारी रात ! चारों ओर सन्नाटा ! गहन अंधकार ! लगता था—अन्धेरे का समुद्र सामने भरा खड़ा है और चार मील उस अन्धेरे समुद्र से गुजर कर उचाना मण्डी पहुंचना है। वहाँ से अमृतसर के लिये ट्रेन मिलती थी। पूरा गाँव सोया पड़ा था। गाँव का बच्चा-बच्चा नींद में गहरी साँसे ले रहा था। चारों साथी पैदल चल पड़े। किसने क्या पहना, क्या ओढ़ा, क्या साथ लिया ? किसी को कुछ पता नहीं। अपनी आँखो से अपना हाथ दीखना दूभर था—तब किसने क्या लिया-दिया कैसे पता चलता ? गाँव की सीमा आ पहुंची। यहाँ से हिरदुलाल* जी

किसी कारणवश घर वापिस लौट आये। शेष तीन साथी अन्धेरे को चीरते हुए—गड्ढे, पत्थर, झाड़ी से टकराते हुए ठीक समय पर उचाना मंडी के रेलवे स्टेशन पर पहुंच गये। तीनों साथी उचाना मंडी स्टेशन से रेल गाड़ी में सवार होकर अमृतसर पहुंच गये।

\+ \+ \+

एक गांव बड़ौदा से तीन-तीन दीक्षाभिलाषी मुनि मायाराम जी के समीप आये हैं—मुनियों ने सुना तो मन ही मन मुनि मायाराम के तेज को स्वीकार कर आश्चर्य में डूब गये। गृहस्थों ने सुना तो तीनों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यात्रा वृत्तान्त सुना और तीनों की श्री मायाराम जी म० में अनन्य आस्था देखकर चकित हो गये।

श्री मायाराम जी म० ने उनके मन की थाह ली। पूछा—भावना का आवेग घर छोड़ आये हो या नहीं? दीक्षाभिलाषियों की ओर से सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त होने पर श्री मायाराम जी म० ने आचार्य श्री से निवेदन किया—ये तीन अभिलाषी आये हैं। इन की मुनिसंघ में शामिल होने की इच्छा है। योग्यता लगे तो अनुग्रह करें।

उधर सूचना बड़ौदा पहुंची। तीनों के परिवारजन उल्टे पैरों हांपते-दौड़ते अमृतसर पहुँचे। मुनि मायाराम जी को दाद दी। कहा—बड़ौदा ही रह गया है मुनि-दीक्षा के लिये? इन्हें वापिस बड़ौदा लौट जाने का आदेश दीजिये।

आचार्य श्री अमरसिंह जी म० ने कहा—पारिवारिकों की अनुमति आवश्यक है। श्री मायाराम जी म० ने तीनों से कहा—घर वालों के मन में खुशी के फूल उगाओ! तभी तो सयम का सुख मिलेगा। मुनित्व का आनन्द पाओगे।

तीनों ने सुना। वे अपने निर्णय पर दृढ़ रहे।

फूल एक ही पखवाड़े में उग आये। एक ने सोचा। दूसरे परिवार ने समर्थन दिया। तीसरा परिवार भी राजी हुआ। तीनों

* श्री हिरदुलाल जी ने बाद में सं० १९५४ में दीक्षा ग्रहण की।

का सामूहिक प्रयास। सामूहिक निर्णय—"महाराज श्री ! आप के जगाये ये जागे हैं। आप के पास ये रहेंगे। हमारी खुशी इनकी खुशी में एक रस हो चुकी है। आप इन्हें मुनि-संघ में शामिल कर लें।"

आचार्य श्री अमरसिंह जी म० ने जिन-दीक्षा का दिन (सवत् १९३७ मार्गशीर्ष कृष्णा ५) निश्चित किया।

दीक्षाभिलाषी किसके शिष्य बनाये जायें ? यह एक आपत्ति-युक्त प्रश्न उपस्थित हुआ। क्योंकि श्री मायाराम जी म० की दीक्षा-पर्याय तब केवल तीन ही वर्ष की थी। क्या इतने अल्प-दीक्षित मुनि को तीन शिष्य बनाने का अधिकार है ?

प्रश्न आधारहीन नहीं था।

मुनियों की आपत्ति का समाधान करते हुए, आचार्य श्री अमर सिंह जी म० ने घोषणा की—"मुनि मायाराम दीक्षा-पर्याय के बन्धनों से मुक्त है। यह शिष्य बना लेने की योग्यता से भी आगे की क्षमता रखता है। यदि इसे आचार्य पद भी दिया जाये तो भी दीक्षा-पर्याय उसमें बाधक नहीं बन सकती।"

आचार्य श्री की घोषणा सत्य सिद्ध हुई। सचमुच, दीक्षा-पर्याय अमृतयोगी श्री मायाराम जी म० के पथ में बाधा न बन सकी। छोटी-सी दीक्षा-पर्याय में ही उनके सात शिष्य हुए।

\+ \+ \+

आचार्य श्री ने तीनों दीक्षाभिलाषियों की दीक्षा का दिन घोषित कर दिया था। दीक्षा की तैयारी हो रही थी। दीक्षा-दिन सरक-सरक कर निश्चित तिथि से टकराने वाला था; कि तभी, आचार्य श्री की मन मेदिनी पर एक प्रश्न उगा—मेरे बारह शिष्य हैं। इस शिष्यावली में मुनि खूबचन्द भी एक हैं। अपनी तरह के एक है। इसने अपनत्व का पूरा ममत्व मेरी सेवा में समर्पित कर दिया। इसके जीवन में जो कुछ है मात्र मेरी सेवा की अभ्यर्थना !

आचार्य श्री के ज्ञान-चक्षुओं में मुनि खूबचन्द जी तैर गये'

उन्होंने देखा—मुनि खूबचन्द के चेहरे पर वृद्धत्व की रेखाएं घिरती चली आ रही हैं। आज तक इसने मेरी सेवा से उपरत होकर कुछ भी सोचने का यत्न नहीं किया। अपनी स्मृति तो इसे कभी आई ही नहीं।

मेरी सेवा के लिये तो मुनि खूबचन्द के साथ-साथ पूरा मुनि-संघ समर्पित है, किन्तु—मुनि खूबचन्द की सेवा कौन करेगा ? शिष्य होगा तो सेवा हो ही जायेगी।

ऐसा चिन्तन कर, आचार्य श्री ने मुनि मायाराम जी को स्मरण किया तथा समीप बुलाकर कहा—मायाराम ! मैं तुमसे कुछ चाहता हूँ।

आप आज्ञा करें। विनययुक्त स्वर में मुनि मायाराम जी बोले।

तुम मुनि खूबचन्द को देख रहे हो। उसकी श्रद्धा, समर्पण, सेवा सब तुम्हारी आंखों में होगी ? इसने सेवा में अपने को मिटा दिया है। मेरे मन में आज प्रश्न जन्मा है, मुनि खूबचन्द की सेवा कौन करेगा ? सेवा में इसकी परम निष्ठा है। यह सेवानिष्ठा तभी सुरक्षित रह पायेगी जब भविष्य में इसकी भी सेवा हो। मैंने इसी लिये तुम्हें याद किया है।

आप मुझे जो आज्ञा करें, मैं उसके लिये तत्पर हूँ।

आचार्य श्री ने कहा—मैं चाहता हूँ, तुम अपने तीन दीक्षाभिलाषी शिष्यों में से एक को मुनि खूबचन्द का शिष्य बना दो।

"एक ही क्यों ? तीनों को आप चाहें तो श्री खूबचन्द जी म० का शिष्य बना दें। मेरे अन्तस् में कहीं किंचित् भी विकल्प न जन्मेगा।"

आचार्य श्री, मुनि मायाराम जी की इस उदारता पर गद्-गद् हो गये।

नीयत दिन आया। विधि-विधान-पूर्वक दीक्षा उत्सव सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री अमरसिंह जी म० ने दीक्षा-मन्त्रोच्चारण कर गुरु व शिष्यों की घोषणा निम्न प्रकार की—

गुरु :	शिष्य :
(१) मुनि खूबचन्द जी	मुनि केसरीसिंह जी
(२) मुनि मायाराम जी	मुनि नानकचन्द जी
	मुनि देवीचन्द जी

इस भाँति अमृतसर में संवत् १९३७, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ५ को तीन दीक्षायें सम्पन्न हुई।

जब मुनिवर्ग श्रद्धावनत हुआ :

निर्ममत्व के साधक मुनि, राग की केन्द्र नारी को पराई मानते है। और जन्म देकर अपने मातृत्व को सराहने वाली माँ को भी तज देते हैं। पिता के अनन्त पितृत्व को वे कांच को चूडी की तरह तोड़ देते है। भ्रातृत्व का अपनत्व देने वाले बन्धु को वे ऐसे छोड़कर मुनि बन जाते है, जैसे दो यात्री सो रहे हों। एक जागा, उसने दूसरे को न जगाया—अगली मंजिल की यात्रा शुरू कर दी हो।

समाज का नारीवर्ग उन्हें श्रद्धा अर्पण करता है, तो उनकी आँखें बराबर खुली रहती हैं—वे देखते रहते है, कि इस श्रद्धा मे ममत्व का कही कोई धागा तो नही लिपटा हुआ है ? आभास पाते ही वे सावधान हो जाते हैं और उस नगर को छोड़ कर आगे चल पड़ते है।

इस तरह के प्रसंगों में वे शास्ता महावीर के शिक्षा-सूत्र को बराबर याद रखते है, कि कही किसी भी प्रकार का राग उन्हे ममत्व का धागा लपेट कर बंदी न बना ले। अतः वे ग्राम-ग्राम घूमते रहते हैं। किसी एक ग्राम, एक नगर, एक स्थान पर नही ठहरते। जहाँ जरा ठहरे, कि मोह के विषधर के डस लेने का भय उन्हें सताने लग जाता है।

भाषा, भूषा, प्रान्त-प्रदेश, जाति, जीवन-जगत् सब का मोह वे ऐसे तजते हैं, जैसे मोम की पुतली पानी में डूबे। ऊपर आये तो कोरी की कोरी। सूखी हुई इतनी कि पानी का एक बिन्दु भी उस पर ठहरा हुआ दिखाई न दे।

इतना सजग सावधान मुनि-वर्ग जब शिष्य बना लेता है, तो पीछे छोड़ा हुआ माँ का वात्सल्य, पिता का प्यार, बन्धु का ममत्व, सब का केन्द्र उनका शिष्य बन जाता है।

तब शिष्य का मोह उन्हे बुरी तरह सताने लगता है। निर्वेद के उपदेशक मुनि, शिष्य के प्रसंग में इतने केन्द्रित हो जाते हैं, कि सहसा भेद करना कठिन होता है, कि शिष्य के प्रति उनका ऊपर कथित कौन-सा ममत्व है।

किन्तु त्याग, तितिक्षा और निर्वेद व समता के अमर आराधक पूज्य श्री मायाराम जी म० में पता नही कौन-सा तेज था? अपनी साधना-यात्रा करते हुए वे एक बार राजस्थान गये थे। मेदपाट (मेवाड) के मुनिवर्ग ने अपने-अपने शिष्य और साधुत्व के पूर्वाभ्यासी शिष्यों का अर्पण कर उन्हे अपना श्रद्धा-केन्द्र चुना था। श्री छोटेलाल जी म०, श्री वृद्धिचन्द जी म० उन्हें भेंट में प्राप्त हुए, ऐसे ही शिष्य थे।

जब शिष्यों के भेंट की बात सुनी, तो पूरे देश का मुनिवर्ग आश्चर्य में डूब गया था। उन्होंने इसे आश्चर्य के शब्दो मे बाँधा और कहा—'सचमुच श्री मायाराम जी म० १९ वी शती के युगावतार महापुरुष हैं—जिन्हे मुनिजनों ने अपने शिष्यों की भेट दी।"

श्री मायाराम जी म० के यश: कीर्ति के मानचित्र मे सात नाम शिष्य* के रूप में जुड़े। वे हैं—

(१) श्री नानकचन्द जी म०, (२) श्री देवीचन्द जी म० (३) श्री छोटेलाल जी म० (४) श्री वृद्धिचन्द जी म० (५) श्री मनोहरलाल जी म० (६) श्री कन्हैयालाल जी म० (७) श्री सुखीराम जी महाराज।

सत्य यह है, कि पूज्य श्री मायाराम जी म० १९ वीं शती के दीपाधार थे। जो उनका स्पर्श पाता वह संयम की, त्याग की दीक्षा

---

* शिष्य-परिचय परम्परा-खण्ड में देखिये।

ग्रहण कर, अनंत आशाओं और सम्भावनाओं से भर जाता। अपना निज पद पाने के लिए आतुर हो जाता।

विशेष क्या ? संक्षेप में हम यही कह सकते हैं—वे जीवन के जौहरी थे। उनकी निर्मल आँखों में आत्मा का अमृत था। उनकी वाणी में चमत्कार था। जिसने उनकी आँखों में झाँका, वह सदा के लिये उनके इशारों पर चलने लग जाता था। जो उनकी वाणी सुनता था, वह सदा के लिए उनका दास हो जाता था। ●

13

गुरु युगल से भेंट

मुनिव्रती हुए कुछ वर्ष बीत गए थे।

मुनि मायाराम जी का शिष्यत्व अपने आदि गुरु श्री गंगाराम जी म०, श्री रतिराम जी म० के दर्शन के लिए अकुलाया। पंजाब से हरियाणा प्रांत में वे पहुँचे। मुनि गंगाराम, मुनि रतिराम को उन्होंने अपना आदि गुरु मानकर मनवेदी पर सश्रद्धा संस्थापित कर लिया था।

गुरु-युगल दनौदा ग्राम (हरियाणा) में चुप बैठा, ध्यान-साधना साध रहा था। जब कभी इन से उपरत होता तो वह युग्म सोचता और परस्पर वार्ता करता—"मायाराम, हरनामदास का चेला बन गया। यह तो हमारा मनचाहा हो गया। पर फिर कभी मिला नहीं। वह कैसा लगता होगा ? क्या वह अब भी वैसा ही होगा जैसा बड़ौदा में था ? कितना स्नेह था उसे ? कितना अपनत्व था ? पर मुनि बन जाने पर क्या उसमें वह सब रहा होगा ? रहे न रहे, मन हो रहा है एक बार उसे मुनित्व की चादर ओढे देखने को।" यह सब मुनि-युग्म सोचता रहता।

मुनि मायाराम जी भी जब कभी निरात में चिन्तन की गहराईयों में उतरते, तो सोचते—"यह अमृतपद, मुनि-धर्म उन गुरु गंगाराम जी रतिराम जी की कृपा से प्राप्त हुआ है।

उन्होंने ही इस योग्य बनाया है मुझे ! किन्तु मुनिदीक्षा के अनन्तर उनके दर्शन का प्रसंग नहीं आया।" भावों के अंकुर दोनों ओर ही उगते, उभरते रहे।

विचरणक्रम मे श्री मायाराम जी म० का हरियाणा प्रदेश में आगमन हुआ। ग्राम-नगरों में वे गये किन्तु उनका संलक्ष्य तो दनौदा ग्राम में स्थित आदि गुरुयुगल के चरण भेटना था।

मुनि मायाराम जी शिष्यवृन्द से परिवृत्त एक दिन अनायास ही पहुँच गये गुरुयुग्म के द्वार पर। श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म० ने देखा तो हर्ष में डूब गये। शिष्य के वात्सल्य से अकुलाये गुरु-युग्म के चरण मुनि मायाराम की अगवानी के लिये आगे बढ़े। उधर समर्पण के सैलाब में समाये मुनि मायाराम जी गुरु-युगल के चरणवन्दन हेतु आगे बढ़, झुके।

महाप्राण मुनि मायाराम जी के इतिहास के व्याख्याता पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने बताया—

श्री गंगाराम जी म० ने वन्दन हेतु झुके मुनि मायाराम जी को अधर में रोक, बाँहों में भर लिया। विभोर हुए वे बोले—मायाराम ! तेरी कीर्ति सुन कर, दूर बैठे ही मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। आज मुझे अनुभव हो रहा है—पूरे जीवन में अनेक साधनाये की तथा अनेक उपलब्धियां प्राप्त की। किन्तु उन सब से वह खुशी न मिली थी, जो आज मुनित्व की चादर ओढ़े हुए तुम्हें देखकर हो रही है। यह सब तो गुरु-युग्म कह रहा था और मुनि मायाराम जी ने कहा—जिन चरणों की अनुपम कृपा से मैंने यह सब प्राप्त किया उन्हें छूने से आप क्यों रोके हुए है। मुनिमना ने भावों में भरकर विधिपूर्वक गुरु-युगल को वन्दन किया तथा योग्य सेवा-हेतु अभ्यर्थना की।

प्रेम का बिन्दु : समर्पणका सिन्धु

प्रेम को यद्यपि आदान-प्रदान की तुला पर तोलने का प्रयत्न

किया जाता है। जब कि प्रेम न आदान चाहता है, न प्रदान। वह दोनों से मुक्त है। प्रेम बिन्दु है, समर्पण सिन्धु।

शिष्य और गुरुओं का मिलन हुआ। गुरुयुग्म गंगाराम, रतिराम जी का मन जब मोद से भर गया, तो उन्होंने मुनि मायाराम जी को वत्सलता से प्रेरित होकर कहा—

"मायाराम ! ये शास्त्रागार अब तुम्हें समर्पित है। इसके रक्षण, संरक्षण का दायित्व तुम्हे सौप रहा हूँ। इसमें हस्त-लिखित अनुपलब्ध, स्वर्णाक्षरित शास्त्र तो हैं ही, नानाविध गोपनीय विद्या, स्वर्ण-निर्माणादि-विधि, ज्योतिष, यंत्र, तत्र और मंत्रादि सभी कुछ है। इस संग्रह को सरक्षण दो और चाहो जैसे प्रयोग करो। पात्र की योग्यता के अनुसार चाहे जिसे दो। सारा आस विश्वास अब तुम पर ही है। ले लो और रखो। तुम गीतार्थ हो, जैसा चाहो वैसा करो।"

श्री मायाराम जी म० ने मनन में निश्चय किया—'माता-पिता और गुरुजनों में वात्सल्य उमडता है, तो कुछ देकर सुख अनुभव करते हैं।' अत, गुरु-युगल के आग्रह से मुनि मायाराम जी ने शास्त्रागार का अवलोकन किया। श्री गगाराम जी म० ने मुक्तमन से एक-एक ग्रन्थ की महत्ता उन्हें बताई। सब देखने के पश्चात् श्री मायाराम जी म० ने कहा—गुरुवर ! मुझ जैसा साधारण व्यक्ति इतने गुरुतर भार को कैसे वहन कर सकता है ?

मुनिमना की इस निस्पृहता पर, गुरु-युग्म स्तब्ध हुए। उन्होने साग्रह कहा—यदि तुम इस सब को स्वीकार नही करते—तो इसमें से जो भी तुम्हें रुचे वह ले लो। तब श्री मायाराम जी म० ने उस शास्त्रागार से एक पुराना हस्त-लिखित दशवैकालिक सूत्र ग्रहण किया। विदा की वेला में मुनिमना ने गुरुयुग्म से कहा—आपने मुझे संयम-पथ प्रदान किया है, अब यह कृपा और करो—मेरा पूरा मुनि-जीवन इस शास्त्र के अनुरूप सिद्ध हो।

+ + +

प्रसंगवशात् एक बार मुनिमना श्री मायाराम जी म० से सन्तों ने पूछा—सुनते हैं, श्री गंगाराम जी म० के शास्त्रागार में बड़े

अद्‌भुत ग्रन्थ हैं। आपने उसे देखा, तो उन्होंने आपको लेने हेतु निमन्त्रित भी किया। वहाँ से आपने कुछ भी ग्रहण नहीं किया, ऐसा क्यों ?

मुनिमना ने कहा—जिस परिग्रह ने मेरे इन गुरुयुग्म के उज्ज्वल चरित्र को आगे बढ़ने में बाधा पहुंचाई, वह परिग्रह मेरे लिये उपादेय कैसे हो सकता है ?

+ + +

गाड़ी में नाव :

कभी गाडी नाव पर, तो कभी नाव गाड़ी पर। यह तो क्रम है चढ़ने-उतरने का। गुरु मार्गदर्शक होता है। गुरु को काठ की नाव कहा जाता है। जो खुद तिरे और को भी तिरा दे। परन्तु कभी-कभी ऐसा प्रसंग भी आता है, कि नाव में सुधार की आवश्यकता उत्पन्न हो आती है। तब गाड़ी पर नाव को चढ़ाया जाता है।

श्रुति-परम्परा से सुना—रामामंडी (पंजाब) में स्थित गुरु श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म०, से श्री मायाराम जी म० ने अत्यन्त विनम्र भाव से निवेदन किया—"गुरुप्रवर, मेरी विनम्र विनती स्वीकार करें। मेरा स्नेह-पूर्ण आग्रह है, आप दोनों मुनि विधिवत् मुनिसंघ में मिल जाए तो कितना अच्छा हो ?'

पूरी जिंदगी जो बात उन्हें समझ न आई, वह एकक्षण में उनकी समझ में आ गई। उन्होंने मंत्र-यंत्र और तंत्र सब कुछ छोड़-छाड़ कर मुनिसंघ में अपना विलीनीकरण कर लिया।

कितना सहज हो गया—कठिन कठोर कार्य। कठिनाई या आग्रह की एक कील तक गड़ी दिखाई नहीं दी।

सब कुछ छूट गया। गुरू-युग्म को अतीत याद ही नहीं रहा। श्री गंगाराम जी म० और श्री रतिराम जी म० का भूला-बिसरा ज्ञान, अरणि-स्थित प्रकाश की तरह प्रकट हो गया। इस प्रकाश से एक सत्य सामने आया। उन्होंने कहा—"समय को भूत, भविष्य

और वर्तमान इन तीनों भागों में बाँटा जाता है। मुनि मायाराम ! अब हमें भूल से भी अपना अतीत याद नहीं आता। भविष्य भी नहीं। भविष्य आकांक्षा का अंधकार है। अतीत निराशा का झिलमिलाता झमेला है। सच तो वर्तमान है।"

ठीक ही कहा—उन्होंने, हमारे आचार्य भी ज्ञान के नाम पर यही दुहराते आए है—

गई वस्तु सोचे नहीं आगम, वांछा नाय,
वर्तमान वर्ते सदा सो ज्ञानी जग मांय।

शिष्य बिंदु है, गुरु ज्ञान का सिंधु। यहाँ सब उलट गया।

सिंधु बिन्दु में समा गया है। मुनि मायाराम के शिष्यत्व के बिन्दु में श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म० का गुरुत्व समा गया। सिंधु का प्रवाह बिन्दु की ओर हो गया।

धन्य मुनि ! धन्य बिन्दु !! धन्य सिन्धु !!!

14

यायावर बने मुनिमना

मुनि यात्री है।

जन्म का ही यायावर है।

—उसे नितान्त यात्रा प्रिय है। यायावरत्व उसके प्राणों में समाई सुगध है। यह सुगध उसे महल में भी मिलती है और श्मशान में भी। इस सुगंध से न उसे प्रान्त रोकता है न प्रदेश, न नगर न गाँब। न ही नमन से पूर्ण श्रद्धालु जनों के आग्रह उसे रोक पाते है।

मुनि यात्री है। अन्तर से भी यात्री है, तो बाहर से भी। नित्य नई यात्रायें उसके जीवन में होती हैं। यात्रा में निमग्न होकर ही शताब्दियों पहले सन्त कबीर ने कहा था—

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लकुटिया हाथ।
जो घर फूंके आपनो, चले हमारे साथ॥

बाजार में खड़े होने, लकुटी हाथ में लेने और घर फूंकने की बात कबीर ने क्यों की थी? इसीलिए कि साधुता घर बसाने वालों के बस की बात है हो नहीं। अगर इस पर किसी को विश्वास न हो, तो कबीर की बात माने और सबसे पहले अपना घर फूंक दे। मन यात्री बना, कि महल और मरघट में यात्रा के आनन्द की सुगन्ध आने लगेगी।

श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० भी यात्री थे। सुदूर देश-प्रदेशों की यात्रा उनके मन को आनन्द से भर दिया करती थी। उनका साधुमन यात्रा प्रसंगों में विविधानेक व्यक्तियों से मिलता-भेंटता। व्यक्ति-व्यक्ति में विश्वास जगाता और मोद से भर जाता था। जन-मंगल और जनोत्थान के बीजों को बखेर करने वाला मुनि, एक स्थान, एक प्रदेश, एक नगर, या एक नदी के किनारे वहाँ की हरियाली में मुग्ध होकर नहीं बैठता। बैठना उसकी दृष्टि में पराजय है। चलना उसकी दृष्टि में परम विजय है।

चलना धर्म है।

रुकना रोग है।

मुनि ने चलना धर्म इसलिये माना है, कि किसी एक का होकर रहना वह नही चाहता। रुकना उसकी दृष्टि में रोग है। इसलिये कि मोह और ममत्व की दुर्गन्ध उनके वैरागी मन को दुःखी करने लग जाती है।

वह रुकता भी है—तब, जब साँस-साँस उसे गवाही देने लगता है, कि मृत्यु के सिवा अब आगे बढ़ने की मंजिल का दरवाजा बन्द हो चुका है। तब वह रुक जाता है।

जब वह रुकता है, ठहरता है, निश्चिन्त होता है, तब उसका चलना-बढ़ना और बोलना तो दिखाई नही देता। वह वाणी का मौन साधकर मृत्यु के निमन्त्रण में जुट जाता है। हमें लगता है, मुनि ने चलना बन्द कर दिया है; परन्तु वहाँ सत्य यह होता है, कि बाहर में रुका, ठहरा मुनि उमंग-उमंग कर मृत्यु का स्वागत करता हैं इसलिए तब भी हमें यह कहने का अधिकार कहाँ रहता, कि हम, कह दें—मुनि ने चलना बन्द कर दिया है।

श्री मायाराम जी म० के भ्रमण, परिव्रजन की हम कुछ संक्षिप्त चर्चा कर रहे हैं। उनके परिव्रजन की चर्चा का अर्थ है—उस युग की, प्रकृति, परिस्थिति व जन-चर्चा; जब श्री मायाराम जी म० जन-जन को धर्मोपदेश देते हुए गांव-गांव घूम रहे थे। हम देखेंगे—उन परिस्थितियों में मुनियों का शुद्ध संयमीय रीति से विचरण करना,

जनोत्थान करना कठिन था। कितने ढेर से परिषहों को अपने ऊपर स्वीकार कर जनकल्याण करना वस्तुत: कितना दुरूह था। फिर भी उन्होंने यह सब किया।

हरियाणा :

मुनिमाया की देह ने इस प्रदेश में जन्म लिया था। मुनित्व स्वीकार करने अनन्तर अनेक वर्षों तक इस प्रदेश के गाँव-गाँव में घूमे। हम कुछ कहें—तब का हरियाणा प्रान्त आज का आधुनिक सुख-सुविधाओं वाला हरियाणा नही था। नहरों से वंचित ! पीने के पानी को भी बहुत से लोग तरसते थे। न स्वच्छता थी, न सुविधा। तालाब का पानी उन्हें पूरे वर्ष पीना पडता था।

श्री मायाराम जी म० इस ओर की विषमताओ से विमुख नही हुए। इन्होंने हरियाणा के गाँव-गाँव में धर्म की ज्योति जगाई। दिये से दिया जिस तरह जुड़ जाता है ऐसे ही श्री मायाराम जी म० ने ग्राम-ग्राम में घूम-घूम कर धर्म-तत्त्व से लोगों को परिचित कराया।

\+ + +

हरियाणा प्रदेश के अधिकाँश क्षेत्र श्री मायाराम जी म० के ही बनाये हुए है। इन क्षेत्रों का निर्माण उस समय किया था—जब पीढ़ी की पीढी समाप्त हो जाती थी, पर कोई मुनि हरियाणा में प्रवेश करने से भी कतराता था। हरियाणा प्रदेश में अगर भूल से भी कोई मुनि प्रवेश करता था, तो वहाँ एक पंक्ति अक्सर व्यक्ति-व्यक्ति की जिह्वा से सुनी जाती थी—

ऐसी क्या विपता पड़ी बाँगर आये फ़क़ीर।

इस प्रदेश के ग्राम-नगरों में उन्होंने अनेक चातुर्मास किये। रोहतक, कसूहन, कैथल, बड़ौदा, भिवानी आदि कुछ स्थान है, जहाँ श्रद्धेय श्री ने चातुर्मास कर जनोत्थान किया।

इस प्रदेश से अनेक व्यक्तियों ने उनके चरणों में जिन-दीक्षा स्वीकार की। अन्तत: अपनी नश्वर देह का विसर्जन भी इसी प्रदेश के भिवानी नगर में उन्होंने किया।

\+ + +

पंजाब :

पञ्चनद प्रदेश (पंजाब) यू कहने को तो पहले से भी और आज भी हंसता-गाता हरा-भरा, सुख-समृद्धि पूर्ण प्रदेश है। किन्तु इसे हम विडम्बना ही कहेगे—भौतिक दृष्टि से सम्पन्न इस प्रदेश में मद्य और मांस के प्रचार का बाहुल्य था।

श्री मायाराम जी म० ने अपने प्रवचनों द्वारा यहाँ की जनता को उद्बोधन दिया। उनके प्रवचनो से प्रभावित होकर अनगिन लोगों ने इन दुर्व्यसनो का परित्याग किया।

मुनि मायाराम जी 'पजाब की कोयल' के नाम से सारे भारत मे विश्रुत हुए। इस का कारण यह था कि पजाब मुनि-सम्प्रदाय के वे मुनि थे। यही उनका विचरण था। उनके जीवन का अधिकाश भाग इसी प्रदेश में अतीत हुआ। मुनिमना के इस प्रदेश में अधिक रहने का एक कारण यह भी था—पजाब मुनिसघ परामर्श-हेतु समय-समय पर 'उन्हे यहा आने को आमन्त्रित करता रहता था। मुनिसघ में कोई भी प्रश्न उत्पन्न हुआ—कि आचार्य श्री उनसे परामर्श लेने हेतु सन्देश भेज बुलाते। अतः मुनिमना का यहाँ होना आवश्यक होता था। पजाब प्रदेश के पटियाला नगर मे ही उन्होने दीक्षा-ग्रहण की थी। इस प्रदेश के अन्य कई नगरो में उनके शिष्य, प्रशिष्यो की दीक्षाये सम्पन्न हुई थी। अमृतसर, पटियाला, फरिदकोट, लाहौर सियालकोट आदि नगरों में उनके चातुर्मास हुए।

देहली :

इन प्रदेशों के साथ-साथ हम देहली की चर्चा करे। देहली की जनता महाराज श्री के तप, त्याग, सयम पर पूर्णत विमुग्ध थी। महाराज श्री ने देहली में कई चातुर्मास किये। यहाँ के जन-वर्ग मे स्वाध्याय की ज्योति जगाई। अनेक व्यक्तियों को शास्त्रीय बोध दिया। परिणामत यहाँ लोग तत्त्व के जिज्ञासु बने ! देहली मे उनके शिष्य-प्रशिष्यों की दीक्षाएं भी सम्पन्न हुई।

उत्तरप्रदेश :

देहली से छूता हुआ प्रदेश—उत्तरप्रदेश। इस प्रदेश में भी

महाराज श्री ने प्रचुर विचरण किया। जनता को धर्म से अवगत कराया। इस प्रदेश की जनता महाराज श्री के प्रति अनन्य आस्था रखती थी। इसका अब भी वहाँ घूमकर प्रत्यक्षतः अनुभव किया जा सकता है। कुछ चातुर्मास भी उन्होंने इस प्रदेश में किये। यहाँ पर जन्मे कई व्यक्तियों ने उनके समीप दीक्षा ग्रहण की। जिनका परम्परा खण्ड में यथा-प्रसग उल्लेख किया गया है।

\+ + +

राजस्थान :

उपरोक्त प्रदेशों के विचरण के साथ-साथ मुनिमना राजस्थान की भी ओर उद्ग्रीव हुए। वे राजस्थान गये। एक बार नहीं, दो बार गये। प्रथम विचरण में जिन स्थानों पर वे न जा सके, वहाँ द्वितीय भ्रमण में जाकर आए। इस प्रदेश में उन्होंने अलवर, जयपुर, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर आदि नगरों में चातुर्मास किये। उनका विचरण केवल नगरों तक ही न था। उनका प्रयत्न होता— गाँव-गाँव में जाया जाये। वहाँ की सुप्त जनता को धर्म का प्रकाश दे, जागृत किया जाये।

इस प्रदेश में परिव्रजन करते हुए महाराज श्री के जीवन की अनेक घटनायें घटीं। वे घटनायें केवल वहाँ की जनता में ही नहीं अपितु अन्य प्रान्तस्थ जनता में भी चर्चा व आश्चर्य का विषय बनी। उन घटनाओं का उल्लेख यथा-प्रसंग ग्रन्थ में किया गया है।

राजस्थान के अनेक आचार्यों व प्रमुख मुनियों से उनका मिलना हुआ। सम्प्रदायवाद के कट्टर गढ़ क्षेत्रों लाडनूं, चूरु, सरदार शहर आदि की स्थानकवासी सम्प्रदाय से इतर जनता ने भी उनके तप-त्याग, संयम से प्रभावित होकर अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना की। कहना असगत न होगा—अपने राजस्थान विचरण में जो सफलता मुनि-श्रेष्ठ को प्राप्त हुई वह ऐतिहासिक एवं अपूर्व थी।

इस प्रदेश से उन्हें अनेक शिष्य-प्रशिष्य प्राप्त हुए।

\+ + +

मध्यप्रदेश :

मुनिमना ने राजस्थान विचरण के अनन्तर मध्यप्रदेश में पदार्पण किया। इस प्रदेश के उज्जैन, खाचरौद, मांडलगढ़, इन्दौर आदि

प्रसिद्ध नगरों के साथ-साथ वे अनेक ग्रामों में भी पधारे। मध्य प्रदेश में वन्य जातियों का बाहुल्य है। अज्ञानता व नानाविध अन्धविश्वासों से ग्रसित, यहाँ की आदिवासी जन-जातियाँ पशु-बलि, मद्य-माँस-भक्षण में प्रवृत्त हैं। मुनि-श्रेष्ठ इस ओर पूर्ण सजग थे। उन्होंने इन वन्यजातियों के कुविचारों के परिशोधन-हेतु वनों में भी ठहरना स्वीकार किया। वहाँ उनका भीलों से भी साक्षात्कार हुआ। अनेक-विध उपसर्गों का भी सामना हुआ। पर करुणा-पुरुष ने उन सबको सहर्ष सह कर धर्म का प्रकाश वहाँ भी पहुचाया।

मध्य प्रदेश में महाराज श्री ने चातुर्मास भी किये तथा एक प्रशिष्य यहाँ से उन्हें प्राप्त हुए।

+ + +

श्री मायाराम जी म० के समय में एक जनश्रुति थी, जो शताधिक कठों मे फूटी "जैन मुनि की आचार-संहिता इतनी बारीक है, कि वह उस संहिता की डोर में अपने मुनित्व को सुरक्षित रखते हुए सुदूर प्रदेशों की यात्रा नही कर सकता। यही कारण है, कि सुदूर दक्षिण का मुनि-समाज पंजाब के मुनि-समाज से परिचित नही हो पाता। न पंजाब का मुनि-समाज उधर के मुनि-वर्ग से मिल-भेट पाता। श्री मायाराम जी म० ने यह सुना, तो उनके साहसिक मुनित्व ने कहा—

"गुजरात, पंजाब से कितनी ही दूर हो, मार्ग में कितने ही बाधाओं के पहाड़ खड़े हों, किन्तु मैं इस प्रांत-प्रदेश की दूरी को पाटता हुआ गुजरात अवश्य जाऊंगा।" उन्होंने गुजरात जाने का निश्चय किया। राजस्थान को लाँघ कर मध्यप्रदेश में प्रवेश किया। गुजरात के बाद बम्बई और फिर दक्षिण भारत तक की यात्रा करना उनका लक्ष्य था।

मुनि का निश्चय उसका अपना होता है। कर लिया निश्चय तो बढ चले। फिर कौन बाट में मनुहार के फूल बखेर कर उन्हें विमोहित कर सकता था? वे चल पड़े! पंजाब से गुजरात की सुकुमार सस्कृति की ओर।

चलते रहे। चलते रहे। मार्ग में अनेक कठिनाइयों के काँटे आए। कांटों की चुभन को सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्नेह का उप-

हार देते हुए आगे बढ़ते गए। मनुहार की बयार चली तो मोहमुक्ति के फूल बखेरते हुए चलते रहे। राजस्थान माप दिया, उनके पैरों ने। मध्यप्रदेश की परिक्रमा करते हुए इन्दौर पहुंच गये। इंदौर के के बाद मध्यप्रदेश की सीमा न के बराबर आगे रह जाती है। वे बम्बई, गुजरात और दक्षिण के लिए उद्ग्रीव हुए ही थे, कि फिर पंजाब लौटना पड़ा। क्यों? आचार्य श्री का विशेष सन्देश मिला—शीघ्र पंजाब लौट आओ। वे फिर लौट आए। आगे नहीं बढ़े।

—यह हुआ उनकी यात्रा का एक वृत्त।

15

आचार्यों के पार्श्व में

आचार्य, आचार दृढता का तीव्र प्रवाहमान स्रोत होता है। उस पर पूरे मुनि-संघ की आचार दृढता व संयमीय जीवन की प्रामाणिकता एवं नैतिकता का पूरा-पूरा उत्तरदायित्व होता है। वह मुनि-मघ का नियन्ता, निर्देशक एवं पथ-प्रदर्शक आदि सब कुछ होता है। वहाँ मुनि की श्रद्धा केन्द्रित होती है। वह स्पष्ट रूप से मुनि-समूह का श्रद्धाधार होता है।

तो ऐसा महिमा-मण्डित स्वरूप है—आचार्य का ! और आचार्य जिस व्यक्तित्व को बहुमान प्रदान करे, अपने प्रत्येक कार्य में जिससे परामर्श लें, जो आचार्यों का अत्यन्त विश्वासार्ह हो, जिस की उपस्थिति प्रत्येक संघ-सम्मेलन मे अनिवार्य हो और जिसके तप-त्याग, संयम व समत्व से आकृष्ट हो आचार्य व मुनि-प्रवरों ने अपने शिष्य नक समर्पित किये हों ? वह व्यक्तित्व क्या होगा ? उसके लिये हम क्या सोचें ?

आचार्य-प्रवरों ने श्री मायाराम जी म० को कैसा, क्या स्वीकार किया था, यह हम कुछ नहीं कह रहे ? जीवन्त जीवन-प्रसंग जो स्वयं बोल रहे हैं, पाठक उन्हें देखें और आंकें उस महामना को !

\+ \+ \+

श्री मायाराम जी म० के जीवन-काल में पंजाब मुनि-संघ में

क्रमशः चार आचार्य हुए—आचार्य श्री अमरसिंह जी म०, आचार्य श्री रामबख्श जी म०, आचार्य श्री मोतीराम जी म०, आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ।

मुनि-सघ में मानवीय दुर्बलतायें भी कभी-कभी घट जाती हैं। इस तरह के नानाविध प्रसंगों और कठिनाइयों के उपस्थित होने पर उपर्युक्त सभी आचार्य, मुनीश्वर श्री मायाराम जी म० से विचार-विमर्श करते। श्री मायाराम जी म० मुनियों की इकाई में उत्पन्न समस्या का उचित समाधान प्रस्तुत कर देते। समस्या सहज और मानवीय मूल्यों का आधार पाकर सुलझ जाती। वातावरण में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती तो वह अत्यन्त मधुर व सौहार्द-पूर्ण हो उठती थी।

सर्व-विदित तथ्य है यह—पंजाब मुनि-सघ की कोई सगठन व आचार-विषयक संयोजना अथवा अन्य कोई निर्णय श्री मायाराम जी म० के परोक्ष में न होता था। आचार्य श्री, श्री मायाराम जी म० से परामर्श के अनन्तर ही कोई संयोजना कार्यान्वित करते थे।

श्री मायाराम जी म० पंजाब के श्रद्धेय आचार्यों के विश्वासाधार थे। तो कैसे ? देखें क्रमशः —

१. **आचार्य श्री अमरसिंह जी म०**[1] : श्रद्धेय आचार्य श्री, मुनिमना पर अत्यन्त स्नेह रखते थे। दीक्षावय में लघु होने पर भी उन्हे पूर्ण सम्मान देते थे। संघीय विषयों पर उनसे वार्ता करते थे। अमृतसर नगर में (सवत् १९३७) तीन दीक्षार्थियों के दीक्षा प्रसग पर आचार्य श्री ने अपने मुखारविन्द से कहा था—"मुनि मायाराम दीक्षा-पर्याय के बन्धनों से मुक्त है। वह शिष्य बना लेने की योग्यता से भी बहुत आगे की क्षमता रखता है। यदि उसे आचार्यपद भी दिया जाये तो भी दीक्षा-पर्याय उसमें बाधक नही बन सकती।[2]

१. परिचय परम्परा-खण्ड में देखें।
२. देखें—पृष्ठ ५०

२. **आचार्य श्री रामबक्श जी म०[1] :** इन से श्री मायाराम जी म० का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा। दोनों को एक दूसरे पर अनन्य निष्ठा और प्रेम था। मुनि मायाराम जी ने उन्हें अपना शिक्षा-गुरु माना। शास्त्र-स्वाध्याय इनके सान्निध्य में की। पटियाला में (१९३४) सब से पहले श्री रामबक्श जी म० ने ही मायाराम जी से परिचयवार्ता की थी। तबसे उनके आचार्य बनने तक दोनों को एक दूसरे के प्रति आदर और भक्तिभाव बना हुआ था। मुनि मायाराम जी ने उन्हें भक्तिभाव अर्पित किया। श्री रामबक्श जी म० ने मुनि मायाराम जी को असीम वात्सल्य दिया।

कभी-कभी अलग-अलग विचरण का प्रसंग उपस्थित हो जाता था—तो श्री रामबक्श जी म० निरन्तर मुनि मायाराम जी की कुशल क्षेम पुछवाया करते। जब मिलते तो उन से यात्रा प्रसग-सुनते। मार्ग की कठिनाईयों की जानकारी ज्ञात करते।

३. **आचार्य श्री मोतीराम जी म० :** श्री रामबक्श जी म० के बाद आचार्य बनाने का प्रसंग आया तो श्री मायाराम जी म० ने स्वयं श्री मोतीराम जी म० का नाम प्रस्तावित किया था।

श्री मायाराम जी म० के नाम के साथ 'चारित्र-चूड़ामणि' शब्द जुडा हुआ है। यह सम्बोधन सवप्रथम आचार्य श्री मोतीराम जी म० ने किया था। कालांतर में वही विशेषण इनके नाम के साथ पूरी तरह जुड़ गया। यही कारण है, कि आज सौ साल बाद का मुनि-समाज भी उन्हें 'चारित्र-चूडामणि' मुनि मायाराम जी के नाम से अभिहित करता है।

४, **आचार्य श्री सोहनलाल जी म० :** श्री सोहनलाल जी म० और श्री मायाराम जी म०, दीक्षा की दृष्टि से समवयस्क थे। श्री सोहन लाल जी म० उन से दीक्षा में केवल डेढ़ वर्ष ही बड़े थे। दोनों में घनिष्ठ मैत्री थी। प्रसग एक बार का—

संवत् १९६० (मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी) में उत्तर प्रदेश के कांधला क्षेत्र में आचार्य श्री सोहनलाल जी म० के सान्निध्य में तीन

---

१. परिचय परम्परा-खण्ड में देखें।

दीक्षायें होने वाली थीं। उनके क्रमशः नाम—श्री काशीराम जी, श्री नरपतराय जी व श्री मथुरादेवी जी थे। इस प्रसंग पर आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ने श्री मायाराम जी म० को विशेष आग्रह पूर्वक निमन्त्रित किया। मुनिमना वहाँ पहुँचे। दीक्षावसर पर आचार्य श्री ने, श्री मायाराम जी म० से कहा—दीक्षार्थि-जनों को दीक्षा-पाठ तुम पढ़ाओ!

श्री मायाराम जी म० ने विनम्रता प्रकट करते हुए कहा—"आप आचार्य हैं। आपके सामने मुझे यह कहीं शोभित हो सकता है? दीक्षा का पाठ आप ही अपने मुखारविंद से उच्चारित करें—मुझे यही प्रिय लगेगा :"

श्री सोहनलाल जो म० ने मुनि-कुल-भूषण श्री मायाराम जी म० से कहा—"दीक्षा-पाठ तुम्हें ही पढाना है। मैं यह सब क्यों कह रहा हूँ, तुम्हें पता है? मैं चाहता हूँ, दीक्षित होने वाले तीनों दीक्षार्थी तुम्हारे जैसे तेजस्वी बनें।" तब आचार्य श्री के कहने पर उदात्त-चरित-मुनि ने दीक्षाभिलाषियों को दीक्षाभिमन्त्र प्रदान किया।

आचार्य श्री सोहनलाल जी म० के उक्त वाक्यों को साध्वीमना विदुषी श्री मथुरादेवी जी म० अनेक बार प्रवचन मचों से सुनाती रही है। योगिराज श्री रामजीलाल जी म० को श्री मथुरादेवी जी ने अनेकों बार यह सुनाया।

अब आप भी, हम भी, सभी सोच सकते हैं, कह सकते है, आचार्य श्री सोहनलाल जी म० और श्री मायाराम जी म० वस्तुतः कितने घनिष्ठ थे।

श्रमणों की श्रुत-परपरा ने हमें सुनाया। पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने भी सुनाया कि "श्री सोहनलाल जी म० श्री मायाराम जी म० को अपनी दाहिनी भुजा मानते थे। सघ और मुनियों के प्रत्येक कार्य में श्री मायाराम जी म० के विमर्श की मुहर अवश्य लगा करती।

इस भाँति हमने देखा—मुनि मायाराम जी म० अपने जीवन-काल में पचनदीय आचार्यों के कितने पार्श्व में रहे। उनके प्रत्येक-

विध कार्यों में सत् परामर्श देते रहे। श्रद्धेय आचार्य उन्हें सदेव सम्मान की दृष्टि से देखते रहे।

प्रस्तुत में मरुधरदेशीय आचार्य एवं पूज्यमुनिवृन्दों के साथ मुनि-पुंगव श्री मायाराम जी म० के कैसे, क्या सम्बन्ध थे, इसी के साथ जानते चलें ?--

आचार्य श्री उदयसागर जी म० : आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म० की मुनि-सम्प्रदाय के विश्रुत आचार्य श्री उदयसागर जी म० थे। ये अतीव संयमनिष्ठ यशस्वी आचार्यरत्न थे। श्रद्धेय मुनिमना श्री मायाराम जी म० विचरण क्रम से जब राजस्थान पधारे, तब आचार्य-प्रवर से उनका साक्षात्कार हुआ। मिले-भेटे, चर्चा वार्ता हुई। साथ रहे। आचार्य श्री मुनिमना के तप.पूत सयम-निष्ठ जीवन पर इतने विमुग्ध हुए कि उन्होंने अपने एक वैरागी शिष्य श्री छोटेलाल जी को, उन्हें समर्पित किया।* श्री मायाराम जी म० राजस्थानीय जिन क्षेत्रों में पधारे, वहाँ सघों एवं मुनियों को सूचित किया—मुनि मायाराम जी की सेवा-भक्ति का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

यहीं से पंजाब-मुनि-परम्परा एवं मरुधरा की मुनि-परम्परा में स्नेह-सम्बन्ध के सूत्र संस्थापित हुए।

आचार्य श्री चौथमल जी म० : आचार्यप्रवर श्री उदयसागर जी म० के स्वर्गारोहणोपरांत, इस परंपरा में द्वितीय आचार्य श्री चौथमल जी म० हुए। मुनिमना श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० एवं आचार्य श्री में बड़ा गहरा और स्थायी स्नेह सम्बन्ध था। यह मात्र कहने या लिखने भर का सत्य नही था। वह वैचारिक स्तर पर और आचार गत एकता का साम्य लिए हुए था। विचार और आचार की एकता के अभाव का मिलन, मिलन नही होता। उसे हम छलावा कह सकते हैं। छल और बल से परे होता है सच्चे नेह का नाता।

वह मैत्री, मैत्री ही नही है जिस में विचार, आचार के अमृत में बदल कर एकरस नहीं हो जाता। तो महामुनि श्री मायाराम जी म० और आचार्य श्री चौथमल जी म० की मुनि मैत्री किस प्रकार

---

* देखिये—परम्परा-खण्ड, समर्पण में जन्मे...

गूंथकर समरसीभाव की सृष्टि करती है—इस सत्य की साक्षी लिए आचार्य श्री के आदेश से लिखवाया गया लम्बा सत्य उस समय की लिपि भाषा और शैली में अविकल प्रस्तुत है अध्ययन कीजिए—

॥१॥ अरं हमारी तर्फ से स्वामी मयारामजी त्यागवंत धीरजवंत
बीनेवंत ग्यानवंत आतम अनुकूल सीलोकुं बीनाती कचा।
चार मे पृवृति के करण हारे सील संपदा कुनि-आव के करण
हारे आचारज के पृतिकुल वरतने वाले कुं न्याय नीती से सुद्ध।
करण हारे इत्यादीक सब आपकु आ जाओ कीजती कार्क
बीने सुख धर्म के धारक एसे उत्तम बिनेवंत कुं हमारी तर्फ से बोत बे
त गाढी गाढी सुख बेसाता मालुम होवे औ आपने नानक रामजी
साधपुरुत्ते ने जो उसका उद्र सु हबुस हमारी हेड पसमा की कउर
दीया है सो आप वन केजी बानी सूं न लेना और आप कुं तो जिना।
गम युक्त पुवृतने का बोत ही पपउआ वदे उस से आप के उपर हम
कु बोत ही ही तउत्पतिका उससे आप कुं नीचे सुजब राहाणी।
थी है सो आप की राह में आवे तो वे रीत बोत उत्तम है: बस इपादु आ
हार वान कु आदा कमीयादीक दोस सही तनो गवे वा बेवा सजीस
गबका चुंगा नही होय वाक लेसीग बहोए उसके सामील उतरण
या आसन नी मंतणा इत्यादीक बारे प्रकार का संजोग करण नही
कारण के उसमे दोस कुं साज्य होता है और आप की लीन रमाइको
मलताइ बोत है सो आपतो कोइने कोइ करनफहीराही की नीका पवे
बासते कोइ सुरत से कोइक संजोग करले वो पुंड और साहु ए उन।
बेसंगाते नइ करे तो उसमे प्रसी लोग नही करे उनको बेचसमतेहे
और नी द्या करते है इससे ये बंदो ब स्तकरणा ठीक है
और सीससाहू कुं गबसेबार करदे वे उसकुं रीती पदेस करके आ।
चार जो के अनुकुल करना पुंड संजोग व करण सनमान मइ करण
और आप के संतना न करामजीया हा हमारी समीपे आये सो हमे।
उन की पोच आचार की उसरीती देख के बोत ही हो लउ मती है वाउ
सबसे हमाए साता पुछली उत पर दी टेना करणी सामीरा वन रणवे
संजोग कीवा है और आप की बैठे नककाकी मुरजादव ड जीती
पलीआ है सो आं हा पे इसमुनपहु तिजीसवं ताकी देखना उनमे

संजोग करणा और आपने जो हमारी एकाणवकी मुरजाद दे
वी बासी बीहो वेगा उसका की कछू छे बसे संजोग करणा और आ
पका आहमारा संता मे मुरजाद मे ढीला वेतो उस पर हीतार वकर
के गच्छ लिटी का दुणी को संजोग करणा इस मुरजाद से संतो कु परम
परबी माटी कधर्म का बोत ही ही तफार होवेगा एसा मीन्यार से॥
वे ठेराव कीया है सो आपकुं या आपके संता कुं और हम कु मा हमा
रे संता कुं हेतप्रीती के सा चगलती को मावणी और हीता वेकरण
और उत्सुवृतिकी वृद्धी करणी वे हमारी एन बुसी है और आय
का या हमारा संता कु ही तनी विशुद्ध करणो के कोदोस से सन्मावदकी
न्यारी न्यारी है सो इसमे लजाने यहे तप्रीती से आंकुं मसे सामनेद
कंक से ही तार थबोत ही होता है सो इब पेहु कालजावकी यार के
ही मार्ग के वास्ते वे ठेराव बोत ही उत्तम है सो इब पेह काल ना वे
पके उस पुरहीत सी शीक्षा देणी ये बडा न्याव का कारण है और आ
पकु हमारे संतों में गच्छ लिटे वो जो सकु न रमा इस या
हमाइस ही शीक्षा देणी ये हमारी आपकु पुलासा रजाद के की
सी तरे से दोस वो लावणा ये बो नहीं व मबातदे आयतोबो
हो तहीं उत्तम बीनेवंत धीर्यवंत हो सो सब तरह का आपर
कनाण हो सो ठ्यो न समझो तही मन बल कुं पोचते हो सो ये
लेख बोहे मेग्रणसमजके तिन काल का निरन्याव करणा

संमत १९५९ संपूर्ण मीती माह सुद ३ हुकम पुज्य चोथमल
का हुकम से लिखी ईसवरलाल ने

[प्रस्तुत इस पत्र में आचार्य प्रवर श्री चौथमल जी म० ने श्रद्धेय मुनिमना श्री मायाराम जी म० के लिये—लज्जावन्त, धैर्यवन्त, विनयवन्त, ज्ञानवन्त, आर्यअनुकूल आचार वाले, शिष्य सम्पदा के निभाने वाले, विपरीत-मार्गी को न्यायनीति से शिक्षा देने वाले आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हुए बहुत-बहुत सुखसाता ज्ञात की है। तथा कहा है—"आपको जिनागम-युक्त आचार-प्रवृत्ति में अत्यन्त उत्साह है। इससे हमें आपके प्रति बहुत ही हितोत्पत्ति हुई है।" अपना एक सुझाव भी आचार्य श्री ने दिया—

"जिस गच्छ का आचार अच्छा न हो, या कोई गच्छ क्लेषी

हो, तो उसके साथ साधुसमुचित व्यवहार न करे। आप अत्यन्त कोमल-हृदय पुरुष हो, तथा जो भी आप करते है, वह लाभ सोचकर ही करते हैं। लेकिन और जो साधु, वे उनके साथ व्यवहार न करें तो लोग सन्तों में परस्पर खीच समझते हैं। जो साधु गच्छ से बाहर कर दिया जाये, उसे हितोपदेश देकर आचार्य के अनुकूल किया जाये; परन्तु उसके साथ साधुसमुचित सम्भोग न करें।"

श्री मायाराम जी म० के प्रथम शिष्य श्री नानकचन्द जी म० आचार्य श्री से मिले थे। उनके विषय में आचार्य श्री ने लिखवाया-

आप के शिष्य नानकचन्द जी यहां आये थे। उनकी पंचाचार-युक्त उत्तम रीति (क्रिया) देखकर हमे उन पर अत्यन्त हित उत्पन्न हुआ। हमने उनके साथ परस्पर वन्दन-व्यवहार, साथ ठहरना आदि सभी व्यवहार किये। आपने मुनि नानकचन्द के द्वारा जो (धारणा-साम्य-हेतु) प्रश्न भेजे थे उनका उत्तर हमने शास्त्रयुक्त क्षयोपक्षमानुसार दिया है।"

"हमने आपका ५२ नियमो वाला मर्यादापट्ट लिख लिया है। आगे से जिस मुनि की प्रकृति उसके अनुसार देखेगे, उनसे हम व्यवहार करेंगे और आपने हमारा ६१ नियमवाला मर्यादा-पट्ट देखा या लिखा होगा ? जो उसके अनुसार चले उससे आप व्यवहार करे।"

"हमारे सन्तों में या आपके सन्तों मे मर्यादा-सम्बन्धी कोई ग़लती हो, तो उसे हितार्थ जानकर निकालना, फिर संभोग करना। इस मर्यादा मे सन्तों में परस्पर विनयादिक धर्म की बृद्धि होगी। ऐसा विचार के यह ठहराव किया है—आपको या आप के सन्तों और हमें या हमारे सतों को हित-प्रीति के साथ कोई ग़लती हो तो वह छुड़ा देनी और परस्पर हित करना। उत्तम प्रवृत्ति की बृद्धि करना। इसमें हमारी पूरी खुशी है। आपका या हमारे सन्तों का हितनिभाव करना। कारण यह है, कि कालदोष से सामाजिक प्रवृत्ति न्यारी-न्यारी है। लज्जा, भय, प्रीति, अकुश से बहुत हित होता है। अतः द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विचार कर हितार्थ यह उपरोक्त ठहराव बहुत ही उत्तम है। लाभ का कारण है।" अन्त में आचार्य प्रवर ने कहा—

"आप को हमारे सन्तों में ग़लती देखने पर नरमाई या कड़ाई से शिक्षा देनी। यह हमारी आप को खुली रजा (अनुमति) है। दोष छुड़वाना यह बहुत उत्तम बात है। आप तो विनयवन्त, धैर्यवन्त हो। सब अवसरों को जानते हो। थोड़े से में बहुत मतलब (अर्थ) को पहुंचते हो। अतः ये लेख थोड़े में अधिक समझकर उसके अनुसार व्यवहार करना।"

संवत्—१९५६ मिति माघ सुदी २। हुक्म—पूज्य श्री चौथमल जी म० का। लिखि मुनि जवाहरलाल ने।]

इस पत्र से यह स्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा है—कि आचार्य श्री का महाराज श्री से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था तथा मुनिमना के आचार पर वे कितने विमुग्ध थे।

आचार्य श्री विनयचन्द जी म० : मरुधरा की दूसरी एक और महान् मुनि-परम्परा के आचार्य श्री विनयचन्द जी म० थे। इन से भी मुनिमना श्री मायाराम जी म० के हार्दिक, अभिन्न सम्बन्ध थे। सभी साधुसमुचित व्यवहार परस्पर व्यवहृत होता था। एक बार आचार्य-प्रवर व मुनिमना ने जोधपुर नगर में संयुक्त चातुर्मास किया। उस चातुर्मास में दोनों मुनि-परम्पराओं का स्नेह-सौहार्द अपूर्व था। इन सम्बन्धों को देखकर—आगन्तुक दर्शनार्थी यह अनुमान नहीं कर पाता था—कि यहाँ पर दो मुनि-सघो का एकत्र चातुर्मास है अथवा एक ही मुनिसंघ चातुर्मास व्यतीत कर रहा है।

इस महत्त्वपूर्ण चातुर्मास से सम्बन्धित चर्चा आज भी मरुधरा पर प्रतिध्वनि की तरह श्रुति-गोचर होती है।

आचार्य श्री खूबचन्द जी म० : आचार्यरत्न श्री खूबचन्द जी म० के मुनिश्रेष्ठ श्री मायाराम जी म० सम्यक्त्व गुरु थे। मुनिमना के प्रति वे अत्यन्त निष्ठाभाव रखते थे। मुनि-जीवन में भी इनका मुनि मूर्धन्य से निरन्तर सम्पर्क बना रहा। अपने प्रवचनों में आचार्य श्री अनेक बार अपने सम्यक्त्व-गुरु की प्रशसा, गुणानुवाद करते थे। पजाब-परिभ्रमण के अन्तर्गत आचार्य श्री रोहतक में पधारे थे एक बार। वहाँ मुनि मूर्धन्य श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० विराजित थे। आचार्य श्री ने मुनिमना के दर्शन किये। संयुक्त प्रवचन हुए। दोनों मुनिसंघों में अत्यन्त सौहार्द रहा।

श्री नेमीचन्द जी म० : राजस्थानीय मुनि-परम्परा में आचार्य श्री जीवराज जी म० की मुनि परम्परा का अपना विशिष्ट स्थान है। इस परम्परा में आचार्य श्री पूनमचन्द जी म० हुए। उनके शिष्य थे—श्री नेमीचन्द जी म०।

इस मुनि-परम्परा से भी श्री मायाराम जी म० के प्रगाढ़ संयमीय स्नेह-सम्बन्ध थे। राजस्थान में जब मुनिमना पधारे तब इस परम्परा के मुनिराजों से मिले। इसी प्रसंग में श्री नेमीचन्द जी म० ने अपने शिष्य श्री वृद्धिचन्द जी[1] को श्री मायाराम जी म० की सेवा में समर्पित किया था।

श्री देवीलाल जी म० : राजस्थान के एक और मुनिप्रवर की हम चर्चा कर रहे हैं। ये थे—व्याख्यान-वाचस्पति, शास्त्र-वारिधि पं० श्री देवीलाल जी म० ! ये विद्वद्वर श्री राजमल जी म० की शिष्य-परम्परा के मुनिराज थे। इन्होंने पंजाब प्रदेश का परिभ्रमण किया। वहाँ अनेक मुनियों से ये मिले। जब राजस्थान लौटे तो जयपुर में पं० रत्न श्री मन्नालाल जी म० से मिले। उनके सम्मुख पंजाब-परिभ्रमण के अपने संस्मरण सुनाये तथा वहां के सन्तों की चर्चा करते हुए उन्होंने श्री मायाराम जी म० के विषय में कहा—"वे महान् आचार के धारक हैं। विशुद्ध संयमी हैं। परिणामों से भद्रिक हैं। काव्य-कला के निधि हैं। अकबरी मोहर के सदृश उनका शुद्ध संयम है।" मालवा प्रान्त में उन्होंने पुनः अपने संस्मरण सुनाते हुए कहा—पंजाब प्रान्तस्थ महामुनि श्री मायाराम जी म० के मैंने दर्शन किये है। उनके संयम की मेरे हृदय पर इतनी अमिट छाप पड़ी है कि यदि मैं अपने शरीर के चर्म को भी उनके नीचे बिछा दूं तब भी उनके संयम के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त नहीं कर सकता[2]।" तो ऐसे थे श्री मायाराम जी म०।

---

१. देखें परम्परा-खण्ड में·········श्री वृद्धिचन्द जी० म०।

२. अन्य मुनिराजों की सम्मतियां ग्रन्थान्त में देखें।

16

घटनायें घटती हैं, रेखायें उभरती हैं

घटित घटनाए जीवन-चरित्र है।

अंकित रेखाएं जीवन-लेखन है।

—जो घटता रहता है, उसे हम जीवन कहते है। क्योंकि हर दिन एक कहानी है। हर दिन की कहानियों का सयोजन एक पूरा जीवन-चरित्र है।

किसी भी व्यक्ति या मुनि के जीवन में हर रोज कुछ न कुछ घटता रहता है। घटता जाना ही जीवन-अकन की शुरुआत है। घटनाएं घटित होनी बंद हो जाती हैं, तब उसके जीवन-चरित्र में पूर्ण विराम लग जाता है। उसका जीवन-चरित्र पूरा हो जाता है। उस पूरे हुए जीवन-चरित्र को लेखक फिर नए सिरे से लिखना प्रारभ कर 'लिखित' जीवन शुरु करता है और मानता है, कि मैं जीवन-चरित्र लिख रहा हूं, किन्तु यहां सचाई यह है, कि लेखक से पूर्व ही यह चरित्र लिखा जा चुका है।

श्री मायाराम जी म० का जीवन-चरित्र समय की अक्षय भित्ति पर तो अंकित है ही—परन्तु उनके जीवन की कुछेक रेखाएं स्मृतियों में खिची हुई है, कुछ स्थान और घटनाओं में बिंधी हुई है, कुछ रेखाए अक्षरावली में भी अंकित हैं। कुछ रेखाएं हैं, जो कान-दर-कान सुनी हुई हैं, कुछ रेखाएं बूढ़ों के दिमाग में खिची हैं, कुछ रेखाएं

संस्मरणों का चोला पहने हैं, कुछ रेखाएं हैं—जो महाश्रमणों ने दूसरे श्रमणों को सुनाई हैं। कुछ रेखाएं हैं, जो श्री मायाराम जी म० के पारंपरिक शिष्य, प्रशिष्यों के संस्मरणागारों में सुरक्षित हैं।

श्रध्देय श्री के जीवन की कुछ रेखाएं यहां भी खींची जा रही हैं। पाठक पढ़ें, देखें कि चित्र-विचित्र रूप से आड़ी-टेढ़ी रेखाओं के बीच में कैसे दिखाई पड़ रहे हैं—चारित्र-चूड़ामणि श्री मायाराम जी महाराज…… ।

17

कुण्डलिनी का प्रतीक : सर्प

सर्प और मुनि !

मुनि और सर्प !!

—परस्पर युग्म हैं।

सर्प, ऋषि-मुनियों का पूज्य प्रतीक है। प्रतीक ही क्यों वह योगियों की योग-साधना का आधार है और आगे कहने दिया जाये तो कहना होगा—यह पूरी मुनि-जीवन की साधना का श्रद्धा केन्द्र है।

मुनियों का श्रद्धाधार सर्प जन-जीवन में विरासत के रूप में अवतरित हुआ। इसलिये उसे लोक-भाषा में 'सर्प देवता' सम्बोधन का आदर प्राप्त हुआ।

वह मुनियों का श्रद्धाधार क्यों है ? कहाँ संसार से अलग-थलग, विश्वमंगल का मंत्र जपने वाला मुनि और कहाँ 'कालकराल व्याल' विषधर सर्प ! बेचारा मनुष्य से डर कर पृथ्वी की गोद में मुंह छिपाए, भागा-भागा फिरने वाला व्याल।

\+ + +

हम लोगों ने आज तक बड़ी भूल की है। मुनियों के पूज्य प्रतीक को हम विषधर कहते रहे। सर्प को विषधर न कहकर अमृतधार कहना अधिक युक्ति संगत है।

सर्प विषधर नहीं, अमृतत्व की साधना का प्रतीक पूजनीय देव है। ब्रह्मचर्य की निर्मल साधना उस से मंडित है। योगसाधना सर्पदेव को प्रतीक माने बिना पूरी ही नहीं हो सकती। बताइए उसे हम विषधर कैसे कहें ?

तुलना कीजिए। सर्प की सारी विशेषता साँगोपांग घट रही हैं, मुनियों की योगसाधना में।

—सर्प लम्बा प्राणी है।

—वह कुण्डली मार कर बैठता है।

—वह बैठा ही नहीं रहता, चलता भी है।

—उसके दिखाई देने वाले पैर नही होते।

और भी कुछ है सर्प में ?

—वह कभी-कभी सीधा खड़ा हो जाता है।

—वह कही चढ़ तो जाता है, किन्तु उतरते हुए आपने नही देखा होगा ? लेकिन—ऐसा नहीं है, कि वह चढ़ जाने के बाद उतरता ही नहीं। वह उतरता भी है। केवल उतरते समय वह उतनी तेजी से नही उतरता।

—सर्प की एक विशेषता और है। उसे बहुत कम लोग जानते हैं। वह कुण्डल मार कर बैठता है।

सर्प को साँगोपांग समझिए। मुनि की योग-साधना की काम्य सर्पिणी-कुण्डलिनी में कैसे घटित होती है। घटाए—

—मुनि योगसाधना करने बैठता है तो सबसे पहले वह बैठने की विधि अपनाता है। इसके बाद उसकी छेड़ कुण्डलिनी-सर्पिणी से होती है। कुण्डलिनी-ऊर्जा का योग के द्वारा सबसे पहले कुण्डल भग होता है।

प्रकृति से लम्बा प्राणी अपना कुण्डल भंग कर दे तो उसे विस्तार—जगह की जरूरत होती है।

सर्प दो ही अवस्था में आप देख सकते हैं। कुण्डल मारे या फिर चलते।

—तो कुंडलिनी भंग होते ही वह अपनी ऊर्जावश ऊर्ध्वगमन करती है। सहस्रार में पहुंच जाती है। सहस्रार में पहुंचते ही साधक को अमृतवर्षण का आनन्द प्राप्त होता है।

कुंडलिनी शक्ति बिना पैर वाली महाशक्ति है। सर्प खड़ा हो जाता है। कुंडलिनी भी जागृत हो, खड़ी होती है। साधनाविधि भग हुई, कि कुंडलिनी फिर सर्प की तरह धीरे-धीरे कुंडल मार बैठ जाती है।

योगदर्शन कहता है—सर्प लम्बा प्राणी है। पर बैठता है तब कुंडल बनाकर बैठता है। साधक को ऊर्जायुक्त कुंडलिनी भी कुंडल मारकर बैठी है। यही कारण है रोगी और भोगी की शक्ति अधोगामिनी होती है। योगी की वही शक्ति उर्धगामिनी होकर ओज, तेज, प्रभाव, प्रकाश, यश और वाणी का चमत्कार बन जाती है। अतः जनमानस को विवश होकर योगियों के प्रति श्रद्धा अर्पण करने को मजबूर करती है। यही कारण है—ऋषि-मुनि जनमानस की श्रद्धा का आधार हैं—इसोलिए ऋषियों से लोग अपेक्षा करते हैं, उम्मीदों की पलकें बिछाकर उनका स्वागत सत्कार करते हैं, अपना गुरु मानते हैं।

सर्प बुद्धिमान भी है। इसीलिए शिव ने उसे सिर चढ़ाया, भुजाओं में लपेटा। जैनों के तेइसवें तीर्थंकर का यह चिन्ह बन गया।

सर्प भोला है। वह खुद कभी किसी को काटने नही लपकता। परन्तु उस ऊर्जा के धनी को आप तंग करें, सताएं, पीड़ा दें, सीधे-सादे रास्ते के राहगीर को छेड़ें—तब दूसरी बात है। शक्ति तो उसके पास है। वह उसका प्रयोग कर डालता है, पर यह सब करता है, वह जान पर आती है तब।

तो सर्प पूरी तरह योगसाधना का प्रतीक देव है। योगसाधना में भी कुंडलिनी सर्पिणी का डस लेना घटता है। इसी तरह जैसे सर्प का रास्ता रोकने पर छेड़ने पर या कष्ट देने पर वह डस लेता है।

साधक में यह डसना—तब घटता है, जब मन के विकार,

स्मृति में आते हैं । यह सब ऊर्जा के साथ छेड़ है। इसी छेड़ के द्वारा साधक कुडलिनी ऊर्जा से डसा जाता है। तब ऊर्ध्वगमन रुक जाता है। साधक की उर्ध्वगामी साधना दृष्टिगत न होने पर भी साधना की उपेक्षा से साधक को मरणोन्मुख कर देती है।

\+ \+ \+

सहस्रार में कुंडलिनी पहुंच चुकी थी। कुंडलिनी से आनन्द-वर्षण हो रहा था। अनुभव करता मुनि थे श्री मायाराम जी म०। सुन—

एक बार।

श्री मायाराम जी म० राजस्थान की यात्रा कर रहे थे। यशःकीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर द्योतित, शोभित, श्री मायाराम जी म० वीर-भूमि जयपुर के समीपस्थ स्थान 'आमेर' पहुंचे।

प्रातः काल की सुनहरी किरणों ने सोए पड़े जगत् को स्फूर्ति दी। सारा जग अंगड़ाई लेकर जाग उठा। जड़-चेतन जागा। हल-चल छा गई। उमंग भर गई। मुनि मायाराम जी म० शिष्यों सहित आमेर के जंगल में प्रातःकाल निवृत्ति-हेतु गये। वहां मुनियों ने जल से भरा पात्र एक स्थान पर रख दिया और शुचि के लिये चले गये।

\+ \+ \+

मुनिजन वापिस लौटे।

पानी-भरा पात्र अमृतयोगी श्री मायाराम जी म० के पृष्ठ भाग में रखा था। संवत् १९३४ से साधना प्रतीक बना चला आ रहा सर्प, इस दिन प्रत्यक्ष हुआ। मुनियों ने देखा—सर्प भरे पात्र पर कुंडल मारे फन फैलाए बैठा है।

श्री केसरीसिंह जी म० गम्भीर होकर श्री मायाराम जी म० से बोलें—"महाराज ! अब इस माया को समझो और समेटो। पानी के पात्र को कपड़े से ढका। साफ़ जगह रखा। पत्थर, रोड़े, घास, पत्ता कुछ भी नही था फिर ये सर्प देवता कहां से आ गए ? हम इनके स्वतंत्र विचरण में बाधक नहीं बने, तब आज ये हमारी साधना के रास्ते में क्यों आ गए ?"

श्री मायाराम जी म० ने कहा—"सर्प तो मुनियों की योगसाधना का प्रतीक है। ब्रह्मचर्य की साधना का मेरुदड है। सर्प तुम्हारी फलवती साधना का सूचक है। यह आ गया अच्छा ही हुआ। डरते क्यों हो ?"

"माया समेटने की बात कहते हो, तो चतुर्विंशति जिनस्तव (लोगम्स) का पलके वन्द कर ध्यान करो।"

मुनियों ने पलके मूंदी। लोगस्स का पाठ पढा। पलके खोली, तो सर्प अदृश्य था।

केसरीसिंह जी म० ने कहा—"आपने माया तो समेट दी पर यह सर्प तो आपके चरणों तक आया है। ठडी माखन सी माटी मे उसकी रेखाए साफ नजर आ रही है। बताइए यह कौन था, कहाँ से आया था ?"

श्री मायाराम जी म० बोले—"यह मेव जाति का किसान था। इसने मुझे बताया—'मैं किसान हूँ। मेरी हत्या कर दी गयी थी। मेरे पुत्रो ने मेरी खेत मे ही दरगाह बनादी है। मै वही रहता हूँ। मै तपस्वी मुनियो के दर्शन करने आया था।'

"इस पर विश्वास कैसे करे ?"—मुनियो ने प्रश्न किया।

मुनिमना ने कहा—"तुम स्वयं देख कर आओ। तीन-चार खेत की दूरी पर टीले के पीछे बेरी के वृक्ष के नीचे कोई दरगाह है या नही ? वह वही रहता है।"

मुनियो ने लौटकर बताया—"बेरी का सघन छायादार पेड है। वहाँ दरगाह है। सफेद कपड़ा मजार पर चढ़ा हुआ है। अगर-बत्ती रखने का पात्र है। कुछ राख भी पड़ी है।"

श्री मायाराम जी म० ने फिर मुनियों से कहा—"सर्प किसी को काटता नही। मुनि को तो कभी नहीं। मुनि उसके पथ मे कभी बाधक नहीं बनते तो वह क्यों डसेगा ? क्या तुमने कभी देखा या सुना है कि अहिसा के पुजारी, किसी भी साधक को उसने कभी कहीं डसा हो, और उसकी मृत्यु हुई हो ?"

मुनियों ने अपना अतीत याद किया। सुदूर में झांका। स्मृति को कुरेदा। सब मुनियों ने महाराज श्री से निवेदन प्रस्तुत किया—

"गुरुदेव ! शायद जीवन भर हमें सत्य का ज्ञान न होता, कि अहिंसक व्यक्ति को सर्प नहीं काटता।"

"सर्प को कभी मत छेड़िये। आप मन से अहिंसक हैं, तो पूरी ज़िंदगी के लिए मेरा दावा है सर्प आपको कभी नहीं डस सकता।" श्री मायाराम जी म० के कहने पर भी मुनिजन तो नहीं बता पाए कि किसी मुनि को सर्प ने काटा हो, और उसकी मृत्यु हुई हो। आप ही बता दीजिए किसी मुनि को सर्प ने काटा हो ? ऐसी कोई घटना घटी हो तो बताओ ?

कुडलिनी का प्रतीक सर्प मुनि मायाराम जी से भेंटा। हमने उसका उल्लेख किया। वह भेट हमें एक सीख दे गई—'मन से पूर्ण अहिंसक व्यक्ति को सर्प नही डसता। सर्प ऊर्ध्वरेता मुनि की साधना का प्रतीक है—यह हमने सम्यक् प्रकार जाना, समझा।



18

नरेश मिला महेश से !

प्रश्न है पृथ्वीपति नरेश बड़ा है या विश्वपति महेश ?

प्रकट है, महेश बड़ा है ।

एक दूसरा प्रश्न उगता है, नरेश, महेश के पास जाए या महेश, नरेश के पास जाए ?

निस्सदेह नरेश जाएगा महेश के पास । क्योंकि नरेश विविधानेक आकाक्षाओं से भरा हुआ है । आकांक्षाएं मुट्ठी में बांधी रेत के समान क्षण-क्षण खाली होती रहती है । रेत मुट्ठी से खिसकी कि आकांक्षाओ से भरा मनुष्य विकल हो उठता है । उसकी बेचेनी बढ़ती जाती है, वह भूल-भटक जाता है ।

योगी, मुनि, आकांक्षाओं को मिट्टी में मसल कर फेंक देते है । आकांक्षाएं उसके लिए तुच्छ और हेय होती हैं । अतः राजमहल का आकर्षण उसके लिए आकर्षण नही होता ।

पृथ्वी और आकाश, सच पूछा जाए तो, यही उसका ओढ़न और बिछावन है । तब राजमहल से उसको क्या लगाव और क्या ही अलगाव !

श्री मायाराम जी म० की सुदूर भारत की यात्राओं में अनेकानेक नरेश उनके मिले । जो कहीं नहीं मिल सकता था उस सबकी नरेशों ने उनसे अपेक्षा की । उन्होंने सहज भाव से वह दिया जो सिवा

एक परोपकारी मुनि के अलावा कहीं नहीं मिल सकता था। मध्य-प्रदेश और दक्षिण भारत के तत्कालीन नरेशों ने भी उनसे अपेक्षाएं कीं। मंगल हृदय से उन्होंने इनकी भी झोली भरी।

भारतवर्ष कभी राजा-महाराजाओं का देश कहलाता था। यहाँ के राजा भोली-भाली प्रजा के लिए परमेश्वर होता था। वह जैसा कर देता प्रमाण और न्याय कहलाता था। लेकिन उन राजाओं के अन्तस में भी कभी-कभी श्रद्धा करवट लेती थी और तब वे अपने नरेशत्व को भूल कर महेश मुनि की ओर उद्ग्रीव होते थे। जिन नरेशों की हृदय-अवनि में श्रद्धा अंकुरित होने को आई तो वे महेश की ओर किस तरह आए ? एक नरेश का वह अतीत, मुनि मायाराम जी के माध्यम से, लगभग नौ दशक पूर्व घटित अतीत, दुग्धधवल पृष्ठों पर अक्षरों में गूंथ कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

\+ + +

बंजर धरती हरे-भरे वृक्षों से लहलहा उठे। सूखा ठूंठ किस-लय, पत्र व पुष्पों से भर जाए ! पेड़ आम का फल-रहित हो, वह फलों से लद जाए, जहां सुगंध का नाम न हो वहाँ सुगंध-संयुक्त शीतल बयार व्याप जाए—तो यह प्रकृति का चमत्कार कहलाता है।

यही सब बातें जब एक संत के आशीर्वचन से साक्षी बन जाएं तो हमें स्वीकार करना पड़ता है—यह संसार के द्वन्द्वपूर्ण जीवन से दूर, आँख मूंदकर खुद की खोज में खोए मुनि का चमत्कार ही तो है।

मनुष्य का पुरुषार्थ जहाँ पराजित हो जाता है, वहाँ कभी-कभी योगिजन अपनी वाणी के चमत्कार से उस डिगी हुई आस्था को फिर से लौटा लाते हैं।

आइये, हम आपको ऐसी ही डिगी हुई आस्था वाले एक नरेश से परिचित कराते हैं।

\+ + +

महामुनि श्री मायाराम जी म० हरियाणा प्रांत से सैंकड़ों मील दूर मेवाड़ (मेदपाट) की चोटी पर बसे उदयपुर (उदयाचल) नगर में

ठहरे हुए थे। तत्कालीन श्रद्धालु लोगों में उनके उपदेश होते थे।

वे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए और स्वकृति मनि-जीवन की मानवीय समानता वश शौच के लिए प्रतिदिन नगर से बाहर जाते थे। रास्ते में महाराणा फतेहसिंह जी के आमों का एक बाग था।

वे उस ओर से अतीत होते थे। बाग के माली का श्रद्धाभाव से किया गया नमस्कार परिचय का माध्यम बन गया। प्रतिदिन बाग का रक्षक माली उन्हे श्रद्धावन हो नमस्कार करता, चरण-स्पर्श करता। उनकी चरण धूली को मस्तक पर लगाता और अपने को धन्य मानता।

एक दिन मुनिमना अपने शिष्यों के साथ उसी रास्ते से जा रहे थे। उस दिन वह माली उदास मन से कुटिया से निकला। गुरु के चरण छुए। खड़ा हो गया। पर उसकी उदासी न मिटी। गुरुदेव उसके चेहरे पर अंकित पीडा को पढ़ चुके थे। उन्होंने सोचा—'पुष्प की तरह प्रफुल्लित रहने वाला मालाकार आज खिन्न क्यों है ?'

पूछा—"आज तुम्हारे चेहरे पर उदासी क्यों है ? तुम तो हमेशा फूलो की तरह हसने वाले आदमी हो। तुमने खुद कहा था—बाग में खिलने वाले फूलो ने दुःख, दर्द, मान-अपमान में मुझे मुस्कराते रहने की प्रेरणा दी है।"

मालाकार बोला—"महामना, आप ठीक कहते हैं। फूलों की हमी मुझे हसाती है और फूलों का मुर्झाना मुझे रुलाता है।"

"पर.........!" (क्षणभर को वह रुंआ-सा हो गया) फिर कहने लगा—"कल महाराणा फतेहसिंह जी का इधर आगमन हुआ था। काफी देर यहाँ ठहरे। मुझ से पूछा—"यह आम फलता क्यों नही। इसके बाद में लगाये गए आम के पौधे तो वृक्ष बनकर फल चुके हैं लेकिन यह आज तक फल रहित ठूंठ सा क्यों खड़ा है ?"

मैंने उन्हें जबाब दिया—"पृथ्वीपाल ! यह आम अब नही फलेगा। फलता तो अब तक कभी का फल देता।" इस पर राजा ने कहा—"नही फल सकता तो इसे काट दो। यह बाग की शोभा घटाता है। पूरे बाग में सब पेड़ फल देने वाले हैं और यह निरवशी

ठूंठ-सा बीच में खड़ा है।"

......"महामना, राजा तो कह गए, इसे काट दो। किन्तु महाराज के हुक्म के बाद मुझे ऐसी पीड़ा हो रही है, जैसे राजा ने कह दिया हो कि तुम अपना हाथ काट कर फेंक दो। गुरुदेव ! इस वृक्ष को मेरे पूज्य पिता और मैंने अपने हाथों से रोपा था।"

'परदुख द्रवहिं सो संत पुनीता' मुनिमना का करुणाशील हृदय मालाकार की पीड़ा से द्रवित हो गया। वे अपनी साधना का रहस्य उसे बताना चाहते थे। पर माध्यम क्या हो ? उन्होंने मालाकार के दुखी मन को पूरी तरह जान लिया था। बोले—बस इतनी-सी बात ! इसमें दुखी होने का तो कोई मतलब ही नहीं। राजा इससे फल चाहता है। फल लग सकते हैं।"

मुनिमना के इस आश्वासन से वह खुशी से नहा उठा। तभी उसने मुनिवर्य के चरण पकड़ लिए और निष्ठापूर्ण आग्रह से बोला—"महाराज, इस वृक्ष में फल कैसे लग सकते हैं—वह उपाय मुझे बताइए। अपना सब कुछ खोकर भी मैं वह उपाय करूंगा।"

मुनिश्री ने उत्तर में कहा—"खोने की कुछ भी जरूरत नहीं होगी। आम का वृक्ष फल जाएगा। तुम्हें इसके लिए सिर्फ छः मास प्रतीक्षा करनी होगी। प्रतीक्षा के साथ-साथ एक प्रतिज्ञा भी करनी होगी, उसका शुद्ध मन से पालन करना होगा।"

माली की उत्सुकता चरम उत्कर्ष पर पहुंच गई। उतावले मन से बोला—"मुनीश्वर, छः महीने कौन बड़ी बात है। मैं इसके लिए एक वर्ष तक इंतजार कर लूंगा।" और फिर सोचने लगा—'इस बीच राजा को भी राजी कर लूंगा। एक वर्ष आम न काटने की इजाजत लेकर।'

मुनिश्री ने वहीं खड़े-खड़े उसे बताया—"तुम पति-पत्नी छः महीने तक शुद्ध मन से ब्रह्मचर्य का पालन करो और इसी आम के नीचे घास की शैया बिछा कर सोते रहोगे तो जरूर यह आम फल जाएगा।"

माली का मन खुशी से भीग गया। पति-पत्नी ने ब्रह्मचर्यव्रत

पालन करने की प्रतिज्ञा ली। आम के पेड़ के नीचे अनंत नीलाम्बर को साक्षी बनाया। और स्वीकृत प्रतिज्ञारूप संयम की मेंढ पर बैठे ब्रह्मचर्य का अग्नि-तप तपने लगे। सोचते रहे—'आम में फल लगगे।'

मुनिमना प्रस्थान कर अन्यत्र चले गए।

मालाकार को व्रत ग्रहण किए एक माह बीता था, कि वृक्ष में लुभावनी मंजरी पुलकती हुई दिखाई दी। उसकी खुशी का पार न रहा। वह उल्लसित हृदय से महाराणा फतेहसिंह के पास पहुँचा। बोला—"महाराज! जिस आम को छः महीने तक न काटने की मैंने आपसे इजाजत मंजूर करवाई थी, उसमें मंजरी फूट चुकी है।"

राजा माली की बात सुनकर उत्सुक हुए, बोले—"कैसे!"

माली ने आगे बताया ...... "अन्नदाता! यह सब एक मुनि के आशीर्वाद का चमत्कार है।"

राजा ने चमत्कारी मुनि का परिचय पूछा। माली ने तुरंत कहा—"पंजाब से आए जैनमुनि श्री मायाराम जी म०, मुझे ब्रह्मचर्य-व्रत की प्रतिज्ञा करवाकर छः महीने तक इंतजार करने को कह गए थे। किन्तु उनकी वाणी का चमत्कार देखिए, एक माह मे ही आम में मंजरी फूट चुकी है। अब फल आने में क्या देर हो सकती है?"

\+ \+ \+

महाराणा ने उदयपुर के ओसवाल जैनों से उन महामुनि के बारे में विशेष परिचय प्राप्त किया तो उनकी श्रद्धा और भी उफन पड़ी। महाराणा बोले—"मुनिराज को किसी प्रकार मेरी नगरी में बुलवाइए।"

जैनों ने उत्तर दिया—"अन्नदाता! मुनिजन तो पक्षी की तरह स्वतंत्र होते हैं। जिस टहनी पर सांझ घिर आने पर पक्षी आकर बैठता है, वह फिर हम और आपके चाहने से कभी उसी टहनी पर दोबार रैनबसेरा तो क्या, क्षण-भर को भी आकर नहीं बैठ सकता है। जब कभी आएगा तो अपनी इच्छा से ही आएगा।

मुनि यहाँ से चले गए। कब आएंगे, कौन कह सकता है?"

जैनों के इस सपाट उत्तर से महाराणा के श्रद्धा-भीगे मन को ठेस लगी। बोले—"ठीक है, जैनमुनि आप लोगों के कुलगुरु हैं। आप लोगों के आचार और रीति-नीति का अधिक ज्ञान रखते हैं, किन्तु मेरी आस्था मुझे प्रेरित कर रही है, कि आप लोग उनके हृदय-द्वार पर सच्चे मन से दस्तक देंगे तो वह अवश्य करुणाविगलित होंगे और मेरी नगरी को पावन करेंगे।"

क्षणभर रुक कर फिर बोले—"जब उनका संत-हृदय एक माली की पीड़ा से भीग गया और उन्होंने आम के वृक्ष को फलवान् बना दिया तो क्या वे महाकरुणावतार तुम सब लोगों की सामूहिक पुकार सुनकर दयार्द्र न होंगे? जरूर होंगे। आप लोग जाइए और उनसे उदयपुर में पदार्पण करने की प्रार्थना कीजिए। मेरी आवश्यकता समझें तो में भी मुनिवर को यहाँ बुलाने के लिए प्रार्थना करने चल पड़ूंगा।"

उदयपुर का जैनसघ मुनिश्री मायाराम जी म० के पास पहुँचा और उनसे अपने वहाँ चातुर्मास की प्रार्थना की। उस प्रार्थना में महाराणा फतेहसिंह स्वयं भी उपस्थित थे। मुनिश्री की सहज स्वीकृति पाकर सब लोगों के हर्ष का पारावार न रहा।

मुनिप्रवर मेदपाटीय हरियाली नगरी में वर्षावास बिताने के लिए पधारे। उनका सान्निध्य पाकर महाराणा का हृदय गद्गद हो गया। एक दिन ऐसा भी आया, कि महाराणा ने शिकार खेलना छोड़ दिया। मुनिश्री से वह बोले—महामुने! मैं आज राणाओं के आदि देव भगवान् एकलिंग (शिव) की सौगन्ध पूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि आज से मैं कभी शिकार नहीं करूंगा और न ही कभी मांस भक्षण जैसा दुष्कार्म करूंगा।"

महाराणा फतेहसिंह ने ओसवाल जैनों के धर्म-स्थान (पंचायती नौहरा) में जब यह प्रतिज्ञा दुहराई, तो मुनि मायाराम जी का साधु-मन खुशियों से भर गया। मुनित्व के योगासन पर बैठे महामहेश श्री मायाराम जी म० ने सोचा—'मेवाड़ के शासक ने शिकार तथा मांसभक्षण का परित्याग किया। यह इस चार्तुमास की उल्लेखनीय

उपलब्धि है। क्योंकि मेवाड़पति अकेला नहीं है। इसके पीछे हजारों-लाखों का जन-समूह है। यह अन्य असंस्कृत लोगों को भी प्रेरित करेगा। यह मन से जागा है। वाणी से नहीं। वाणी से जागने वाला भूल कर गुजरता है। हृदय की पकड़ गहरी होती है।"

यह भारत ऋषि-मुनियों का देश है!

इसी वर्षावास में महाराणा के कुल में पुत्रजन्मोत्सव था। पुत्र-जन्मोत्सव बडे समारोह के साथ आयोजित किया। राणा ने राजपूताना, मालवा और गुजरात स्टेट्स के २२ नरेशों को जन्मोत्सव पर आमंत्रित किया। उन सभी नरेशों ने महाराणा को बधाई दी। पुत्र के उज्ज्वल भविष्य की कामना की। परस्पर आदर सम्मान हुआ।

महाराणा ने उन बाइसों नरेशों से कहा—"आप लोग मेरी नगरी में पधारे, यह परम सौभाग्य है। पूर्वजों के प्रासाद आपने देखे, उनके प्रति आपने श्रद्धा व्यक्त की, उनके यश और प्रताप को सराहा······यह भी मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है।

किन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ, कि मैंने अपने जीवन में एक ऐसे महामुनि को पाया है—जिनके हृदय में छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, सबके प्रति ममत्व और करुणा है। उनकी आंखों में चमत्कार है, वचनों में वैभव है। वे सबको देते हैं—लेते कुछ नहीं।

मैंने उनसे बहुत कुछ पाया है। मैंने उनसे अहिंसा की दीक्षा ली। शिकार और मांस छोडा। वे कहते हैं—हमें मत दो—जो देना है, संसार को दे डालो। जो दोगे वह हजार गुना होकर तुम्हें फिर प्राप्त हो जाएगा। जरा देकर तो देखो! मूक प्राणियों को अभयदान दो। तुम खुद अभय हो जाओगे। अमृत की मूर्ति बन जाओगे। मैंने शिकार छोड़कर प्राणियों को अभयदान दिया। मेरा अन्तर आलोकित हो गया······।"

"तो, चलिए, आज मैं अपने उसी आराध्य मुनि श्री मायाराम जी के पास ले चलता हूँ। राज्योचित मान-सम्मान और आदर तो हम लोग लेते-देते ही रहते हैं। उदयपुर का 'पिछोला प्रासाद' (अथाह सरोवर के बीच बना महल) तो आपने देखा है, अब उस

महामुनि के दर्शन भी कीजिए। पिछोले प्रासाद की कीर्तिकथा से बड़ी कीर्तिकथा है उस महामुनि की। वे दिव्य हैं। वे चमत्कार के प्रत्यक्ष प्रासाद हैं।

+ + +

महाराणा, बाइसों नरेशों को महामनीषी की सेवा में ले गए। उन्होंने देखा मुंह पर मुखवस्त्रिका बाँधे सफ़ेद वस्त्र पहने जैन मुनि विराजित हैं। नरेशों में मे एक ने कहा—"ये तो जैन मुनि हैं। मालवे में भी ऐसे मुनि देखे जाते हैं।"

राजा ने कहा—जैन मुनि तो हैं ही, परन्तु इनके त्याग, तप-तेज, आचार और चमत्कार से आप परिचित नहीं हैं। मेरा आमों का बाग़ है। इसमें वर्षों से खड़ा एक ठूंठ आम था। इन मुनि ने उसे हरा-भरा बना दिया। आज वह सबसे अधिक फल दे रहा है। वह इन्ही महामुनि का प्रभाव या प्रसाद है।

नरेशों का मुनि-सम्राट् से स्वल्प सत्संग हुआ। विदा होते समय एक नरेश ने सोने की तश्तरी में कुछ अशर्फ़ियाँ रखीं और दरबारी को आदेश दिया—"कोरनिश बजा कर आदर सहित मुनि को ये अशर्फ़ियाँ अर्पित कर दो।"

दरबारी को कहने भर की देर थी, तुरन्त एक तश्तरी आदर-सहित मुनि सम्राट के सामने रखी, चौकी पर रख दी। मुनि श्री ने निषेध-सूचक संकेत दिया। नरेश ने तभी थोड़ी और अशर्फ़ियाँ उस तश्तरी में उंडेल देने का इशारा किया।

महामुनि बोले—"नरेश! अगर भारत के मुनि भेंट में अशर्फ़ियाँ लेने लग जाएंगे, तो यह देश त्यागी-तपस्वियों का देश नही रह जाएगा। यह भिखारियों का देश बन जाएगा। भारतवर्ष को ऋषियों का देश कहलाने का अधिकार है, उसे नष्ट मत कीजिए। उसे अक्षुण्ण बना रहने दीजिए। सच्चे मुनि को अशर्फ़ी की जरूरत नहीं होती।

वर्षावास बीता! मुनि-सम्राट् ने सहज उदयपुर छोड़ा। उदयपुर के साथ-साथ राणा को भी बिसार दिया। वे राणा की याद का बोझ मन में क्यों रखते।

गाँव-दर-गाँव, मेवाड़ की धरती को लांघते हुए मुनिप्रवर चल पड़े। फिर उदयपुर न लौटे। क्यों लौटते! उदयपुर के ओसवाल जैनों ने महाराणा से कहा था—"मुनि-जीवन पूर्ण स्वतंत्र अनंत आकाश के यात्री 'पंछी' की तरह होता है। जिस टहनी से वह उड़ता है, फिर उस पर आकर बैठे······यह घटता नहीं।

\+ \+ \+

वर्ष-दर-वर्ष अनेक वर्ष बीत गए। गौरवशाली गुजरात की सुकुमार संस्कृति में पले-रहे-सहे उपदेश करते, विचरते मुनीश्वर शतावधानी श्री रत्नचंद्र जी म०, भारत की राजधानी दिल्ली आए। उन्होंने एक दिन अपने प्रवचन में कहा था—

"पंजाब में एक ऐसा युगपुरुष हुआ जिसके चरित्र की कीर्ति-गाथा ने गुजरात से मुझे यहाँ तक बुला लिया—वे थे—पूज्यपाद श्री मायाराम जी महाराज!"

······इन्ही शतावधानी श्री रत्नचंद्र जी ने, श्री मायाराम जी म० की उदयपुर के महाराणा में संबंधित उक्त घटना, चाँदनी चौक के जौहरियों को सुनाई थी और कहा था—"आप लोग नवरत्नों के पारखी हैं, किन्तु श्री मायाराम जी म० जैसे चारित्ररत्न को परखा है कभी?



19

विवेक की आंखें

पटियाला नगर में श्री मायाराम जी म० ने वर्षावास बिताया था। विहार हुआ। वे बहादुरगढ (छावनी) जा रहे थे। विदाई में साथ चलते व्यक्ति लौट चुके थे। स्वय आगे, शिष्य पीछे थे। सामने से घोडे पर सवार सरदार गुरुमुखसिंह चले आ रहे थे।

पटियाला के राजा दिवंगत हो चुके थे। राज्य व्यवस्थानुसार युवराज राजेन्द्रसिंह जी को राजपद दे दिया गया था। उनकी आयु छोटी थी। अत राज्य चलाना उनके लिए कठिन था। व्यवस्था के लिये एक कौंसिल (समिति) गठित की गई, जिसके प्रेसिडेन्ट थे—सरदार गुरुमुखसिंह। उनके स्वभाव व अनुशासन की कठोरता जगप्रसिद्ध थी।

सरदार जी ने श्री मायाराम जी म० को आते देखा। वे घोडे से उतर गये। नमस्कार किया। सोचा—'यह कोई असाधारण व्यक्ति है।' उन्होने जैनमुनि को कभी देखा नही था। पूछा—"आपका परिचय जान सकता हूं?"

"जानो!"—श्री मायाराम जी म० ने कहा।

"खुद तो मैं यह नहीं जानता, कि आप कौन हैं? परन्तु आपके तेजस्वी स्वरूप से मैं यही अनुमान करता हूं, कि आप निस्संदेह कोई महापुरुष हैं।"

"मैं एक मुनि हूं। जैनमुनि हूं। बस इतना-सा मेरा परिचय है।"

"मुनि तो धरती का महापुरुष होता है। किस ओर पदार्पण हो रहा है ?'!

"छावनी की ओर।"

"आगमन ?"

"पटियाला से।"

"मैं सचमुच, मन्द भाग्य हूँ। पटियाला से गंगा बहती आ रही है।" निमिषभर सोचकर सरदार गुरुमुखसिंह ने कहा—

"आप फिर से पटियाला पधारें। मेरे नगर को पावन करें।"

"पटियाला में चार मास बिताकर आ रहा हूं। दोबारा जाने का औचित्य क्या है ?"

सरदार का मन रो उठा। चार मास········· ?

मुनिप्रवर बोले—"पटियाला जाना तो अब सम्भव नहीं है।"

"कारण ?"

"मर्यादा का प्रश्न है। जैनमुनि जहाँ चातुर्मास बिता लेता है, वहाँ वह कम-से-कम एक वर्ष तक दोबारा नहीं जा सकता।"

"तो किधर जाएगे ?'

"छावनी।"

"यह तो और भी अच्छा हुआ। मैं अधिकांश समय छावनी में ही रहता हूँ। वहाँ ठहरने की व्यवस्था ?"

"जहां जगह मिल जाएगी। वहीं ठहर जायेंगे। इतनी सी बात। व्यवस्था के बारे में जैन मुनि न सोचता है और किसी तरह की व्यवस्था के प्रपंच से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

"ठीक है। जगह मिल जाएगी। मैं साथ ही चलता हूँ।"

+ + +

हमने सुना—सरदार गुरुमुखसिंह छावनी तक श्री मायाराम जी म० के साथ-साथ नंगे पैरों चला। छावनी पहुँचने पर अपने निवास

में स्थान दिया। २६ दिन तक मुनिमना वहाँ ठहरे। नित्य प्रवचन होने लगे। दूसरे मातहत लोग और राजा स्वयं प्रवचन सुनते रहे। २६ दिन की उपलब्धि थी—सरदार गुरुमुखसिंह ने दशवैकालिक सूत्र सुना। मुनि-आचार जाना। कुव्यसनों का परित्याग किया और अंत में सद्गृहस्थ की दीक्षा ली।"

आगे नियति-नियोजित-संयोग ऐसा बना, कि पटियाला में श्री जीवनराम जी म० का आगमन हो गया। उन्हे पता चला छावनी में मुनि मायाराम जो रुके हुए है। सन्देश भेजा, मुझ से मिले बिना आगे न जाना। श्री मायाराम जी म० ने वयोवृद्ध मुनि के संकेत को आदेश माना। पटियाला लौटे। २६ दिन तक वयोवृद्ध मुनि की सेवा में फिर रुके।

सरदार गुरुमुखसिंह ने प्रश्न किया—आपने कहा था, चातुर्मास बिता चुके उस नगर में एक वर्ष तक नही जाते जैन मुनि, फिर यह विरोध कैसा ?

महाराज श्री ने कहा—वयोवृद्ध मुनि का आदेश मर्यादा मे भी सबल होता है। मुनि के आदेश मिल जाने पर मर्यादा पीछे होती है आदेश आगे हो जाता है। मर्यादाओं की स्थापना और मयदाओं का पालन, आज्ञा को सिर चढाने पर ही शोभित होती है। वयोवृद्ध मुनि का आदेश जैनागमों में मर्यादाओं का कलश माना गया है।

सरदार को समाधान मिल गया।

गुरुमुखसिंह नियमित छावनी से पटियाला आने लगे। प्रवचन सुनते रहे। प्रवचनों ने उनके मन को इतना श्रद्धाविभोर कर दिया कि प्रतिदिन सरदार गुरुमुखसिंह जैन उपाश्रय की, रजोहरण लेकर, सफाई करने लगे और कहते—"इसी बहाने मुनियों की चरणरज स्पर्श कर, आत्मसुख का अनुभव करता हूँ।"

सरदार जी का सत्संग निरन्तर चलता रहा। कभी सरदार जी व्याख्यान में देर से पहुँचते, तो चुपचाप जहाँ स्थान मिल जाता, वहीं बैठ जाते। विवेक देखिए। लोग कहते—सरदार जी, आगे आइए। सरदार जी कहते—यह मुनि की प्रवचन-सभा का नियम नहीं, कि

पीछे से आने वाला आगे आकर बैठे। देर से आने वाला जहाँ स्थान देखे, वहीं बैठ जाए।

\+ + +

बात एक बार की। सरदार गुरुमुखसिंह राजगुरु को प्रवचन में बुला लाए। श्रोता अधिक, पहुँचे पीछे से। मौसम गर्मी का। राजगुरु ने रुमाल निकाला। उसी से हवा करने लगे। सरदार जी को मुनि-मर्यादा का पता था। अतः राजगुरु से रूमाल खुद ले लिया। कहा—"जैन मुनि की प्रवचन-सभा का यह आचार नहीं है।"

प्रवचन समाप्त हुआ। राजगुरु और सरदार जी दोनों का संयुक्त परिचय हुआ। चर्चा-वार्ता हुई। परिचय से वार्ता बढ़ी। वार्ता से चर्चा बढ़ो। और इसी प्रकार दिन बीतते गए।

एक दिन राजगुरु ने सरदार गुरुमुखसिंह की अनुपस्थिति में मुनिश्री से निवेदन किया—"आप की लड़ाई तो नंगे बदन मैदानो है।"

"साधु-जीवन तो खुला मदान ही है। छुपावट, दिखावट अगर हो तो धोखे की लडाई सिद्ध होगी।"—महाराज श्री ने कहा।

राजगुरु ने अपने मन की गाँठ खोलते हुए कहा—"हम राजगुरु जरूर हैं। लेकिन हमारी लड़ाई सामने सीने की मैदानी लडाई नहो है। राजगुरु का पद और ज़मीन जायदाद की मिलकियत हम लोगों ने छल से प्राप्त की है। इसोलिए मैं कहता हूँ—आपकी लड़ाई मैदानी लडाई है। यह विना आत्मबल और सचाई के कभी लड़ी हो नहीं जा सकती।"

मिलकीयत की भी एक कथा है। उसने कहा—'हमारे बड़े गुरु ने एक बार, पोह-माह की सर्दी के दिनों में नदी में रात-रात भर खड़े रहने की तपस्या शुरू की। पानी में रात के समय सर्दी के दिनों में, पूरी रात खड़े रहना कितना कठिन काम मालूम होता है। पर हमारे गुरु ने ऐसा एक महीने तक किया। राजा प्रभावित हो गए। उन्होंने हमारे गुरु को राजगुरु मान लिया। जमीन-जायदाद की ससम्मान मालकियत दे दी।'

आप सोचते होंगे। मेरे गुरु यह सब कैसे कर पाए होंगे? वे

शोषित संखिये को मुंह में रख लेते और पूरी रात नदी में मच्छ के साथ खड़े रहते। न सर्दी का असर न पानी का। जंगल में लगी आग की तरह उनके तप की शोहरत सब जगह फैल गई। शोहरत में बंधे राजा भी उनके पास आए। बस बन गए मुरीद। इस तरह मिला है; हमारे गुरु को राजगुरु का पद।

श्री मायाराम जी म० ने राजगुरु की बात सुनी। बोले—"ठीक है। राजगुरु का पद किसी-न-किसी प्रकार से पाया जा सकता है, परन्तु जैन आचार में ऐसा नहीं होता है। यहां तो जो होता है, वह सब हथेली की रेखाओं की तरह देखा, परखा जा सकता है। वह छुपाव या दुराव जैसा कुछ नहीं है। जो यहां है। सामने है। छल मे नहीं होता, छल से आत्मा मलयुक्त होती है, मलमुक्त नहीं। आत्मा का कालुष्य मिटाना ही, जैनत्व की साधना का सार है।"

20

मैं 'राम' के जगाये जागी रे !

'वेश्या' शब्द सुनते ही जो कल्पना-चित्र आमतौर पर मस्तिष्क में उभरता है—उसी वारांगना का प्रसंग है।

वेश्या और साधु !

साधु और वेश्या ! !

कितनी दूरी है दोनों में ! एक पूर्व, दूसरा पश्चिम। नदी के ये दो किनारे, हमें लगता है कभी नहीं मिल सकते। एक भोग में डूबा हुआ समाज का प्राणी ! दूसरा संसार से ऊबा हुआ महामुनि ! !

दोनों में साम्य कैसा ? पर दिव्य व्यक्तित्व मुनि श्री मायाराम जी म० का जीवन कहता है, वेश्या और मुनि का साक्षात्कार संभव हैं।

मुनि का मिलन दुष्ट से होता है, सज्जन से होता है। हिंसक शोषक, जल्लाद, दानव, देव, राक्षस, यक्ष, भूत-प्रेत और पिशाच, इन सब का मिलन होता है—सच्चे मुनि से।

उपर्युक्त सभी इकाइयां हैं—नदियां हैं, और ये सब अज्ञातरूप से भाग रही हैं, सागर में समाने के लिए। वह सागर है—महामुनि का अनन्त असीम करुणा-समुद्र।

जंगल में मुनि तप कर रहे थे। उन्हें एक राजा मिला। राजा ने सन्तान की कामना की।

पेड़ की छाया में तप तपते किसी मुनि को एक दुखियारा मिला। उसने दुःख दूर करने की प्रार्थना की। इस तरह के आख्यान बहुत सुनते आ रहे हैं हम। राजा और दुखयारा, मुनि से भेटा होगा। हम कहना चाहते हैं—इस तरह हमने बहुत सुना और पढ़ा। लेखनी दर लेखनी कान दर कान, वाणी दर वाणी सुनते और पढ़ते आ रहे है।

परन्तु आज हम वेश्या का साक्षात्कार मुनि से कराते है। देखिए कैसे होता है।

+ + +

"सुण तो कुण कूंख जल्यो गा र्‌ह्यो है।"

"पण चाँदबाई सा! राग मे घणीज कसक है,"

"लाजांवाई सा, गावणिया रे दिल के मायने गैरो दरद सुणीजे हैं।"

चाँदबाई फिर बोली—"दरद ही दरद कोनी। कलेजा के मांय ने कसक उघड्योड़ी लाग री है।"

धापूबाई—"फैर चाँदबाई सा, किस का राणो रूस रह्या है? गाणो तो सुणती चालो।"

+ + +

यह वेश्याओं का वार्तालाप है, राजस्थानी भाषा में।

ये जोधपुर नरेश की राजवेश्याएं उदयपुरस्थ महाराणा फतेसिह जी के महलों में आमन्त्रित की गई थी। महामना मुनि श्री मायाराम जी म० का रात्रिकालीन धर्म प्रवचन के दौरान सगीत हो रहा था। वेश्याएं गुजर रहीं थी। चाँदबाई और लाजाँ वाई बरबस ठहर गईं। सगीत पूरा हुआ। वेश्याओं ने विचार किए—हम गायक मुनि से मिलना चाहती हैं।"

मुनिमना ने कहलवाया "जरूर मिल सकती हैं। पर अभी नहीं, सुबह।"

अगले दिन वेश्याएं महामुनि के दर्शन के लिए चल पड़ीं। बड़ी उमग और आकर्षण उनके मन में था, गायक मुनि के प्रति।

परिचय-वार्ता हुई। एक ने कहा—आप विरक्त हैं। हम आसक्त। आपके राग के पीछे कौन--सा अज्ञात आकर्षण है-- अगर एतराज न हो तो बताएं ?"

"राग में आकर्षण तो रहता है। पर मेरा सगीत केवल मनोरजन नहीं है। मेरे गीत को समझने वाला भोगासक्त मनुष्य नही हो सकता। मेरे संगीत को सादगी की बिरसाधिका समझ सकती है या फिर अनहद की अज्ञात ध्वनि सुनकर हर्षित होने वाला योगस्पर्शी कोई नर।

तुमने कूख जले का सम्बोधन भी ठीक किया था। मैंने बार-बार जन्म लेना छोड़कर माँ की कूख को जला दिया है।"

"तुम अगर मेरे संगीत का 'राज़ जानना चाहती हो तो सादगी का सन्यास धारण कर लो। मैं तुम्हे सगीत की आत्मा दूंगा। तब तुम्हारा सगीत वास्तविक सौन्दर्य से मडित होगा। नरेश-महेश दोनों तुम्हारा सगीत सुनेंगे और तब तुम पाओगी सचमुच सगीत लोकोत्तर सुख देने वाला है। जानती हो संगीत का सच्चा सुख मीरा ने पाया था। 'मेड़ना' और 'उदयपुर' को सन्त-साहित्य में अमर बनाने वाली सादगी और संगीत की मूर्ति मीरा थी।

भारत का साक्षर, निरक्षर, भक्त, वैरागी सबकी दुर्लभ साधिका मीरा ने सादगी का सन्यास धारण कर सतों की संगत की थी। उसके संगीत में धीरे-धीरे भक्ति का अवतरण हुआ! आत्मा उद्‌बुद्ध हुई। राणा के विष के प्याले को उसकी भक्ति ने अमृत बना दिया था।

लोक गायकों ने उसे कहा—

"संतां रो संग छोड़ो मीरा,

लाजे थांको पीहर सासरो।"

लेकिन मीरा फिर महलों में नहीं लौटी। उसने अपने गिरधर को ही जाना था। पीहर और ससुराल उसे आकर्षित न कर सके। उसने बार-बार एक ही बात कही—नातो म्हांसूं गिरधर को तनिक न तोड्यो जाय।

तो मैं कहता हूँ—वीरों को जन्मदात्री उस वीर-भूमि राजस्थान जन्मो-जायी, त्याग और शौर्य-परम्परा को भूल कर आज तुम कहाँ भटक गई ? राजा महाराजाओं को रिझा कर क्या पाओगी ? चिर आराध्य को तुमने रिझाया ? देखो उसे रिझाकर। कोट-कोटि कण्ठों से अवतरित होकर वह बोल पड़ेगा—'गाओ और गाओ।"

सादगी का सुख राज्याश्रित गायिका के सुख से बढ़कर है। मैं तुम्हें सफ़ेद कपड़े पहनकर साध्वी-संघ में दीक्षित होने की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं चाहता हूँ, तुम आत्म-संगीत ही गाती रहो। संगीत की स्वरलहरी उन अदृश्य कानों तक पहुंचा दो, जो अनादि-काल से सुनता आ रहा है। संगीत में भक्ति को पिरोकर तुमने कभी गाया आज तक गीत ? नहीं न ?

और विचार किया कभी अपने स्वरूप पर ? नारी वृक्ष का मूल है। पुरुष उसका फूल है। वृक्ष ने आज तक कभी फल को नहीं रिझाया। तुम पूज्य हो ! समझो अपने स्वरूप को।"

लाजाँ !

और अन्त में महामुनि श्री मायाराम जी म० न कहा—"कितनी बडी भूल है यह जीवन की। संगीत को सुनने वाले की तलाश ही न की गई। पत्ते नोचने वाला वल्लरी का प्रेमी कैसे हो सकता है ?

लाजाँ जी ! सादगी में रह कर संतों की संगत करने वाली मीरा का पीहर, ससुराल आज तक लज्जित नहीं हुआ तो तुम्हारा राज्याश्रित संगीत सादगी का संन्यास धारण करने मे लज्जित कैसे होगा ? लो यह संगीत की आत्मा और लौट जाओ मीरा के देश में।"

ऋषिराज मुनि श्री मायाराम जी म० के दिव्य व्यक्तित्व के अतीत में छिपे घटना प्रसंगों को कहने वाले पूज्य गुरुदेव कहा करते — वेश्याओं के समूह की सूत्रधार लाजाँ ने राज्याश्रय को छोड़ दिया और कहने लगी—

महामुने !

"आपकी वाणी सुनकर मुझे अपूर्व बोध मिला है। मैं उसे बयान नहीं कर सकती। मुझे अनुभव हो रहा है—आज मैं मुनि के

वचनामृत पान करके कृतार्थ हो गयी हूँ। मेरा संगीत और मेरा नारीत्व जी उठा है।

"आज तक मैंने राज्यश्रय से जो कुछ पाया है वह सब कुछ आपके चरणों में अर्पित करती हूँ। किन्तु आप मुझे सादगी के संन्यास का अधिकार दे दीजिए! मेरा लज्जित अतील उज्जवल हो जाएगा। भविष्य प्रकाश से भर जाएगा। मैं धन्य हो जाऊंगी।

महामुनि वेश्या को जो देना चाहते थे—जो कहना चाहते थे—वह घटित हो चुका था। उन्होंने कहा—"लाजाँ जी, 'अपनेपन के धन-जन के मोह को मैंने पीछे छोड दिया है। उसका मुझे स्वप्न में भी स्मरण नहीं होता। तुम्हारा राज्यश्रय से प्राप्त वैभव मेरे किस काम का? मेरे साधुत्व मे उसे आश्रय नहीं मिल सकता। अच्छा यह है कि इस राज्यश्रय से प्राप्त वैभव को तुम खुद सादगी का संन्यास भोगते हुए, उसे उन लोगों में लुटा दो, जो सादगी के संन्यास से परिचित नही है।

हमने जाना, स्व० गुरुदेव ने हमे बताया—कि राज्यश्रित चाँदा और लाजाँ जी मुनि के करुणासागर या सादगी में ऐसे समाई, जैसे सब 'नदियाँ गंगा की ओर' समर्पित होने जा रही है।

जैन इतिहासज्ञों को हम यह बताना चाहते है, कि लाजां बाई ने जनवंद्य श्री मायाराम जी म० से सादगी का संन्यास लिया था, उसे जीवित रखने के लिए—राज्याश्रय को हमेशा के लिए तिलाँजलि दी।

सादगी का संन्यास धारण करने वाली—उन्ही वेश्याओं की मुलाकात कालान्तर में जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज से भी हुई।

लाजाँ जी ने सादगी के संन्यास में रंगा एक पद गाया था, जिसके बोल हैं—

सादगी रे संन्यास में पागी,
मैं 'राम' के जगाये जागी रे!

—इस पद में 'राम' थे—मुनि मायाराम!

21

आँख खुली, संसार मिल गया

आँख खुली, कि सब कुछ मिल गया।
आँख मुँदी कि संसार मुँद गया॥

व्यक्ति, व्यक्ति में केन्द्रित हो गया। अपनापन बाहर न रहा। अपने तक सिमट आया। आशा मिटी। अन्धेरा छा गया। सगे, सगे न रहे। सब कुछ निरर्थक हो गया। एक तरह से निर्वेद ने डेरा डाल दिया।

कहने और सुनने के लिए निर्वेद बहुत बडी उपलब्धि है। परन्तु विचारणीय तत्त्व यह है, कि निर्वेद में निराशा का सैलाब आ गया।

एक विद्वान् ने किसी व्याख्या में कहा था—

"शब्दों में सुगंध समाई रहती है। उनसे भावों का अमृत झरता रहता है। जरूरत है, उन शब्दों से सुगंध ग्रहण करने वाले की और झरते अमृत को पीने वाले पिपासु की।"

\+ \+ \+

मुनिमना श्री मायाराम जी म० का जीवन-लेखन करते हुए भिवानी नगर (हरियाणा) की एक घटना सामने आते ही विद्वान् का उक्त कथन हमारी स्मृति में कौंधा। कैसे? मुनिप्रवर हरियाणा के

जनपदों में घूमते, गाँव-गाँव को जगाते हुए भिवानी पहुँचे थे। 'जागते रहो' का जयनाद हर दिन, हर घड़ी करना उनका नियति-नियोजित नियम बन गया था। इसी के अनुसार, वे भिवानी में प्रवचन कर रहे थे। हर रोज प्रवचन होता था। शब्दों की सुगन्ध का पारखी और भावों के अमृत को हृदयस्थ करने वाला एक अन्धा नाई उनके प्रवचनों में आने लगा। हर रोज आता रहा। श्री मायाराम जी म० के प्रवचनों में उसका अमल मन विमोहित होता गया।

भिवानी में ही वह रहता था। दिन और रात, रात और दिन, उसके लिए बराबर थे। परिहास जगत्, उस समय भी बड़ा चंचल था। अन्धे व्यक्ति के लिए समदर्शी शब्द पढ़े और बेपढ़े सब की ज़बान पर दाँतों की पंक्ति के बीच दबा, सिमटा रहता था। जब मन ने चाहा दाँतों की पंक्ति का घेरा हटाकर अन्धे को कह दिया—समदर्शी! समदर्शी कहने वालों के भावों की कुटिलता को श्री मायाराम जी म० अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने एक दिन अपने प्रवचन में कहा—

"निर्वेद की निराशा में टूटा मन लेकर जी रहे अन्धे को अन्धा कह कर उसके दुःखी मन को और अधिक दुःखी नही करना चाहिए।"

भिवानी के उस नाई को श्री मायाराम जी म० के प्रवचनों से दुखती रगों पर सुकोमल हाथ फेरने जैसी अनुभूति हुई। वह पूरी तरह मुनिश्री को तन और सुकुमार मन की सचाई से समर्पित हो गया। उसने माना कि आंख मूंदने पर संसार मुंद जाता है। परन्तु अमृतपुत्र ऋषि श्री मायाराम जी म० के प्रवचनों ने मेरी भीतर की आँखे तो खोल दी हैं।

किन्तु यदि इस महापुरुष की मुझ पर कुछ कृपा और हो जाये तो······मेरी बाहर की आंखें भी खुल सकती हैं।

"आँखे खुलीं कि संसार दिखाई देने लग जाएगा। मेरा अपनत्व विश्व-ममत्व में विकेन्द्रित हो सकता है। परायापन अपना हो सकता है। जो निरर्थक हो गया है। वह सब सार्थक हो सकता

है। निराशा के स्थान पर आशा के दीप जगमगा सकते हैं। कुण्ठा और बुझेपन का सैलाब आकाङ्क्षा का उमड़ता सैलाब बन जाएगा।"

\+ \+ \+

मुनि श्री मायाराम जी म० जनमंगल के लिए प्रवचन करते थे। एक दिन प्रवचन के बाद स्वाध्याय में बैठे। स्वाध्याय पूरी हुई। अन्य मुनिजन भिक्षा लेकर लौट चुके थे। मुनियों ने महाराज श्री से कहा—कोई जिज्ञासु बैठा है। पता नही क्या जिज्ञासा पनप रही है उसके मन में? श्री मायाराम जी म० बोले—"सब लोग जा चुके हैं। तुम अभी नही गए? अब जा सकते हो। बहुत देर हो चुकी है। पूरे स्थानक में इस समय कोई नहीं है। तुम क्यों नहीं गए, अब तक अपने घर-द्वार को?"

अन्धे नाई ने आँखें न होते हुए भी कल्पना में एक नया संसार रेखांकित कर लिया था। वह गद्गद हो कर बोला—"मुनिवर! अब मुझे कही नही जाना है। मेरे रेखांकित संसार में आपको रग भरना होगा।"

कल्पना का ससार बड़ा विचित्र होता है। लम्बी चौड़ी जाजम पर बैठे सैकड़ों आदमी, सैकड़ों तरह के संसार रचते रहते हैं। किसने कैसा ससार रचा है, कौन कह सकता है? श्री मायाराम जी म० ने कहा—"कैसा है तुम्हारा संसार? हम संसार की रेखाओं में रग नहीं भर सकते। संसार में रहने की कला की दृष्टि दे सकते हैं। रंग नहीं भर सकते।"

अन्धे नाई का मन खुशियों में भर गया। बोला—"रंग नही मुझे दृष्टि ही चाहिए।"

श्री मायाराम जी म० ने नेत्रहीन नाई से कहा—"संसार में रहने की दृष्टि चाहते हो, कल प्रवचन में कहने का उपक्रम करूंगा। कल तुम इस दृष्टि के बारे में समझ लेना। अब तुम जा सकते हो, क्योंकि मुनियों की साधना एकान्त में उजागर होती है। साधना में दूसरा द्वैत का काम करता है।"

नाई ने कहा—"महाराज, कहे मुताबिक जाने को तैयार हूं परन्तु जाऊं कैसे? मुझे दिखाई तो देता ही नहीं है। आपने दृष्टि

देने की बात, कल पर छोड़ी है, तो कल तक यहीं बैठा रहूँगा। कल दृष्टि मिलने पर ही जाऊंगा।"

"ऐसा मत सोचो। देख लो, कोई भी मुनियों के स्थान में मुनियों के अलावा नहीं है। तुम कल तक बैठे रहने का आग्रह लिए बैठे रहोगे? यह अच्छा नहीं लगेगा। मुनियों की साधना में सहयोगी बनना भी, संसार में रहने की दृष्टि का ही अंग है। तुम···तुम देख सकते हो, यहाँ मुनियों के अलावा कोई गृहस्थ नहीं है। आज नहीं, कल ही प्रवचन में आना। तभी संसार मे निर्लिप्त भाव से कैसे रहा जा सकता है—यह दृष्टि दूंगा।"—महाराज श्री ने दोबारा उस अन्धे नाई से कहा।

अन्धे नाई ने कहा—अच्छा···। और वह चल पड़ा।

\+ \+ \+

कालान्तर में वही नाई, श्री मायाराम जी म० की शिष्य-परम्परा के एक ज्येष्ठ मुनिवर से मिला। उसने स्वय कहा—"आप मुनि श्री मायाराम जी म० के शिष्य-परिवार के मुनि है। यह जान कर मुझे दोबारा से वही खुशी हो रही है।

मुनि-दर्शन से तुम्हें खुशी मिली, यह तो ठीक है, किन्तु 'दोबारा' से तुम्हारा तात्पर्य क्या है?

मुनि के इस कथन पर उसने अपने जीवन में घटी पूरी घटना को सुनाते हुए कहा—"मैं वर्षों से अन्धा था। एक दिन मैं स्थानक में आया और देर तक बैठा रहा। श्री मायाराम जी म० ने मुझे जाने का सकेत करते हुए कहा था—"कि तुम देख सकते हो स्थानक में कोई गृहस्थ नही है। और उनका कहना था, कि तुम देख सकते हो···। मुझे सचमुच में सारा अग-जग दिखाई देने लग गया। मेरे नेत्र खुल गये। आज फिर से मुझे उनके शिष्य परिवार के मुनियों को देख कर वैसी ही खुशी हो रही है। मैं मुनि मायाराम जी के कहने मात्र से नेत्र मिल जाने के बाद से मुनियों के वचनों को प्रभु का आदेश मान कर स्वीकार करता हूँ। बस, मैंने अपने जीवन में यही पाया है। इसी पाने के नाते मैं मुनियों का सच्चे मन से अनुचर, सेवक और भक्त बना हूँ। ताज़िंदगी—भक्त बना रहूँगा।"

22

मेरा मन वनवास दिया-सा

संवत् उन्नीस-सौ अडसठ की बात।

नरवाना तहसील में एक मुसलमान तहसीलदार थे। नाम था--मीरमुहम्मद अली।

बडौदा ग्राम, नरवाना तहसील के अन्तर्गत पहले भी था और अब भी है। तहसीलदार जब कभी कार्य निरीक्षण हेतु बड़ौदा आते, दौरा करते और चले जाते। एक दिन वे बड़ौदा आए तो उनका मन श्री मायाराम जी म० का उपदेश सुनकर वनवासी बन गया।

एक मुसलमान का मन मुनि मायाराम जी के उपदेश में भीगा। फिर उसकी हृदय-अवनी में अहिंसा का बीज अंकुरित हुआ। वह बैरागी बना। इसीलिए उसे कहना पडा—मुनिवर ! मेरा मन तो वनवासी बन चुका है।

तो वह वनवासी कैसे बना ?

समता के मंत्रद्रष्टा मुनि श्री मायाराम जी म० ने संवत् १९६८ में बड़ौदा ग्राम में वर्षावास बिताना स्वीकार किया था। जनहितार्थ उपदेश करना उनकी नियति बन चुकी थी। वे उपदेश कर रहे थे। पंजाब के साधु-समूह और गृहस्थों द्वारा उन्हें पंजाब की 'कोकिल' कहा जाने लगा था। कोकिलकंठ के सब स्वर अनंत अम्बर में

समा गए थे। केवल एक बोल गूंज रहा था—"व्यर्थ गए तेरे तीसों रोजे।"

मीरमुहम्मद अली तहसीलदार के कानों ने सुना—'व्यर्थ गए तेरे तीसों रोजे'''।' उसके पांव ठिठक गए। रोजों को व्यर्थ बताने वाला यह कौन खतीब (उपदेशक) है?

तहसीलदार अली, मुनि श्री मायाराम जी म० के समीप आया पूछा—"रोजे कैसे व्यर्थ चले गए या चले जाते है—यह बताइए?"

"अगर इन्सान की गोद में जन्म लेकर जो इन्सान को प्यार देना न सीख पाया, वह रोजे रखने वाला बेचारा—व्यर्थ ही तो भूखा मर रहा है। उसके रोजे व्यर्थ ही न गए, तो क्या सार्थक हो गए?"

कवि के शब्दों में इसे हम यूं भी कह ले—

क्या करेगा प्यार वह ईमान को,
क्या करेगा प्यार वह भगवान् को,
जन्म लेकर गोद मे इन्सान की,
प्यार कर पाया न जो इन्सान को।

अली के दिमाग ने पूज्य श्री मायाराम जी म० की सचोट बात को पकडा। उसने और पूछा। चर्चा की और अन्त मे वह उनका मुरीद बन गया। ऐसा मुरीद बना कि नरवाना से नित्य बडौदा आकर प्रवचन सुनने लगा। सत्य को उसने समझा। अहिंसा को मन मे बसाया। ब्रह्मचर्य का स्वरूप जाना। अपरिग्रह को अपने जीवन की साँस बनाया। एक दिन उसने कहा—"मुनिवर, आपके उपदेशों में सत्य की आत्मा का निवास है। आपने मेरे मन को वनवासी बना दिया है। मैं तहसीलदारी अब क्या कर पाऊगा।?'

उसने और कहा—"अहिंसा मेरे जीवन की प्राणशक्ति बन चुकी है। सत्य और अपरिग्रह सूर्य और चन्द्र-स्वर की तरह समाकर मुझे जीना सिखा रहे है। सचमुच यदि आपसे मुलाकात न होती तो मेरे रोजे ही नही पूरी जिन्दगी व्यर्थ साबित होती।'

—यह था, मुसलमान तहसीलदार मीरमुहम्मदअली की आत्मा का नाद।

इस तहसीलदार के चिन्तन और कार्यों ने हमें बताया—

—वह नमोक्कार मन्त्र का उपासक बना।

—जीवन भर के लिए रिश्वत लेनी छोड़ी।

—नरवाना में सर्वजन हिताय—एक धर्मशाला का निर्माण करवाया।

+ + +

उसके पास एक गाय थी। तहसीलदार के पास गाय हो, तो उससे हमें क्या?

नही। यहाँ उसकी गाय उसके वनवासी मन का मूर्तरूप बन कर हमारे सामने आ रही है। इसीलिए उसकी चर्चा जरूरी है।

एक दिन वह गाय घर से चली गई। दिन भर गायब रही। शाम के वक्त खुदबखुद घर आ गई। तहसीलदार ने गाय को चारा डाला। गाय ने चारा नहीं खाया। गाय के सेवक ने कहा—"तहसीलदार साहब! आज यह गाय हमारा दिया चारा नहीं खायेगी।"

"क्यों?"

"इसलिए कि खेतों में, आज इसने मन चाहा खाया है। मन चाहा विचरण किया है। आज वह बहुत खुश है। हर रोज से आज यह दूध भी ज्यादा देगी। चौपाया बेचारा अनबोला फकीर है। जब वह मनचाहा खा-पी चुकता है तो खुश भी होता है और दूध भी मालिक को ज्यादा देता है।"

तहसीलदार ने सुना, कहा—"तुम ठीक कहते हो। पर मैं आज इस गाय का दूध नही पीऊंगा। मेरे घर में और भी कोई नही पीएगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि इस गाय के दूध पर आज मेरा हक नहीं है। यह जिस किसी के खेत में चर कर आई है, वही इसके दूध का हक़दार है। सुनो! आज इसने मनचाहा दूसरों के खेतों का नुक़सान किया होगा, फिर मेरा इसके दूध पर कैसे हक हो सकता है? आज

इसने मेरी मेहनत के पैसों का चारा नहीं खाया, तो मेरा हक़ भी इसके दूध पर नहीं रहा।"

\+ \+ \+

हमने पहले कहा, फिर कहना चाहते हैं, कि श्री मायाराम जी म० की उपदेश-धारा, के अमलगार तहसीलदार मीर मुहम्मद अली का, गाय के प्रसंग में अहिंसा और नैतिकता की दिशा में इतना सूक्ष्म चिंतन है? यहाँ हम यह कहने के लिए विवश है कि जन्म-जात जैनों का अहिंसा की दिशा में इतना सूक्ष्म चिंतन आमतौर पर नहीं होता। कितनी गहराई में जाकर उसने परिश्रम के बिना खाए गाय के घास और दूध पर चिंतन कर निर्णय दिया। यहाँ जन्मजात जैनों का अहिंसा-चिंतन पराजित हो जाता है।

तहसीलदार मुहम्मद अली की तरफ़ से हमे कहने की इजाज़त दी जाए तो हम कहेंगे—'मेरा मन वनवास दिया-सा' नहीं।

—खतीब मुनि श्री मायाराम जी म० ने 'मेरा मन संन्यास दिया-सा, बना दिया है।'

23

समर्पण

इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) चाँदनी चौक में स्थित, बारादरी (महावीर भवन) में, गुरुजनों की सेवा में समर्पित, श्री मायाराम जी म० आ गए थे। बाबा गुरु श्री नीलोपद जी म० को इन दिनों सेवा-समर्पित मुनि की जरूरत थी। श्री मायाराम जी म० समर्पित जीवन जीने का व्रत लेकर, नीलोपद जी म० की सेवा में लगे रहते थे।

तपस्वी श्री नीलोपद जी म० वृद्ध थे। वृद्धत्व बाल्यभाव का पुनरागमन होता है। वे एक दिन सो रहे थे। श्री मायाराम जी म० छाया की तरह उनकी सेवा में रहते थे। रात का समय! गर्मी का मौसम!

श्री नीलोपद जी म० विश्राम कर रहे थे। उनके सर से सरहाना सरक कर काष्ठ-शैया से नीचे गिर गया। श्री मायाराम जी म० थोडी-थोडी देर में उनकी देख भाल करते रहते थे। उन्होंने देखा सरहाना उनके सर के नीचे नहीं है। धीरे से उनका सिर अपनी जाँघ पर रख लिया। बैठ गए। रात सरकती गई। बहुत देर के बाद बाबा गुरु श्री नीलोपद जी म० की नींद खुली। देखा—मुनि मायाराम बैठा है। और मेरा सर उसकी जाँघ पर रखा है। उन्होंने साश्चर्य पूछा—"कितनी देर से तुम यूं मुझे लिए सुला रहे हो?"

श्री मायाराम जी म० ने तब कहा—"देर और सवेर कैसी? मुनि-जीवन गुरुजनों के लिए समर्पित जीवन होता है। उसके लिए

न देर है, न सवेर है। उसके लिए महत्त्व है समर्पण के सुख का। जब सर के नीचे सरहाना न था तो मेरे लिए समर्पण के सुख पाने का अवसर था। इस अपूर्व अवसर की तलाश के लिए तो मुनि हमेशा कहता रहता है—"एवो अपूर्व अवसर क्या रे आवशे।"

\+ \+ \+

एक बार श्री मायाराम जी म० हांसी (हरियाणा) पधारे। वे वहाँ रुग्ण हो गए। रोग को पकड़ना चाहा, पर वह हाथ छुडाता रहा। विजयी होता रहा। दूर-पास, निकट सटे गाँव से लोग आने लगे। पर रोग था, कि तेज-से-तेज निगाह से बच निकलता। स्थिति यह बनी, कि जीवन और मृत्यु का संघर्ष शुरू हो गया।

संघ के सम्मुख भारी चिन्ता खड़ी हो गई। एक दिन बाबा गुरु श्री नीलोपद जी म० ने श्री मायाराम जी म० के निकट बैठकर ध्यान किया। ध्यान खोला तो मन में संकल्प आया "मुनि मायाराम मेरे लिए तो महत्त्वपूर्ण है ही, समाज के लिए, इस धरती के लिए, इसका जीना और भी महत्वपूर्ण है। आयु के तार इतने कोमल व दृढ़, कि वे न किसी के तोड़े टूटते हैं और न किसी के जोड़े जुड़ते हैं। गौतम ने कितना चाहा था कि महावीर का जीवन-दीप न बुझे, पर बुझने से बचाना गौतम के बस में था, न महावीर के। मुनि मायाराम को मैं अपनी आयु के तार तो नहीं दे सकता, पर चाहता जरूर हूँ, कि मेरी आयु के शेष बचे सारे तार मुनि मायाराम की आयु में जुड़ जाएं।"

तपस्वी श्री नीलोपद जी म० ने उस समय निषेध-परक प्रतिज्ञा करते हुए कहा—मैं, मुनि मायाराम के स्वस्थ हो जाने की खुशी में दो दिन उपवासी रहूँगा, एक दिन अन्न ग्रहण करूंगा। फिर दो दिन अन्न छोड़, उपवास धारण करूंगा—ऐसा मैं जीवन पर्यन्त करता ही रहूँगा। यदि मुनि मायाराम स्वस्थ हो जाए!

ऐसा ही हुआ। श्री मायाराम जी म० स्वस्थ हो गए।

\+ \+ \+

समर्पण का सुख छोटे और बड़े का भेद भूल जाता है। वहाँ एक बात याद रहती है, समर्पण में सुख है। निजी सुख है देने का आनंद, हाथ पसार कर लेने से कहीं अधिक मूल्यवान् होता है। ●

24

मुनि का, मुनि को उपहार

किताबे सब तरह की पढी सुनी जाती है। ग्रथ, शास्त्र, गीता, भागवत, बुद्धवाणी, ईसा का सदेश, कुरान की आयते भी। यह एक फर्ज और धर्म हो चला है।

पर मन की किताब, मन की पोथी, मन का शास्त्र, मन का सदेश, मन की वाणी, मन की भाषा, मन के बोल, मन की कविता, मन का सगीत, कितने सुन पाए है—कितने समझ पाये हैं ? नही, तो सुन ले ! समझ ले।

मुनिश्रेष्ठ श्री मायाराम जी म० से एक सत मिले। बडी दूर से अनेक दिन लगाकर पैदल चल कर उन तक पहुचे थे। दर्शन किये और बोले—"युगावतार, आठवां दिन है आज। पूरा आठवा दिन। गांव फिर गांव। सडक फिर सडक। कदम-क़दम धरती को मापता हुआ आपके दर्शन करने आया हूँ। आज आपके दर्शन कर मै बहुत प्रसन्न हूँ ! मेरे मन की हर परत आज खुशी में डूब रही है।

महामना मुनि श्रेष्ठ ने उसके मन की किताब पढी। समझ गए। बोले—"मुनि के पास मुनि आता है, तो खुशी से मन की परत ही क्यों, उसका कण-कण प्रसन्न हो जाता है।"

आगन्तुक मुनि ने निवेदन किया—

"महामुनि ! मैं लघु हूँ, आप महान् ! आप दाता, मैं दास हूं !

आप स्वामी, मैं सेवक हूँ। एक तुच्छ-सी भेंट लेकर आया हूँ—शायद आप स्वीकार करलें तो ?

ये मुनि कौन थे ? स्थानकवासी सम्प्रदाय के ही एक 'एकल-विहारी' मुनि। वे पूज्य श्री मायाराम जी म० को अपनी श्रेष्ठतम वस्तु रेशमी चादर भेंट करना चाहते थे।

मुनि जब 'समूहबद्ध' होकर रहने लगा तो उसे एक आचार-संहिता भी ओढ़नी पड़ी। उस आचार संहिता का एक सूत्र है—एकाकी मुनि से समूहबद्ध मुनि संपर्क न रखे। क्योंकि एकाकी अवस्था सत्य होने पर भी व्यवहार-विरुद्ध है।

मुनि श्री मायाराम जी म० अपने संघस्थ मुनियों के शास्ता बन चुके थे। वे 'एकलविहारी' मुनि से सम्पर्क कैसे रखते ? उसकी भेंट कैसे स्वीकार करते ? अजीब परेशानी थी। परन्तु एकलविहारी मुनि के सम्पर्क-विशेष के पीछे दृष्टि क्या है ? इसे वे सम्यक् प्रकार से जानते थे। इसलिये एकलविहारी मुनि के हृदय की भाषा को उन्होंने पढा।

उनके सामने मुनि की वह असीम श्रद्धा थी—जिसमें निमग्न हुआ वह मुनि एक सप्ताह तक निरंतर विहार करते हुए लम्बा रास्ता तय करके आया था, मात्र दर्शन करने। उसके मन को वे कैसे तोड़ देते, मुनियों की संघबद्ध आचार संहिता में बंध कर ?

मुनि से कहा—"प्रिय मुनि; ठहरो। रहो-सहो। मिलेंगे। बैठेंगे। ज्ञानचर्चा होगी। तुम्हारी भेंट स्वीकार करूंगा। तुम्हारे सुकोमल मन की अनुभूति जानता हूँ। तुम्हारा 'आदान' मेरे 'प्रदान' की समानांतर तुला पर रखा जाएगा।"

समत्व के साधक श्री मायाराम जी म० की विश्वमंगल दृष्टि में मुनि की रेशमी चादर का क्या मूल्य हो सकता था। मान, निन्दा, स्तुति, की स्थिति में, जिनका अचल आसन चल-विचल नही हो सकता था—'उस महामुनि ने एकलविहारी मुनि की रेशमी चादर अपने हाथ में ले ली।'

महामना का उपासक वर्ग, आकाश और धरती के बीज लटक गया, यह—सोचकर कि एकलविहारी मुनि से संघशास्ता का सम्पर्क

और फिर उसके द्वारा भेंट की गई चादर को भी स्वीकार कर लिया !

मुनिमना बाहरी विधि-निषेध की अपेक्षा अंतरंग के विधि-निषेध को अधिक महत्त्व देते थे। मुनि का मन उन्होंने पढ़ा था। उपासक वर्ग के मन की भाषा भी पढ़ रहे थे। उन्होंने कहा—"मुनिवर, भेंट मुझे स्वीकार है। वह स्वीकृति खुशी कब देगी जब मेरी ओर से भी तुम्हें भेंट प्राप्त हो ? तभी भेंट की मिठास की अनुभूति होगी।

"रेशमी चादर तुमने भेंट कर दी। तुम्हारा मन खुश हो गया। इस खुशी का रस बराबर कैसे बना रहेगा ? यही रेशमी चादर मैं तुम्हें भेंट दे रहा हूँ।

"ले लो ! मेरी भेंट है, उठा लो इसे ! उठाते क्यों नहीं ?"

मुनि का मन असमजस की स्थिति में पहुँच गया।

एकलविहारी मुनि रेशमी चादर उठाते कैसे ? श्रद्धाभाव से अर्पित वस्त्र था वह !

पर वे उठाते क्यों नही ! महामना की कृपा-पूर्ण भेंट थी वह !

फिर महामना ने उपासकों से कहा--"ये मुनि एकलविहारी है। पर उनकी आस्था की गहराई देखी आपने ? मीलों से चले आए मुझ से मिलने के लिए। मुनि के पास उपहार देने को रेशमी वस्त्र था। मैं उसे स्वीकार न करता तो उनके मन की गागर चूर-चूर हो जाती।"

मैंने उनका रेशमी वस्त्र स्वीकार किया और फिर उसे लौटा दिया। पता है, उनका मन इस से किस परिणति पर आकर ठहरा है ? उन मुनि ने मुझ से कहा है—मैंने आपको जो भेंट दी—वह ठीक नहीं थी। मैं प्रतिज्ञा लेता हूँ—आज के बाद में कभी रेशमी वस्त्र नहीं पहनूंगा।"

तब उपासकों ने सोचा—"हमारे सोचने का तरीक़ा ग़लत था। मुनि के 'ग्रहण' का भी अर्थ होता है। मुनि जो प्रदान करता है, उसका और भी गहन अर्थ होता है।"

और आज उनकी दीक्षा-शती पर हम याद कर रहे हैं, कि 'मुनि का मुनि को दिया उपहार।'

25

तुमसे बड़ा देव, कहाँ से लाऊं ?

श्री मायाराम जी म० एक बार पुष्कर तीर्थ पहुंचे थे। प्रवचनों की पावन गंगा पुष्कर तीर्थ के कूल-किनारों को तोड़ कर बह रही थी। पुष्कर मे ब्राह्मणों और मन्दिरों की कमी, न आज है, न तब थी। सम्प्रदायवाद का युग। ब्राह्मणों का गढ़।

वहाँ एक ब्राह्मण था। कुछ बातें उसके मन में बैठी थी। जैन मुनियों के प्रति उसके मन में गहरा विद्वेष था। पागल हाथी की सूंड मे सिमट कर, लिपट कर, भले ही किसी चट्टान पर पटक खाकर मर जाओ। तुम्हारी हड्डियाँ भले ही खील-खील होकर बिखर जाये, परन्तु जैन मुनि का प्रवचन कभी नही सुनना चाहिए। ऐसा विश्वास था, उसका।

ऐसा क्यों ?

इस 'क्यों' का उत्तर उसी के पास कुछ होगा ? पर मान्यता में अरावली की चट्टान की तरह वह अटल था।

\+ \+ \+

वह प्रातः मन्दिर में फूल चढ़ाने के लिये प्रतिदिन जाया करता। श्री मायाराम जी म० उपदेश करते थे। पूजा के लिए जाने और महाराज श्री के प्रवचन करने का समय एक ही होता था।

सुना है, चट्टानें कभी-कभी जब भूगर्भ में कुछ घट जाता है, तो टूटकर खील-खील हो जाती हैं।

महाराज श्री प्रवचन नित्य ही करते थे। एक दिन सम्प्रदायवाद पर उनका प्रवचन हो रहा था। वे कह रहे थे—"सम्प्रदायवाद एक जन्म का विनाश नही, वह जन्म-जन्मान्तर के उदार विचार और मानवता की हत्या की लम्बी श्रृंखला है। यह आत्मा का महाविनाश है। इसमें आस्था रखने वाला जन्म-जन्म तक अपनी आत्मा का विनाश करता रहता है।"

श्री मायाराम जी म० यह कह रहे थे। ब्राह्मण ने अनचाहे में सुन लिया। चमत्कार ऐसे घटा—जैसे भूगर्भ में कुछ घटा हो और ब्राह्मण की अरावलीय मान्यता की चट्टान टूट पड़ी हो। ब्राह्मण बदल गया। जाग गया। एक महाश्रमण के संस्मरणों की रेखाओ से रेखांकित हमें मिला—"उस ब्राह्मण ने रंगजी के मन्दिर में चढ़ाने वाले फूलों की बखेर श्री मायाराम जी म० के ऊपर कर दी और कहा—"महामुनि! तुम से बडा देव, मैं और कहाँ से लाऊ? ये पुष्प तुम्हे समर्पित करता हूँ।"

26

श्रद्धा उमड़ी, विश्वास जागा

मुनि वह है, जो मन से स्वयं को अकेला मानता है। वह चलता है, तो हजारों उसके पीछे चलने के लिए ललचाते है। किन्तु वह अपने मन में साध्य से इतर किसी और को प्रवेश करने नही देता। उसे यह आग्रह भी नही रहता, कि कोई मेरे कहे में चले। उसका काम कहने भर का होता है। वह कह देता है—बस ! कोई चले तो उसका कल्याण, न चले तो उसकी मति। निरपेक्षभाव से कहते जाना, उसका काम है। उसके कहने से किसी के हृदय-कमल-पत्र पर अमृत की बूंदे ठहर जायें या ढल जायें। मुनि का उस श्रोता से फिर कोई वास्ता नही होता। सुनने वाला आस्था ले आये तो भला, न लाये तो भला।

\+ \+ \+

श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० बड़ौदा ग्राम[1] का (सं० १९६८) पहला और अन्तिम, अमर और अद्भुत चातुर्मास बिताकर, गाँव-गाँव में संयम-जीवन के विचारों का दीप जोड़ते हुए आगे चल दिये थे। वे कसूहन ग्राम (हरियाणा) में पहुंचे। ठहरे ! प्रवचन और प्रवचन। हर रोज प्रवचन करने लगे। इस बीच कुछ साध्वियाँ गाँव-गाँव होती हुई कसूहन आ पहुँची। साध्वियों के साथ जैनेन्द्री दीक्षा की अभिलाषिणी एक बहन भी थी। मुनिश्रेष्ठ के दर्शन किये तो उनका

१. देखें—अगले पृष्ठो पर''''''अद्भुत चातुर्मास।

मन सत्वर दीक्षा लेने को उत्सुक हो उठा। साध्वियों से उसने शीघ्र दीक्षाहेतु निवेदन किया। साध्वियों ने उस बहिन की इच्छा महाराज श्री से निवेदित की। कहा—महाश्रमण! यह बहिन दीक्षा के लिए अभिलाषिणी है। इसे संयम-पथ इष्ट है। आप इस पर कृपा करें।

महामना ने संघ पर दृष्टि-पात किया। दीक्षा का उपक्रम हो गया।

\+ + +

दीक्षा का दिन निश्चित हुआ। पास-पड़ौस के गाँवों को सामान्य सूचना भेजी गयी, कि कसूहन का जैन-समाज दीक्षा का उत्सव आयोजित कर रहा है। आप लोग उत्सव की शोभा-वृद्धि के लिए पधारें।

कसूहन वालों ने—जैसा सोचा था, निकट-पडौस के लोग आयेंगे। उनके आतिथ्य-सत्कार का प्रबंध कर लिया।

सयोग तो सयोग ही होता है। वह किसी की व्यवस्था या अव्यवस्था की परवाह न कभी करता है और न करेगा। मनुष्य खुशी के साधन जुटाता है। सयोग-वियोग के बादलों के द्वारा बरसने लगता है। इन्सान अलग होने की तैयारी करता है; सयोग समन्वय का सूर्य बनकर चमक जाता है।

कसूहन वालों ने पास-पडौस से आने वाले थोडे से लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था जुटाई थी। सयोग ऐसा बन कर बरसा, कि कल्पना से भी अधिक लोगों का समूह उफनते दरिया की तरह उमड पडा। कसूहन-निवासियों की व्यवस्था का कूल-किनारा डगमगाने लगा। निराशा में डूबे लोग श्री मायाराम जी म० के पास पहुंचे। बोले—'महाराज श्री! हम लोगों ने कुछ और सोचा था, होने जा रहा है कुछ और ही। कुछ—सौ व्यक्तियों के भोजन के प्रबन्ध में सहस्राधिक व्यक्तियों का उमडता प्रवाह हमारे मन के कूल-किनारों को तोड देगा। अब, आप ही हमारी लाज रख पाएं तो रहेगी, अन्यथा प्रबंध के किनारे टूट जायेंगे।"

महामना उत्तर क्या देते? उनके निरपेक्ष मन में तो एक ही बात थी—अमृत के छींटे डालना मुनि का काम है। किसी के हृदय-पात्र में ठहरे या ढल-ढुलक जायें, मुनि को क्या लेना देना है?

उन्होंने चिन्तातुर दीवानचन्द श्रावक से कहा—"उदारता वस्तु में नहीं, भावों में होती है। लुटा देने की भावना से व्यवस्था करो। मन से उदार बन जाओ। जैसी भीड़ उमड़ी है दीक्षा पर, मन की उदारता भी उसी तेजी से उमड़नी चाहिए। इधर का उफनता सैलाब उधर के सैलाब में समा जाएगा।" दीवानचन्द श्रावक में श्रद्धा उमड़ी। विश्वास जाग गया! समाज में उसने कहा—अब चिन्ता का कोई विषय नहीं है। दिल खोलकर काम करो।

\+ + +

दीक्षा उत्सव सम्पन्न हुआ। भीड़ विसर्जित हुई। कसूहन के लोगों ने महाराज श्री के अद्भुत चमत्कार के प्रति गद्‌गद्-भाव से समवेत स्वर में कहा—"महामुनि! यह आपका ही महाप्रताप था, कि हमारी लाज रह गई। हमें महान् आश्चर्य तो इस बात का है कि जितना प्रबंध किया था और जो भोज्य सामग्री जुटाई थी, वह जूं की तूं विद्यमान है—फिर सब लोग आकण्ठ भोजन कैसे कर गए?"

महाराज श्री ने तब भी सहजभाव से कहा—"उदारता में अमृत है। वस्तु में नहीं। मन की उदारता, दरिद्रता में सम्पन्नता की समृद्धि की वृष्टि करती है। मन की अनुदारता तथा मन का मरापन सम्पन्नता में दरिद्रता की धूल बखेर देते हैं। तुमने मन को उदार बनाया। लुट जाने पर भी मन को न मरने देने का जो शुभ संकल्प किया था, यह वही शुभ संकल्प का चमत्कार था। मेरा अपना कुछ उसमें नहीं था।"

कसूहन के लोगों ने माना—श्रद्धा होने पर विश्वास जागता है। विश्वास असम्भव के कांटे की चुभन को मिटाकर सम्भावना का सुख बरसा देता है।

27

अन्धेरा मिट गया

श्रद्धेय उदात्तमना मुनिप्रवर श्री मायाराम जी म० की गुजरात—यात्रा के लिये, पंजाब से चलने के काफी दिनों बाद एक गांव मे जो घटा, वह उनके स्वर्गस्थ हो जाने के बाद तक छुपा रहा। छुपा इस लिए रहा, कि स्वयं श्री मायाराम जी म० ने अपने साथ रहने वाले सभी मुनियों को स्पष्ट आदेश दिया था, कि इस गांव में जो कुछ घटित हुआ है—इस सम्बन्ध में कभी किसी के सामने कुछ मत कहना। ऐसा ही हुआ। कुछ नहीं कहा, किसी मुनि ने। पर जो घट गया, वह बड़ा ही अद्‌भुत था!

श्री मायाराम जी म० भूतल पर नहीं रहे, तब भी उनका आदेश परवर्ती मुनियों ने माना और घटित हुए को किसी ने, न कहा। श्री मायाराम जी म० ने साथ चल रहे १६ मुनियों को जिसे न कहने को कहा था, उसी को हम कर रहे हैं। जो घट गया, उसे किसी से न' कहने के पीछे उनकी जो दृष्टि रही होगी, वह भी अद्‌भुत ही होगी; परन्तु उसी घटना को जीवन-लेखन के प्रसंग में लिखा जा रहा है। यह भी अपने-आप में अद्‌भुत ही है। क्यों अद्‌भुत है? इसलिए कि जो निषिद्ध था, वह कहने या लिखने को मिला कहाँ से?

कुछ भी लिखने से पहले, यह कह देना आवश्यक है, कि श्री मायाराम जी म० के स्वर्गवास के बाद उनके जीवन की अन्तिम कृति पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल म० थे। आज यद्यपि वे भी नहीं हैं, किन्तु उन्हीं से जो पाया, उसी को लेखनी की नोक

से एक-एक अक्षर जोड़ कर बीता जा रहा है।

\+ + +

अपरिचित प्रदेश !

अपरिचित गाँव ! !

अपरिचित लोग ! ! !

श्री मायाराम जी म० १६ मुनियों को साथ लेकर चल रहे थे। पूरा प्रदेश अपरिचित था। वे एक गाँव में पहुंचे। गाँव वालों ने जैन मुनियों को जीवन में कभी न देखा था। मुनि गाँव के बाहर तरु-तलवासी हो गए। तरुतल का निवास तो सुखद लगता है, परन्तु भूख ने तरु की शीतल छाया में उग्रता का बाना पहन लिया था। मुनियों ने भिक्षा-पात्र सम्भाले। गाँव का एक-एक दरवाजा झांका। पर किसी ने भोजन देना तो दूर—चोर-डाकू की आवाज से पूरे गाँव में सनसनी का वातावरण पैदा हो गया। स्त्रियाँ मुंह पर हाथ रख-रख कर आश्चर्य में डूबी जा रही थीं। बूढ़े अपने अतीत को साक्षी बना कहने लगे, कि इस तरह के साधु-महात्मा हमने तो कभी नहीं देखे। उम्र हो गई। कभी तो दीखते देश-परदेश में कहीं। बच्चे अपने ढंग से कह रहे थे, अपने मन की बात।

मुनि लौट आए। भिक्षापात्र, झोली-के-झोली में रखे रह गये। गुरुदेव से निवेदन किया—'भोजन नहीं मिला।'

मुनिमना ने साथी मुनियों की मनःस्थिति को पढ़ा। बोले—"केसरीसिंह ! तुम चलो मेरे साथ। मुनियों को आहार मिले, आज तीसरा दिन है। हर रोज लम्बी-लम्बी यात्रा करनी होती है। भोजन का प्रबन्ध होना ही चाहिए। श्री केसरीसिंह जी म० तैयार हो गए। पूरे गाँव से अति कठिनता पूर्वक तीन ज्वार की रोटियां मिलीं। मिल गईं किसी तरह ? तीन रोटी थके हुए एक बटोही के लिए भी काफ़ी नहीं होतीं। इसपर १६ साधुओं की जमात। किसी भी साधु की दाढ़ में उलझ कर रह जाने के लिए ही रोटी काफी हो सकती थीं।

\+ + +

पद-यात्रा ! लम्बा सफ़र ! सफ़र में भिक्षा कभी मिलती, कभी न मिलती। पर सफ़र भिक्षा मिले या न मिले, इससे तो खत्म नहीं

होता। सफ़र तो तय करने से ही चुकता है। तीसरे दिन की भिक्षा में उन्हें ज्वार की रूखी रोटी मिली। रोटी संख्या में थीं तीन ; मुनि थे सोलह। भूख भी तीन दिन की। तीन रोटी को १६ मुनियों मे कैसे वितरित किया जाये ? कौन खाए और कौन भूखा रहे ? मुनियों ने तुरन्त निर्णय किया—श्री मायाराम जी म० का जीवन हम अन्य सभी मुनियों से बढ़कर है। हम से उनके जीवन का मूल्य अधिक है। मुनियों के लिए भी और समाज के लिए भी। अतः तीन रोटी का आहार महाराज श्री करेंगे, हम नहीं।" मुनियों का एक ओर यह निर्णय, दूसरी ओर सफ़र !

+ + +

श्री मायाराम जी म० के मानस में न जाने क्या भाव जन्मे, भरे और जीए ? उन्होंने मुनियों से कहा—"आओ ! सभी मुनि आहार के लिये बैठो। अपनी-अपनी भूख मुझे बताएं। किसको कितना आहार चाहिए ?" मुनियों ने तो श्री मायाराम जी म० का जीवन अपने और समाज के लिए महत्त्वपूर्ण मानकर, तीसरे दिन भी उपवासी रहने को सोचा था किन्तु मुनिमना का आदेश पाकर साश्चर्य मुनियों को आना, बैठना पड़ा। पर कौन क्या कहता, अपनी-अपनी भूख मापकर ? श्री मायाराम जी म० ने स्वयं ही १६ मुनियों को पूरा-पूरा आहार बांट दिया। भिक्षापात्र पर अब भी उनकी चादर का छोर ढका हुआ था। श्री केसरीसिंह जी म० चुप रहने वालों में से न थे। उन्होंने कहा—"पूरे गांव से रोटी तो कुल तीन आई थीं और आपने सभी मुनियों को पूरा-पूरा आहार कहाँ से, कैसे दे दिया ?" उन्होंने श्री मायाराम जी म० की चादर से ढके पात्र पर से चादर खींच ली। देखा तो भिक्षा में आई तीन रोटी अब भी रखी हुई थीं।

"यह सब कैसे हो गया ?"

"हो गया, जैसे भी हो गया। आहार कर लिया न ? आराम करो। लम्बा सफ़र अभी तय करना है।"—श्री मायाराम जी म० ने केसरीसिंह जी के तर्क के तूफ़ान को रोकते हुए कहा।

श्री केसरी सिंह जी म० ने मन ही मन में कहा—गांव से रोटी तो मुश्किल से तीन मिली थीं। पानी भी न जाने कैसे मिल गया ? नहाने बैठे उस व्यक्ति से श्री मायाराम जी म० ने यही तो कहा था,

कि हम साधु गर्म पानी ही पीते हैं। यदि तुम्हें नहाने में कमी न पड़ती हो तो कुछ पानी हमें दे दो और तभी उसने कहा था, "ले लो, पानी तो अभी रखा हुआ है।"

श्री केसरीसिंह जी म० ने इस मनोमन्थन के बाद श्रद्धेय मुनि-प्रवर से कहा—"आपने कहा था—कि सफर लम्बा है। आराम के बाद आगे चलना है। अब आराम तो हो चुका है। विहार के लिए क्या आज्ञा है?"

श्री मायाराम जी म० ने अपने अन्तर में न जाने क्या सोचा, विचारा? बोले—"आज आगे नहीं जाना है। आज रात यहीं रहेंगे"।

+ + +

शाम हुई। धीरे-धीरे रात घिरने लगी। रात्रि में उन्होंने बिना श्रोताओं के ही गाना शुरू किया। श्रद्धेय श्री गाने लगे अन्य मुनि श्रोता थे। उनका स्वर माधुर्य रात्रि की नीरवता में जैसे ही समाया, तो आस-पास चुप बैठे, हुक्का पीते और गप्पे हाँकते किसान बरबस तख्तलवासी मुनियों के पास एक-एक कर, चींटियों की पंक्ति की तरह आने लगे। देखते ही देखते अच्छे खासे लोगों की भीड़ जमा हो गयी। उन्होंने उपदेश सुनाया। मुनि-चर्या बताई। वे प्रभावित हुए। साथ ही, दिन में पूरे गाँव के लोगों ने उनके प्रति जो चोर, डाकू आदि होने का जिन-जिन मिथ्या धारणाओं का अधेरा दिमाग में ठूँसा हुआ था, वह सब निकल गया। जी भरकर पश्चात्ताप भी किया। अगले दिन के लिये ठहरने की प्रार्थना की।

+ + +

ऐसे थे—मुनि मायाराम जी म०। उनके मन के दर्पण में न जाने कैसा बिम्ब अङ्कित होता था? सहसा यात्रा स्थगित करने का मुनियों को आदेश दे दिया और रात में खुदबखुद गाने लगे। उनके वाद्ययंत्र रहित गाने में जो मिठास था, वह अनचाहे लोगों को भी उन तक बुला लाने में समर्थ था।

श्री मायाराम जी म० ने अगले दिन भी यात्रा स्थगित रखने का अपने मुनियों को आदेश दे दिया था।

28

पारस परसि...

मुनि जब मुनित्व स्वीकृत करता है, तब उसे अन्तर्हृदय में एक क्रान्ति करनी होती है। कुछ बदलना होता है। उसकी यह क्रान्ति, परिवर्तन उसे जनवन्द्यता के सिंहासन पर आरूढ करते हैं। तो वह क्रान्ति क्या है ? मुनि जब मुनि हुआ, तब उसने समस्त परिबन्धनों को तोड़ दिया। भेद की रेखा को सदा के लिये मिटा दिया। अब वह अखण्ड हो गया, विभु हो गया। अपना-पराया-जैसे कोई भेद, दुराव उसके मानस में नही रहा। सब ही उसके अपने हो गये। और वह भी सब का अपना हो गया। इसी लिये वह किसी वर्ग-विशेष से बन्ध कर नही जीता। उसके तन, मन, वाचा से अहर्निश आत्मीयता का निर्झर सब के लिये बहता रहता है।

\+ \+ \+

महामना मुनि मायाराम जी म० का एक बार हरियाणा प्रदेश के एक ग्राम—पिनाना में पदार्पण हुआ। वहाँ जैनों के घर पर्याप्त थे। लेकिन मुनि तो सब का श्रद्धार्ह है। इस लिये जब प्रवचन होता, तो सभी ग्रामीण उमंगित, उल्लसित मन से आते, सुनते और मुनिमना से अन्तर्दृष्टि प्राप्त करते।

गाँव में एक नम्बरदार था। वह बड़ा उग्र साम्प्रदायिक था। बेचारा इसी अन्धेरे में घुटा-घिरा जी रहा था। सन्तों से उसे घृणा

थी। सत्संग से विद्वेष था। बस अपने में ही खोया-सिमटा रहता। ग्रामवासी उसे कभी मुनि-दर्शन व प्रवचन-श्रवण-हेतु कहते, तो वह इसका बुरा मानता।

एक बार संयोग ऐसा घटा कि रात्रि में मुनिमना का प्रवचन हो रहा था। नम्बरदार पडौस के घर में कार्यवश आया। उसके कानों में प्रवचन के शब्द पडे। महाश्रमण बता रहे थे—"मानव केवल अपने लिये नही है। तुम कृपण-हृदयों के द्वार तो खोलो! तुम्हारा कुछ घटेगा नही। अपितु तुम्हें मिलेगा। निश्चित मिलेगा। भीतर की घुटन, अन्धकार बाहर निकल जायेंगे और उसके बदले में तुम पाओगे—हवा में घुली सुखद सुगन्ध! प्रकाश की किरणे तुम्हें आलोकित करेंगी। तुम देखोगे—हर कोई तुम्हारे लिये है। तुम्हें केवल इतना ही करना है, पहले तुम दूसरों के लिये बन जाओ! दूसरों को हृदय मे पहले तुम स्थान दो, सम्मान दो। सारा जगत् तुम्हे बन्धुत्व के स्नेह से पुकार उठेगा।"

+ + +

नम्बरदार सुनता चला गया। मृगतृष्णा-सा भटका उसका मन पीता गया, महाश्रमण के अमृत-रस वचन को। प्रवचन समाप्त हुआ, तो कुछ चर्चा शुरू हुई। विविधानेक व्यक्तियो ने अपने मन की गाठे खोल-खोल कर शङ्काये की। महाश्रमण से समाधान लेते रहे। नम्बरदार ने भी मन की परते हटायी। अनेक प्रश्न पूछे। महाश्रमण के समाधान से वह इतना प्रभावित हुआ, विभोर बना बोला—मैं तो अन्धेरे में ही जीता रहा। मुझे नही ज्ञात था, कि मुनि इतने महान् होते हैं। उसने महाराज श्री को भोजन-हेतु निमन्त्रित किया। निरपेक्ष भिक्षु ने उसको जैनसाध्वाचार बताते हुए कहा—"मुनि किसी का निमन्त्रण स्वीकृत नही करते। रात्रि को कभी किसी प्रकार का खाद्य, पेय अथवा औषध का भी प्रयोग नही करते। परिस्थिति कितनी भी जटिल हो, वे उस समय हिमालय-सदृश अकम्प बने रहते हैं। दिन में भी यदि कोई उनके लिये भोजन बनाये, अथवा खरीद कर लाये तो नहीं लेते। गृहस्थों ने अपने लिये जो भोजन बनाया है, वह यदि विधि-सम्मत हुआ, अर्थात्

कच्चा पानी, अग्नि, हरित-वनस्पति आदि से संस्पर्शित न हो तो, भिक्षा-द्वारा उसे लेते हैं।"

नम्बरदार सब सुन समझकर घर लौट गया। प्रातः उसके घर में दूध गर्म हुआ, तो उसने पत्नी से कहा—"मैं मुनियों को प्रार्थना करने जा रहा हूँ। तुम इस दूध के बर्तन को कपास के ऊपर रख देना। वह साफ़ शुद्ध स्थान है। आयेंगे तो यहाँ से ले लेंगे।"

मुनि उसकी प्रार्थना पर घर आये। उसने दूध का बर्तन कपास पर से उतारा और मुनियों को देना चाहा। मुनियों ने नकारात्मक सङ्केत करते हुए कहा—"यहाँ से तो हम ग्रहण नही कर सकते। यह मुनि-मर्यादानुकूल नहीं है।" मुनि चले गये, नम्बरदार निराश हुआ सोचता रहा—मैंने तो यही सोचकर दूध को कपास के ऊपर रखवाया था, कि इन मुनियों के नियम-व्रत बहुत क्लिष्ट होते हैं। यह स्थान उपयुक्त रहेगा, किन्तु उन्होंने तो यहाँ से भी ग्रहण न किया ? अब क्या हो ?" समुद्र के ज्वार-सा उफ़नता नम्बरदार का श्रद्धाशील मन इतने में शान्त कैसे होता ? उसने बर्तन पीछे की गली से एक अन्य घर में भिजवादिया, तथा कहा—यह सन्तों को दे देना। मुनि उस घर पहुंचे। उन्होंने उस बर्तन को पहचान कर लेने से पुनः इन्कार कर दिया। इस भाँति नम्बरदार ने सात घरों में वह दूध का बर्तन रखवाया तथा चाहा, कि मुनि ले लें। परन्तु मुनियों ने कहीं से ग्रहण न किया।

अन्ततः मुनिश्रेष्ठ श्री मायाराम जी म० के चरणों में वह पहुंचा और अपने भावुक मन की श्रद्धा को व्यक्त कर, दूध न लेने का कारण पूछा। प्रशान्तमना मुनि ने उसका समाधान किया, तब वह सन्तुष्ट हुआ। पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने हमें बताया। जो व्यक्ति कभी मुनियों के समीप न आता था, उनकी वाणी न सुनता था, सदा निन्दा-तत्पर रहा करता था, वह प्रशान्त-सागर श्री मायाराम जी म० के सम्पर्क से इतना श्रद्धाभिभूत बना, कि अन्य ग्राम-वासियों को घर-घर जा कर उन्हें मुनि-दर्शन व प्रवचन हेतु सम्प्रेरित करने लगा। पिनाना ग्राम में जब-कभी मुनिजनों का आगमन होता, तो नम्बरदार स्वयं पांच-पांच मील

उनके सामने नंगे पाँव जाता और उन्हें श्रद्धा-पूर्वक ग्राम में लाकर ठहराता ।

+ + +

अन्त में हम कहें—श्री मायाराम जी म० ने अपने जीवन-काल में कभी व्यक्ति-पूजक उपासक नहीं बनाये । उन्होंने ऐसे धर्मोपासक श्रावक निर्मित किये, जो समभावी, शास्त्रज्ञ, राग-द्वेष से रहित गुणानुरागी थे ।

29

मुनि की लोकोत्तर साधना

कभी-कभी साधना का काम्य प्राप्त करने में क्षणभर का समय ही बहुत होता है। समय की इस बारीक रेखा में से भी समय बचा रहता है और साधक जाग जाता है। कभी-कभी हजारों वर्ष लग जाते हैं मन के अन्धकार को मिटाने में। फिर भी नहीं मिट पाता, मन का घना अंधेरा।

मुनि मायाराम जी उपदेश दे रहे थे। न जाने कब किस क्षण में जागने वाले जाग गए। न जागने वाले वर्षों सामायिक के लिए आसन बिछाते-उठाते रहे। समता का पाठोच्चारण करते रहे। अनेक आसन जीर्ण हो गए। 'वासांसि जीर्णानि'—वस्त्र तो जीर्ण होने के लिए ही था। तो जीर्ण हो गया, उसे बदल दो—और उन्होंने अनेकों बार आसन बदले। मालायें घुमाते-घुमाते-अंगुलियों के पर्व घिसने लगे—तो घिसते ही चले गए। अंत में जब न जागने वाले पूरी तरह घिस चुके, तो उनके संरक्षकों ने भी याद किया—वासांसि जीर्णानि—यह सब कुछ तो वस्त्र बदलने की तरह होना ही था। अब इसे ईंधन की भेंट चढ़ा दिया जाए।

+ + +

लोकोत्तर साधना के अटल राही मुनि को, लोगों से न कुछ पाना होता है, न जगत् से किसी तरह की अपेक्षा रहती है। फिर भी उसका लक्ष्य 'स्व-पर' साधक होता है। इसीलिए वह संसारस्थ जनमानस को आध्यात्मिक आनन्द के रहस्यों से अवगत कराता

हुआ चलना चाहता है। यह सब मुनि के लिए इसलिए आवश्यक है, कि उसने समाज में आँखे खोली हैं—समाज में उसने जीवन प्रारम्भ किया है। उसने समाज को भोगा है। यह कारण है, वह समाज से अपने को उपकृत मानता है। यह जरूरी भी है, क्योंकि यह नैतिक चिन्तन का प्रथम चरणन्यास है।

बस, यही कारण है—सामाजिको को वह यम, नियम, त्याग, वैराग्य के माध्यम से, जन-जन में 'आत्मा ही परमात्मा है' की सूनी पडी बाती में ज्ञान की ज्योति जलाकर उसके मानस को आलोकित करता रहता है।

सत्य यह है, कि मुनि का योग में जैसे-जैसे प्रवेश होता है, वैसे-वैसे उसे अनुभव होता है, कि सामाजिकों के ऋण से मुक्त होता चलूं। अगर सामाजिकों के ऋण का भार मन की किसी परत पर जमा रहेगा, तो समता-मूलक योग-जनित आनन्द में तादात्म्य स्थापित नही हो पाएगा। इसी दायित्ववश उसने धर्मप्रवचन के माध्यम से जनचेतना को जागृत करते रहने का सामाजिक व सांस्कृतिक व्रत स्वीकृत किया। उसके लिए यह व्रत अनिवार्य बन गया।

\+ \+ \+

अमृतयोगी मुनि श्री मायाराम जी म० से कुछ लोगो ने प्रश्न किया—"देवी-देवताओं के प्रति अन्धविश्वास ने हमारी बुद्धि पर ताला जड दिया है। किसी युग में पुरोहितवाद हमारी बौद्धिक शक्ति का नियन्ता बन चुका था। जब बौद्धिक चेतना का सामूहिक आक्रमण हुआ, तो पुरोहितवाद का गढ़ ढह गया। उनकी ठेकेदारी खत्म हुई। दूसरे शब्दो में उनकी तानाशाही धराशायी हो गई। हमारी मान्यता है, कि कालान्तर में वही पुरोहितवाद देवीदेवताओ की पूजा-प्रतिष्ठा का परिधान पहन कर जी उठा है।"

"हमारे इस विश्वास को आप प्रत्यक्ष प्रमाण से तोड़ सकते हों, तो जरूर तोड़िए। हमारी आस्था को जीवन मिलेगा। हम भी देवी-देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार करेंगे। भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित चतुर्गतिमय ससार को मानेंगे।"

वकीलों के एक समूह ने महामुनि से उक्त सचोट प्रश्न किया था।

'आपामार' जगत् में रहने वाले मुनि को क्या जरूरत है, कि वह किसी के विश्वास को तोड़े या जोड़े ? मिथ्या धारणाओं का कोई पहाड़ उठाए फिरे तो निरपेक्ष योगी को इस से क्या फ़र्क पड सकता था ?

जनवन्द्य मुनि श्री मायाराम जी म० अपने युग के यौगिक शक्ति के जीवंत प्रतीक थे। उन्होंने मन में तय किया—"यह वर्ग समाज का बौद्धिक प्रतिनिधि-वर्ग है। इसका समाधान करना जरूरी है।" उन्होंने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया। केवल यह कहा कि कल प्रवचन में आ जाना। समाधान का सिरा मिल जाए तो पकड़ लेना, न मिले तो अपने विश्वास को मजबूती से जकड़ लेना।

नियमत: प्रवचन क्रम चलता था। जिज्ञासु लोग प्रवचन-श्रवण के लिए जमा हुए, वकील समूह भी आया। वह सबसे आगे बैठा। मुनि की सभा छोटे-बड़े की भेद-रेखा से मुक्त होती है। जातिगत भेदभाव का रेखाङ्कन होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वकील-समूह आगे बैठा किसी के मन में कोई असमंजस या आश्चर्य नहीं हुआ।

प्रवचन प्रारम्भ हुआ। तीर्थङ्करों के अष्ट-प्रातिहार्य की महामुनि ने तार्किक व्याख्या प्रस्तुत की। तीर्थङ्कर के समवसरण की व्याख्या के बाद देवी-देवताओं के अस्तित्व को साकार करना चाहते थे, कि तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी।

वकील-समूह प्रवचन सभा से उठकर ऐसे भागा, जैसे कमरे में बंद आदमी आग की लपटों से घिर गया हो। उन्होंने आबाल-वृद्ध की परवाह न की। महिला और पुरुषों का भेद जाना ही नहीं। बस भागते ही बने।

सभा में उपस्थित सभी लोगों ने एक साथ अनुभव किया। सभ्यता के दावेदार ये वकील लोग कितने असभ्य हैं। सैकड़ों श्रद्धालु लोगों से आगे बैठे। प्रवचन चल रहा है और बीच में से उठकर ऐसे भागे जैसे आग की लपटों से घिर गए हों। सब का मन कौतूहल से भर गया।

\+ \+ \+

प्रवचन की पूर्ति हो चुकी थी। सब लोग अपने-अपने कार्य पर

जा चुके थे। वकील समूह आया। मुनि श्री के चरण पकड़कर बैठ गया। कहा—"महामुनि, आप समुद्र हैं। आपका ज्ञान, आपकी माया अपार है। आज के बाद कभी हमें देवी-देवताओं के सम्बन्ध में सन्देह नहीं हो सकता।"

"प्रवचन-सभा से हम भागे। उस समय हमारी बुद्धि पराजित हो चुकी थी। तर्क-शक्ति जड़ बन गई थी। भय ने हमारे शकित मन को जकड़ लिया था। विवेक नष्ट हो चुका था। अब हम होश में है। जब आप प्रवचन कर रहे थे, तब हमने देखा—आपके प्रवचन-मच के नीचे, केश-राशि-मण्डित सुनहरी अयाल वाला विशाल भयङ्कर केशरी, सिंह लम्बा पसरा बैठा था। उसे देखकर हम डरे और भाग छूटे। तब हमें कुछ भी न सूझ पड़ा। अब हमने विचार-विमर्श के बाद यह पाया, कि देवी-देवता आपके सकेत पर हम-जैसे लोगों को परिबोध देने के लिए आज्ञाकारी सेवक की तरह उपस्थित रहते है।"

\+ \+ \+

योगी के प्रवचन करते, श्रोताओं के प्रवचन सुनते उपर्युक्त जो कुछ घटा, उसे आप हम क्या कहेगे? कहिए, जो कुछ कहना चाहें। पर १९ वी शती में भारत की धर्म-धरती पर आए, ज्योतिपुंज मुनि मायाराम जी के व्यक्तित्व की यह रेखा हमें बता रही है, कि चमत्कार तो उनके जीवन में साधना-द्वारा उपलब्ध धूलि के पहाड की तरह सहज था। किन्तु उसे दिखाना किसी को रिझाने या आकर्षित करने के लिए तो था नही। जो था सहज था। जब दीख गया, दीख गया। न दीखा-न दीखा।

लोकोत्तर साधना के साधक मुनि मायाराम जी को चमत्कार दिखाकर वकीलों को रिझाना नही था। वे निस्संगभाव से मन की निरहङ्कार-कन्दरा में से कहते जा रहे थे। देवी-देवता को कहना चाहते थे। वकील भाग छूटे। दूसरे सभी लोगों ने सुना होगा? पर कभी-कभी हज़ारों वर्ष के अन्धकार को मिटाने के लिए एक क्षण ही पर्याप्त होता है। किसी-किसी को इसी क्षण को पाने के लिए हज़ारों वर्ष तैयारी करते-करते ही गुज़र जाते हैं।

30

साधना के भेद :
स्तुति और समाधि

स्तुति का अर्थ है—वाणी।

समाधि का अर्थ है—मौन।

समाधि साधक की खुशी है—आनंद है।

स्तुति अर्थात् आनंद को शब्दों में पिरोना।

दूसरे शब्दों में इसे यूं भी समझें, कि स्तुति आनद की भाषा है। एक तरह से और कहे तो समाधि अहोभाग्य का प्रकटीकरण है।

समाधि केवल सुख है, आनंद है।

स्तुति सुख और आनंद की अभिव्यक्ति है।

समाधि आत्मा का परमात्मा में तन्मय हो जाने की अवस्था है।

खुशी को बखेरना, लुटाना, प्रकट कर देना, कह देना या अहोभाग्य से भर जाना स्तुति है।

समाधि 'कहने' का निषेध है।

स्तुति 'सहने' का निषेध है।

—यह है, स्तुति और समाधि का एक-एक पक्ष। इसके साथ

ही एक बात को और मन में स्थिर कर लीजिए। स्तुति परमात्मा की अनुभूति को शब्दों में बांधना है।

अब दूसरे पक्षों की ओर उद्ग्रीव हों।

समाधि का—यह अर्थ जान लिया, कि खुशियों से भर जाओ। तो समाधि का कोई एक क्षण आत्मा पर से बीता। यह क्षण ठहरने लगे, आनंद से भरते-भरते पात्र से बहने लगे, तो स्तुति बन जाता है। वे क्षण कभी-कभी संगीत बन कर फूट पड़ते हैं। इसी से साधक जाना जाता है। पर समाधि साधक को जगत् से अपरिचित रखती है। संगीत परिचय करता है।

चुप रहने का नाम समाधि है। मुखर होने का नाम संगीत है।

पाठक चुनना चाहेगा अच्छा कहाँ है ? श्रेष्ठता किसमें है ?

\+ \+ \+

विराम समाधि है, प्रवाह स्तुति है। तुम्हें क्या चाहिए, विराम या प्रवाह ? विराम—इतना कि एक तरंग भी न उठे। प्रवाह में गति होती है—इतनी कि एक-एक क्षण मन-मयूर नृत्य से खाली न रहे।

पर्वत-शिखरों से धारा बही—कि बस, बहती ही चली जाएगी। रुकेगी नही। धारा का एक-एक कण क्षण-क्षण सूर्य किरणें सुखा रही है। धारा का हर कण खो रहा है, लुप्त हो रहा है, आकाश में समा रहा है।

समाधि का विराम-रहित ताल है, पर वह भी सूर्य की तेजस्वी किरणों के स्पर्श से अछूता नहीं है। वह भी किरणों के मार्ग से आकाश में खो जाता है।

पर्वत के उच्च शिखर से बही हर बूंद, कण-कण कर समाहित हो गई—आकाश में। उर्मि-रहित ताल का कण-कण हर क्षण आकाश में चला जाता है। तुम्हें क्या इष्ट है ? स्तुति में विभोर होना या समाधि में खो जाना ?

\+ \+ \+

क्या आपने कभी किसी समाधिस्थ योगी को देखा है ? नहीं देखा

होगा—उस में चांचल्य-जल्दबाजी या कहीं भागने का भाव। सच यह है, कि दीख पड़ने या पकड़ पाने वाला भाव उस में नहीं मिलेगा। यही समाधि की अवस्था है। यही समाधि का सुख है।

भजन करने वाला, गाने वाला, स्तुति करने वाला—जब हर्ष से भर जाता है तो उसका मन नाच उठता है। गाने लगता है। मुह से स्तुति करता है—वह अपने में समा नही पाता है, इसीलिए गाता है और वह दूसरे लोगों से भी कहता है। उसका अंग-अंग थिरक उठता है। वह चाहता है, वह कहता है—सभी नाचो सभी गाओ।

चैतन्य महाप्रभु ने भजन गाये। मीरा ने इसी दूसरी अवस्था में अपने को जीया। मीरा ने खुद कहा—'पग घूंघरु बांध मीरा नाची रे।' जैनों के आनदघन, बनारसीदास, हरजसराय, आदि कवियों ने परमात्मभाव की खुशी को गाया-बखेरा, लुटाना चाहा—इसीलिए अनेकानेक पद गाए—रचे। सबको सुनाए, सबसे कहा तुम भी गाओ और गाओ।

बहाव को भूलिए मत। पर्वत से बहने वाली धारा अंत में आकाश में विलीन हो जाती है। उर्मि-रहित सरोवर, स्पदन-रहित ताल भी आकाश में विलीन हो जाता है। एकदम इसी तरह प्रार्थी भी पूर्ण हो जाता है। गायक भी पूर्ण हो जाता है। तब दोनो विलीन हो जाते है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप बन जाते है। इसे यूं भी कहे—आत्मा अनावृत हो जाता है। कर्म का आवरण हटा, कि आत्मा अनावृत हुआ। जहाँ यह हुआ, कि ऋषभ, महावीर और बुद्ध जैसा प्रवाह-रहित विराम आया। और तब ही न पकड़ पाने, न जान पाने वाला स्वरूप मूर्तिवत् स्थिर हो जाता है।

\+ \+ \+

समाधि का अर्थ मौन क्यों है ?

स्तुति का अर्थ मुखर क्यों है ?

तुम समाधि में लीन हो जाओ तो दूसरा अभिन्न भी यह न जान पाए कि तुम परमात्मा को चीन्ह रहे हो। सोते से चुप-चाप उठो और समाधि में खो जाओ। परमात्मभाव प्रकट कर लोगे। यदि

अन्य किसी को किञ्चित् भी ज्ञात हो गया तो तुम्हारी समाधि स्तुति बन जाएगी, संगीत बन जाएगी। समाधि न रह पाएगी। और यदि तुमने स्वयं उसे दिखाना चाहा, तो वह प्रदर्शन बन जायेगी। तुम में अहंकार आ जाएगा अहंकार आया, कि सब कुछ बिखर जाएगा, नष्ट हो जाएगा।

संगीत मुखर इसलिए है, कि तुम सहन नहीं कर पा रहे हो। कहने के, प्रकट करने के, दिखा देने के कगार पर पहुँच जाते हो। इसी लिए परमात्मभाव को खुशी में गाने लगते हो। इसलिए वह मुखर है। समाधि में प्रतिबन्ध है, गाने में नहीं।

इस गाने, कहने और इस प्रकट करने में जब खो जाते हो, भूल जाते हो अहंकार को। तब तुम्हारी वह साधना 'मुखर संगीत' हो परमात्मभाव में खो जाती है। तुम भूल जाते हो, कि मैं गा रहा हूँ। तुम भूल जाते हो, कि मैं कुछ कह रहा हूँ। यह भी भूल जाते हो, कि लोग मेरे साथ गा रहे है, लोग मुझे साधक मान रहे हैं, तो बस वही स्तुति है। इस मे खोना ही पाना है। इस तरह भले मुखर हो जाओ, कोई हानि नही। यह 'कहना' ही संसार को अदर से निकालना हो जाता है—बोलो तुम्हें क्या इष्ट है? प्रार्थना में खो जाना या समाधि में पा जाना।

\+ + +

मुनि मायाराम जी को कोकिल-कंठ या पजाब की कोयल कहा जाता था। उनके स्वर में माधुर्य था। पुकार थी। हम कहना चाहते हैं—योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने हमें बताया, कि उनका संगीत सच्चे अर्थों में उपासना थी। परमात्म-भाव की प्राप्ति का सुख ही सच्चे अर्थों में वे गाते थे। उनका संगीत शब्दों को नही गाता था, वे जब-जब गाने को उत्सुक होते, तो हृदय में समाई, हृदय में भरी, खुशी को, आत्म-सुख को उलीच-उलीच कर जन-जन को उससे भर दिया करते थे। उनके सगील से जागने वाले, वाचा ज्ञानी नहीं होते थे। आत्मा की अन्तर्ध्वनि को, उसकी आहट को सुन सकते थे—मुनि मायाराम जी का मधुर सगीत सुननेवाले।

\+ + +

समाधि में आनन्द है ।

स्तुति में मस्ती है ।

—दोनो का एक पक्ष और है । उसे भी समझकर आगे चलें ।

अगर भीतर रहना है—तो चुप साधो । मौन बन जाओ । शैलेशी अवस्था का अवतरण हो जाएगा । अगर प्रकट होना चाहते हो, प्रकट करना चाहते हो तो संगीत में डूबो । जो पाया है, उसे दूसरों को बाँटना चाहते हो, तो स्तुति करो । जो मिला है, 'उसको खूब मिला', कहकर संगीत की मस्ती मे खो जाओ ।

जितनी देर गाते हो, जितनी देर उसे भजते हो, उतनी देर तो तुम सब कुछ भूल जाते हो- -मात्र 'वही' याद रहता है । उतने समय में तो तुम भूल गए संसार को । उतनी देर तो मान बैठे कि सामायिक में व्यतीत हो रहा हूँ । और सचमुच लगता है, कि मै भूल गया घर, परिवार, धन-दौलत । फिर भजन बन्द हुआ, सामायिक का आसन लिपटा, कि दुबारा मे पहुच गए घर, संसार में । ऐसा —यह भजन—ऐसी यह सामायिक 'अपने' को भूलने की कोशिश है । शराबी का नशा उतरा, कि फिर वही तनाव, वही चिन्ता, दुःख, क्रोध-मोह में दु.खी होने लगना । इसी तरह भजन भी तब तक नशा ही है । जब तक बदलाव और भजन के भावो का ठहराव उसमे नही आता । कुछ समय के लिए 'परद्रव्य'--'परभाव' को भूलना और फिर वैसी ही अवस्था में पहुचना—यह भी कोई भजन करने का ढग है । भजन तो परिवर्तन है—जिंदगी का । अगर तुम बदल गए, तो भजन तुम्हे मस्ती का सुख दे जाएगा । फिर तुम जीवन भर बदले ही रहोगे । नशे के बाद की अवस्था स्थिति-वादिता है । होश और जागरण, भजन द्वारा जिंदगी के परिवर्तन की अवस्था है ।"

स्तुति अभिव्यक्ति है । समाधि अनभिव्यक्ति है ।

न गाया हुआ गीत है—समाधि । चित्रकार की कल्पना में उतरा चित्र समाधि है । चित्र बन गया तो समझ लो, संगीत बन गया । स्तुति का उद्‌भव हुआ ।

—चाहे जैसे भजो उसे, चाहे जैसे—जो पाया उसे कृतज्ञता से

कह दो। लक्ष्य एक है, रास्ते अनेक हैं। मंदिर एक है, द्वार अनेक। कहने का ढंग, पाने का रास्ता, पुकारने का तरीका—अलग-अलग है।

+ + +

ये चरित्र-नेता महामुनि स्तुति के बल पर अविवेक के 'ज्वार' में फंसी एक जैन साध्वी को कैसे उबारते है, घटना का अवलोकन करें—

महामुनि जयपुर के 'लाल भवन' में विराजमान थे। सुदूर स्थित एक साध्वी-सघ उत्सुक मन से उनके दर्शनार्थ उमड़ता चला आ रहा था। उमग में धैर्य का बाँध बहुधा टूटते भी देर नही लगती। शायद किसी के मन का बांध टूटता देखा हो आपने? प्रमुखा साध्वी ने जयपुर मे विराजित मुनि शिरोमणि को सन्देश भेजा—"साध्वी-सघ दर्श -हेतु चला आ रहा है, कही ऐसा न हो, कि आप आगे चल पड़ें। हम आ रही है। तब तक आप वही ठहरें।"

·········और तब तक महामना ठहरे रहने का मन बनाकर ठहर गए। साध्वी-सघ धीरे-धीरे बढता हुआ लगभग जयपुर आ लगा। विहार-क्रम अभी जारी था। साध्वी-संघ के स्वागतार्थ जयपुर जैन सघ गया। सघप्रमुख-सहित सभी व्यक्ति यह देखकर स्तंभित हो गए—साध्वियाँ एक साध्वी को—जो अचेत थी—घेरे हुए खड़ी-बैठी थी।

श्रावकों ने पूछा तो परिज्ञात हुआ—साध्वी लघुशका के लिए बैठी थी, तभी से मूर्च्छित है।

कुछ लोगों ने साध्वी को डोली से शहर में ले चलना प्रस्तावित किया। कुछ लोग थे, जो हकीम या वैद्य को लाने को उतावले हुए। पर कुछ व्यक्ति थे, जिन्होंने महामना मुनि श्री मायाराम जी म० को सूचित करना उचित समझा। सूचित करने आये श्रावकों से महामना मुनि ने गम्भीरता पूर्वक सब कुछ सुना। कहा—"मैं स्वय वहाँ चलता हूँ। तभी कोई उपाय सोचना। वे तो उमगित मन से चलती चली आ रही थी?"

महामना पहुंचे घटनास्थल पर। साथ में बहुत से नर-नारी थे।

मुनिप्रवर ने देखा—साध्वी बेहोश हैं। इसलिए स्वाभाविक है सभी का दु:खी होना। घटित घटना को बारीकी से आंका। तभी 'बड़ी साधु वन्दना' का पाठ अपने कोकिल-कण्ठ से सुनाना प्रारम्भ किया।

पाठ पूर्ण हुआ। बेहोश पडी साध्वी ने कहा—"मेरा सलाम क़बूल फरमाइये ! मेरा सलाम क़बूल फरमाइये......... !"

एक जैन साध्वी के मुख से 'सलाम' शब्द सुनकर सब चकित रह गये। पर महामना ने कहा—"आपकी तारीफ ?"

साध्वी ने उत्तर दिया—"मै यहाँ रहता हूँ। मेरी कब्र यहाँ जमीन के नीचे दबी है।"

"यह तो ठीक है। लेकिन तुम इस सती-साध्वी को तकलीफ क्यों दे रहे हो ? क्या तुम यह नही जानते, कि खुदा के बदों को तकलीफ़ देना अच्छी बात नही।

उत्तर "..........।"

"सब के लिए रहम रखने वाली सती-साध्वी को सताने का तुमने गुनाह किया है, क्या यह मुआफ कर देने के काबिल है ?"

साध्वी जी में आविष्ट रुह (प्रेतात्मा) ने शर्मिदगी महसूस की। वह बोली—"इन्होंने मेरी पाक कब्र की जगह खराब कर दी थी।"

"तुम अपनी क़ब्र नीचे ज़मीन में बना रहे हो। उसका कोई निशान बाहर तो दिखाई नही देता। भला तब किसी को कैसे पता चले कि तुम यहाँ रहते हो ?"

उत्तर "..........।"

तो अब सुनो। ये तो सती-साध्वी है। तुम अगर किसी भी रूह को सताओगे, तो यह खुदा के हुक्म की अदूली होगी। खुदा के हुक्म की तामील न करने वाला, दुनिया का सबसे बडा गुनाहगार होता है। क्या तुम खुद के गुनाहों से खौफ़ नही खाते ? तुम्हे अगर खुदा में यकीन है, तो इसी वक्त मुआफी मांग कर चले जाना होगा और जिंदगी भर के लिए किसी को न सताने की क़सम खानी होगी।

क़ब्र की रूह ने अपनी ग़लती का अहसास किया। उसने क्षमा

माँगते हुए कहा—"मैं जाता हूँ, लेकिन अभी-अभी आपने जो सुनाया था उसने मेरे दिल में एक तमन्ना पैदा कर दी है। मैं उसे फिर से सुनना चाहता हूँ।" मुनिमना श्री मायाराम जी म० ने दोबारा से साधु-वन्दना में अपने स्वर का अमृत भरा और सुनाया। वन्दना की अन्तिम गाथा सुनी और वह ऐसे अदृश्य होकर अबोला हो गया, जैसे था ही नहीं। जो साध्वी भूमि पर काष्ठवत् पड़ी थी और 'मेरा सलाम ले लो' कह रही थी, वही साध्वी स्वत: उठ बैठी और 'तिक्खुत्तो' का तीन बारपाठ से महाराज श्री को विधिवत् वन्दना करने लगी।

उपस्थित जन-समूह ने देखा कि—महामना ने साधु-वन्दना की अन्तिम गाथा सुनाई और जैसे-जैसे स्वर मद हुआ, क़ब्र की वह रूह (प्रतात्मा) जो—समुद्री ज्वार की तरह साध्वी को बहा ले जाना चाह रही थी, वह ज्वार अधीन की तरह कहे आदेशानुसार—पलायन कर गई।

महामना ने सदा से कब्र मे रहने वाली—रूह से साध्वी को ऐसे बचा लिया, जैमे ज्वार मे फसे किसी आदमी को किनारा बचा लेता है।

जमीदोज रूह ने एक सती-साध्वी को अपने भँवर-जाल में फमा कर पीडित करना चाहा—उसे मुनि मायाराम जी के संगीत के बल पर उभरते देखा। जो घटा उसे सुना-पढा। इसी प्रसग में हम यह कहना चाहते है—जो सुना है—कि महामना श्री मायाराम जी म० के सगीत से जो घटा, उसे अनेक मुनियो ने अपने प्रवचनो में अनेकानेक बार कहा। सुना भी और सुनाया भी। आज हमने पढा —और सुना।

लेखक स्वय चकित है, कि श्री मायाराम जी म० को कोकिलकंठ या पंजाब की कोयल कहा जाता था। उनमें स्तुति की गहराई थी। साधना का स्तुति के माध्यम से प्रकटीकरण था। स्वर्गस्थ आत्माएं भी जो देव-योनि में विद्यमान हैं और जिनका मनुष्य जाति मे किसी-न-किसी प्रकार का सम्बन्ध या अनुबन्ध है—वे महामुनि के संगीत से भी अनुबन्धित थी।

\+ + +

इसी तरह का एक प्रसग और है जो उस प्रार्थी की व्यक्तित्व-

रेखा को उभारता है और हमें कुछ सोचने को विवश करता है।

विचरण करने वाले मुनि को बहुत जगह जाना होता है। ग्राम, नगर सभी स्थान उस की विहार-भूमि होती हैं। विहार में अनेक तरह के लोगों से उसकी भेट होती है। मान-अपमान के विविध अनुभवो का इसलिए उनके पास कोष एकत्र हो जाता है। इसलिए विहार में जाने वाले मुनियों को गुरु कुछ आदेश, कुछ निषेध कहते है।

तो इसी सन्दर्भ में हम कह रहे है, कि महामना मुनि श्री मायाराम जी म० के शिष्य-प्रशिष्य व अन्य आज्ञानुवर्ती मुनि इतस्तत· विचरण के बाद श्रद्धेय मनि श्री के चरणों में लौटते। महामना तभी उन्हे पुन विचरण के लिए आदेशित करते। कहते—

"मुनियो! नि संग होकर भ्रमण करो। राग का कणमात्र भी मन के किसी कोने में प्रविष्ट मत होने देना, न किसी को पराया समझना। सब पर तुम्हारा अधिकार है। सब तुम्हारे है। तुम सब के हो। पर तुम्हारा स्वय का जीवन कमलवत् रहना चाहिए।" इसी बीच वे यह भी कहते—"परिग्रह अल्प-से-अल्प रखो। पक्षी आकाश में उडान लेता है, तो उसके पास क्या कुछ परिग्रह होता है? जब वह आकाश में उड़ता है, तो परों की रज भी झाड देता है।"

मुनिजन उनकी दृष्टि हृदयङ्गम करते। स्वयं को देखते—अन्दर झाँकते तो वे पाते —"हमारे पास लिखित कागज़ के पन्ने अधिक है। इनका क्या हो ?"

चरित-नेता मनीषी मुनि के समीप जाकर कहते—"ये पन्ने है। इनका हमे परिग्रह महसूस होता है।"

"तुम्हारा मन इन से उपरत हो गया है ?" मनीषी मुनि श्री मायाराम जी म० का प्रश्न होता।

उत्तर में मुनियों की स्वीकारोक्ति होती। महामना उन पन्नों को देखते। कुछ पर गीत अंकित होते, तो कुछ पर पद। वे किसी एक पन्ने को उठाते। अपने मधुर कठ मे एक पद को सुनाते। तभी चमत्कार होता। जो मुनि सुनता और कहता—इन पन्नों पर तो बहुत सुन्दर भावपूर्ण पद है।

चरित-नेता जिस पद या गीत को गाकर सुनाते, वह रसमय हो जाता था। साधु उन गीतों व पदों को रखने के लिए लालायित हो जाते।

चरित-नेता कहते--"सुन्दर-असुन्दर, प्रिय-अप्रिय कुछ नहीं होता। मुनियो! कोई पद, कोई गीत यहाँ तक कि कोई भी शब्द अपने-आप में प्रिय-अप्रिय नहीं होता। क्योंकि गीतों में भाव नहीं होता। भाव गायक में होता है।

अस्तु मुनि जिन्हें उच्छिष्ट या भावहीन बेकार का पद मानते थे, वही उनके कंठ की शाण पर चढ कर चमक उठता।

इसीलिए हम कहना चाहते है—वे कोकिलकंठ थे। गायक थे। प्रार्थी थे।

\+ + +

समाधि- आत्मा के अगाध-अतल समुद्र में डूब जाने का नाम है!

स्तुति- तृप्ति को मुँह से गाकर सुनाने का नाम है।

समाधि—समुद्र है।

स्तुति—ज्वार है।

31

शून्य महल में दियरा बारि ले !

भारत की धर्म-धरती पर १९वीं शती में एक ऐसा महापुरुष विचरण कर रहा था, जिससे सारा अग-जग निनादित और स्पन्दित हो रहा था। उसके साँसों में संयम का संगीत था, प्राणों में मानव-अभ्युदय की अकुलाहट थी। वह जिधर भी निकल जाता, मानव का तन-मन खुशी से चहक उठता।

—वे मुनि मायाराम असीम थे। अमृत थे। न वहाँ जाति का भेद था, न छोटे बड़े की काली रेखा थी। धनी, निर्धन सभी तो उनके लिये समान थे। उन्हें अपने उत्कृष्ट आचार का भी 'अहं' न था। क्योंकि वह मानते थे—'अहं' वह विष है, जिसका संयोग प्राप्त कर पूरा मुनित्व दुर्गन्ध में परिणत हो जाता है।

—उनकी आँखों से प्यार बरसता था। ठीक वैसे ही, जैसे मेघ बरसता है। मेघ जब बरसता है—तो उसमें भेद, दुराव जैसी कोई क्षुद्रता नही होती। कृपणता का निवास उसके अन्तस् में नही होता। मेघ तो बस मेघ है। राजमहल पर भी वह बरसता और निरीह-निर्धन की झोंपड़ी पर भी। यह महामुनि भी मेघवत् था। समानता का सन्देश-वाहक बनकर भारत की पवित्र धरती पर समानता की वृष्टि कर रहा था।

—वे उन्नीसवीं शती के आलोक पुरुष थे। साधुत्व के प्रकाश-स्तम्भ थे। उन्हें भारत के इस छोर से उस छोर तक भारतवासियों

ने सुना था। उल्लसित हृदय से उन्हें श्रद्धार्पण किया था सभी ने।

—वे समता के अहंता-रहित गायक थे। उन्होंने धर्मक्षेत्र एव सामाजिक क्षेत्र में विविधानेक मूढ मान्यताओं का अधेरा मिटाकर श्रमणत्व का जयनाद किया था। सच-सच तो यह है, कि वे श्रमणो के स्वास्थ्य थे।

—वे विचारक थे। पर मात्र विचारक ही नही। मात्र-विचारक के आदर्श विचार, आकाश में विचारों का धूम्र उडाते है। पर यथार्थ की अवनि पर उनकी कोई उपयोगिता नही होती। उन्होने यथार्थ को धरती पर जो कहा, वह बडा अनूठा और अद्‌भुत था। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत है उनके जीवन के कतिपय प्रसग—

जातिवाद :

मुनि श्री मायाराम जी म० ने अपने समय में समाज को, विशेषत· साधुसमुदाय को, कई निर्मल दृष्टियाँ दी थीं। उनमें एक थी —जातिवाद के विध्वस की। उनके समय में जातिवाद के नाम पर जो अन्धविश्वास था, वह बडा ही घातक था। जातियों मे बटा मनुष्य इतर जाति को हेय दृष्टि से देखता था। वह नही जानता था, कि उच्चवर्ण मे जन्मे मनुष्य का मन कितना काला और तुच्छ कही जाने वाली जाति में जन्म लेने वाले मनुष्य का मन कितना उज्ज्वल हो सकता है।

महामना मुनि को जो युग प्राप्त हुआ था वह जातिवाद एव सम्प्रदायवाद का युग था। युग कैसा भी रहे। महापुरुष को इससे क्या ? वह तो सबको उत्थान का प्रशस्त मार्ग दिखाता है। उसे न जाति से कुछ लेना है, न सम्प्रदाय से। देखे—

रोहतक के निकट स्थित कलानौर नगर में हिन्दुओं के साथ-साथ अनेक घर मुसलमानों के भी थे। वे राँघड (राजपूत) मुसलमान धनी, मानी व सेना मे उच्च पदासीन थे। मुनि-श्रेष्ठ श्री मायाराम जी म० का वहाँ पदार्पण हुआ। प्रवचनों के माध्यम से अनेक मुसलमान उनके सम्पर्क में आये तथा उनके उपदेशों से प्रभावित होकर ६०-७० मुसलमानों के घर निरामिष हो गये। और जैन मुनियों के प्रति गहरी आस्था रखने लगे।

श्रद्धेय श्री के प्रयासों के फलस्वरूप हिन्दुओं एवं मुसलमानों का पारस्परिक विजातीय वैमनस्य और संघर्ष भी कम हुआ।

दूसरी एक घटना है—मुनि-शिरोमणि श्री मायाराम जी म० उकलाना मण्डी (हरियाणा) की ओर विहार किये जा रहे थे। मार्ग से हटकर एक गाँव था—सनियाणा। वहाँ केवल बंसीलाल जैन का एक ही घर था। उसे पता चला—श्रद्धेय महाराज श्री गाँव से दो मील दूर पर स्थित नहर के रास्ते से उकलाना की ओर जायेंगे। वह १५-२० किसानों व कुछ मुसलमानों को साथ लेकर नहर पर पहुँचा। महाराज श्री आये तो प्रार्थना की—सनियाणा ग्राम में पधारो। मुनिमना का विचार तो न था पर श्रद्धालुओं की प्रार्थना को सुनकर करुणार्द्र हो बोले—जाना तो आगे है, पर तुम आये हो, तो कुछ समय लगा दूंगा। महाराज श्री गाँव में पधारे। आहार का प्रसंग आया तो बोले—"नहीं। मुझे सन्देह है—तुमने हमारे निमित्त से कुछ किया है। तुम इसे भूल जाओ। मैं तुम्हे जो देना चाहता हूँ, वह लो। मुनि-पुंगव ने वहाँ एक प्रवचन किया। अधिकांश गाँव श्रोता बन उपस्थित था। प्रवचन में मांसाहार के निषेध की बात उन्होंने की। अनेक व्यक्तियों ने शराब, माँस का परित्याग कर दिया। किन्तु मुसलमानों ने त्याग नहीं किया। महाराज श्री ने उन्हें समीप बुलाया तथा इस विषय पर बात की। गाँव में एक मौलवी भी था। उसने काफी देर तक चर्चा की। अन्तत: उसे महाराज श्री की बात स्वीकार करनी पड़ी। मांसाहार के निषेध-परक नियम पर महाराज श्री ने कहा—"मेरे कहने से अथवा लोक-लज्जा वश इसे स्वीकार न करो, और विवाद में विजयी हो जाना अथवा पराजित हो जाना भी कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है। मैं तो हृदय-परिवर्तन की बात करता हूँ। यह तुम्हें मान्य हो तो स्वीकार करो। तब श्रद्धापूर्वक मुसलमानों ने मांसाहार न करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

\+ \+ \+

एक चर्मकार जब उस पुनीत गङ्गा मुनिमना के द्वारा प्रतिबोधित हुआ, तो उसने कहा—मैं भूखा रहकर पीड़ा सह लूंगा पर दूसरे को काँटे जितना भी कष्ट न दूंगा। वह सामायिक की साधना में प्रवृत्त हुआ। सामायिक तो कई लोग कर लेते हैं। उसकी सामा-

यिक का क्रम था—जब जहां सूर्यास्त हो जाये, वहीं सामायिक में बैठ जाना। खेत हो, खलिहान हो, मार्ग हो या वन हो। वृक्ष के नीचे बैठा और सामायिक में तल्लीन हो गया। फिर गांव की तो बात ही क्या है?

जैनों तक पहुंचे हैं, उनके जगाए चर्मकार भक्त। श्री मायाराम जी म० ने उन्हें जैन स्थानकों में बैठने का अधिकार दिया। जैनों को समझाया और बताया, कि धर्म का आराधक व्यक्ति, व्यक्ति की दृष्टि में समान है। उसको हेय नहीं माना जा सकता। तुम सामायिक का व्रत धारण करते हो, तो उस समय समभाव की पवित्रता के उच्च शिखर पर चढ़ने का शुभ संकल्प करते हो। एक चर्मकार भी सामायिक व्रत के द्वारा शुभ संकल्प लेकर उठता है, तो उससे घृणा क्यों और किस आधार पर करते हो? वह धर्म के क्षेत्र में आ गया, तो तुम्हारे द्वारा उसे भ्रातृत्व का सुख मिलना चाहिए। चर्मकार की सामायिक और तुम्हारी सामायिक, क्या पता भावों की दृष्टि किस की सामायिक जीवन को पवित्र कर जाए। सूत के धागे कात कर गुजारे का पैसा पाने वाला पूर्णक श्रावक की सामायिक को सम्राट् श्रेणिक भी खरीद न सका? तुम्हें क्या पता है, चर्मकार किन भावों में भीग कर सामायिक कर रहा है? तुम्हारी सामायिक का आसन उसके आसन से छु कर मैला हो जाए? या उसके आसन को छु कर तुम्हारी सामायिक सार्थक हो जाये—इसकी बारीकी तुम्हारी समझ से बाहर है। तुम चर्मकार से परहेज़ मत करो। वह सामायिक का सच्चा मुनि साबित हो सकता है।

मुनि श्री मायाराम जी म० ने जातिवाद की दीवार को ढहा कर कहा था—"महावीर को भूलकर भारत इतना दुर्बल दरिद्र और दीन बन जाएगा, कि उसे उठाना मुमकिन न रह जायेगा। इस महापुरुष ने समत्व की वसुधा पर मनुष्यता के बीज बोए थे। मनुष्यता की खेती करने वाला भारतीय जातिवाद के व्यसन (अफ़ीम) की खेती क्यों करने लग रहा है?"

प्रान्तवाद :

—पंजाब उनके लिए पंजाब नहीं था।
—हरियाणा उनके लिए हरियाणा नहीं था।

—ग्राम बड़ौदा को भी उन्होंने कभी मोहदृष्टि से नही निहारा था।

—राजस्थान से न उन्हें अत्यधिक नेह था, न इन्द्रप्रस्थ क्षेत्र से उन्हे बेगानापन था।

—न गुजरात उनके मन भाया था, न महाराष्ट्र से विरक्ति थी।

—प्रान्त, प्रदेश और क्षेत्रों की सीमाओं से ऊपर वे असीम और अनन्त थे। सच यह है, कि निष्काम भाव मे वे सबको सबके अभ्युदय का अभिमत्र देते थे। सब प्रान्त, प्रदेश उनके अपने थे। वे सबके थे। सब उनके थे। सबको उन्होने मनुष्यत्व में प्रतिष्ठित करने की अमल दृष्टि मे पुकारा था।

दीपावली संयम की :

सयम एक दीप है।

व्यक्ति एक दीपदान है।

—संयम का अर्थ है, अन्तर का निषेध, अन्तर की विधि। असंयम का अर्थ है, अन्तर की उच्छृखलता, अन्तर की उद्दण्डता।

जब अन्तर मे सयम होता है, तब बाहर के विधि-निषेध निरर्थक हो जाते है। जब अन्तर में असयम होता है, तब बाहर की विधि, बाहर के निषेध भी व्यर्थ हो जाते है। अन्तर का असयम पशुता को जन्म देता है। देखने मे भले ही विधि, विधि दीखते रहे। निषेध, निषेध दीखता रहे। देखने और सुनने में भले ही तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलता रहे साधक, किन्तु सयम की भाषा में वह असंमय के कीचड मे धँसता ही चला जा रहा है।

महामुनीश्वर श्री मायाराम जी म० ने स्वय विशुद्ध सयम का का पालन किया तथा इसी विशुद्ध संयम की समाज में स्थापना की। उन्होने माना—साधु-जीवन बाह्य आराम, सुख-सुविधा-हेतु नही है। संयम-मार्ग में कष्ट बाधाये आयें, तो सहर्ष कठोरता, वीरता से उन्हे स्वीकार करो। सयम साधना को आँच न आने दो। एक प्रसंग द्वारा इसी की चर्चा करते है—

\+ \+ \+

तितिक्षु मुनि मायाराम जी एक बार विहार-क्रम से जीन्द पधारे। दूर से आना हुआ था। मुनि यात्राश्रम से श्रान्त थे। प्यास संत्रास दे रही थी। मुनि उचित रीति से प्रासुक जल लेने हेतु घरों की ओर चले। मुहल्ले में पहुँचे। मुनियों को देखकर एक व्यक्ति ने आवाज देते हुए घर की महिलाओं को सावधान किया—"महाराज आ रहे हैं। ध्यान रखना।" मुनियों ने सुना। मन शङ्कित हुआ। इस सूचना से शुद्ध आचार-सम्पन्न जल कैसे प्राप्त होगा? मुनि लौट आये।

मुनिश्रेष्ठ गुरु-प्रवर से पूर्ण वृत्त निवेदित कर दिया। उन्होंने सुना, तो बोले—'यह उचित नही है। कोई मुनि आहार और जल लेने न जाये। मुनि समत्व-युक्त हो बैठ गये।

लोगो ने देखा—मुनि आहार-हेतु नही जा रहे है। क्या बात है? तथ्य ज्ञात हुआ, तो पुनः आहार की प्रार्थना की। महाराज श्री ने कहा—"तुम श्रावक हो? तुम्हारा कर्तव्य क्या है? साधु के संयम में सहयोग देना अथवा उसे दूषित करना। मुनि के आगमन से पूर्व घरों मे सूचना दी जायेगी तो मुनि-मर्यादा का पालन कैसे होगा? ऐसी स्थिति में मुनि आहारादि ग्रहण नही करेंगे।"

उपस्थित जन-समूह को अपनी भूल का अहसास हुआ साथ ही महाराज श्री के कठोर संयमाचरण का परिज्ञान भी। उस दिन मुनि किसी घर में न जल लेने गये, न आहार लेने। देखा! आपने उनकी सयमीय कठोरता को! यही कारण था, कि श्री मायाराम जी म० जहाँ जिस ओर जाते, वहाँ मुनिवर्ग में परस्पर यह चर्चा होती और गुरु शिष्य को निर्देश देता—देखना! मुनि मायाराम आ रहे है, साधु-मर्यादाओं में सावधान रहना!

प्रस्तुत घटना से एक ओर जहाँ हम मुनिमना के विशुद्ध संयमाचरण का परिबोध करते है, वहां हमें ऐसा भी लग सकता है—वे बडे कठोर रहे होंगे? किन्तु ऐसा न था। वे मृदु, नवनीत से भी मृदु थे। मधु से भी मधुर थे उनके जीवन की अमर घटना—जब उन्होने एक एकाकी विचरण करने वाले मुनि को स्नेह दिया था, बताती है—तुम किसी को हेय मत समझो। अपितु उसे संयम में स्थिर करो।

\+ \+ \+

पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने बताया— एक बार मुनिमना के सामने कुछ मुनिजनों ने कहा—वह मुनि संयम के प्रति सजग नहीं हैं। आप उसे मुनि-सघ से पृथक कर दें। मुनिश्रेष्ठ ने सब सुनकर मुनियों ने कहा—"ग्रात्मा आनादि समय से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। अति कठिनता से इस बेचारे की नाव किनारे के समीप आयी है। तुम इससे सहयोग करो, धक्का देकर वापिस न लौटाग्रो। ऐसा सहयोगात्मक प्रयत्न करो, कि वह संसार-समुद्र से पार हो जाये।"

—साधु और गृहस्थो को उन्होंने संयम से मण्डित किया था। उनके सयम का अभिमत्र आज तक साधु-समाज की प्रतिष्ठा का आधार बना हुआ है।

पद-प्रतिष्ठा, कमल की निष्ठा :

पद और प्रतिष्ठा का विष कितना मधुर होता है ?

अनदेखा पद, अनदेखो प्रतिष्ठा।

परन्तु कितनी आकर्षक, कितनी मोहक !

—जो मनुष्यत्व की हत्या कर देता है, वह पद है।

--जो झूठे अह के पीछे व्यक्ति और समाज का अहित करने मे भी सकोच नही करती, वह प्रतिष्ठा है !

उन्होंने ऐसे पद को न तन लगाया, न मन से चिमटने दिया। उन्होंने तो व्यक्ति और समाज से स्नेह किया था। ग्रतः झूठी प्रतिष्ठा को अपनी साधना का विष मानकर वे पूरी जिन्दगी ऐसे अलिप्त रहे, जैसे पानी में पङ्कज। एक घटना द्वारा देखे—

\+ + +

एक बार मुनियों के एक बड़े समूह ने मिलकर निर्णय किया— "हम ग्रपना ग्रलग-स्वतन्त्र ग्राचार्य बनाएगे। आचार्य किसे बनाया जाए, सबने विचार-परिक्रमा शुरू की ? परिक्रमा पूरी हुई तो एक-मत से निर्णय किया कि श्री मायाराम जी म० को 'आचार्य-पद प्रदान किया जाये।'

श्री मायाराम जी म० के पास प्रस्ताव आया। ग्रमृतयोगी

श्री मायाराम जी म० इसे कब स्वीकार करने वाले थे। उन्होंने मुनियों का निर्णय सुना। फिर कहा—"यह सब नहीं होगा। संघ में फूट नहीं डालनी है।"

मुनियों ने श्री मायाराम जी म० को सुना, समझा और उनकी गम्भीर दृष्टि से समन्वित हुए।

कमलमना चाहते तो स्वयं आचार्य बन सकते थे। परन्तु पद* के मोह से उनका मानस पूरी तरह मुक्त था।

सेवा—परमयोग :

कहा गया—

'सेवा धर्मो योगिनामप्यगम्य:। सेवा-धर्म योगी के लिये भी दुर्गम है। क्यों? सेवा योग से भी कठिन है। कैसे? योगी, योग की साधना करता है—अपने लिये। अर्थात् अपनी कष्ट-निवृत्ति। सेवा करने वाला पहले दूसरे की पीड़ा दूर करता है। वह दूसरे के लिये पहले सोचता है, अपने लिये बाद में। निस्वार्थ बना वह सेवा के पुनीत कर्म को ही योगासन, ध्यान, धारणा, समाधि सब कुछ मानता है। अत: महामना मुनि मायाराम जी ने इसे 'परमयोग' कहा था।

+ + +

महामुनि एक बार हरियाणा प्रदेश में विचरण कर रहे थे। एक जगह वे ठहरे। उनके ठहरने की सूचना पास-पडोस के सभी गाँव-नगरों में पहुँची। जनता दर्शनार्थ एवं धर्म-प्रवचन-हेतु आने लगी।

श्रद्धाधार श्री मायाराम जी म० के कुछ आज्ञानुवर्ती मुनि, जो पृथक् स्थानों पर विचरण कर रहे थे, उन्होंने सुना—श्रद्धेय श्री निकट के नगर में विराजित हैं। मन में उमंग उठी। बहुत दिन हो गये, महाराज श्री के चरणों में पहुंचे हुए। उनका कृपापूर्ण सान्निध्य स्मरण कर मुनियों के मन में ज्वार उठने लगे। निश्चय किया—

* कुछ पुस्तकों में महाराज श्री के नाम से पूर्व पद वाचक 'गणावच्छेदक' शब्द का प्रयोग किया गया है। सत्य यह है—उन्होंने अपने जीवन में कोई भी पद स्वीकृत नहीं किया।

शीघ्र से शीघ्र उनके चरणों में पहुंचे। मुनि चल दिये। रास्ता कुछ अधिक था। वह तो क्रमशः ही पूर्ण होना था। किन्तु मुनियों का मन तो कभी का श्रद्धेय के चरणो में पहुंच चुका था। वे पल भी आये, जब मुनि-जन महाराज श्री के निकट पहुंच गये। मन आस्थाओं में निमग्न था। वन्दन किया। महाराज श्री ने कृपा की अमृतवर्षा की। पूछा—"बहुत शीघ्र पहुंच गये तुम ? मार्ग में ठीक तो रहे ? कोई कष्ट तो नही हुआ ?"

"नही ! सब ठीक रहा। आप की कृपा हो, फिर अमङ्गल क्यों होता ?"

यूं अभी दो-चार बात ही हुई थी, कि महाराज श्री पूछ बैठे--"उन मुनि का स्वास्थ्य कैसा है ?"

"हमें तो पता नही।"—मुनियों ने बताया।

"क्यों ? तुम वहाँ गये नही थे क्या ?"

"नही महाराज ! वहाँ तो हम गये ही नही !"—बस, मन मे उमग थी, सीधे ही चले आये।

बात यह थी—जिस मार्ग से मुनि आये थे, उस मार्ग के समीपस्थ ग्राम में कुछ मुनि स्थित थे। उनमे से एक मुनि रुग्ण हो गये थे। उन रुग्ण मुनि के विषय में मुनिश्रेष्ठ उनमे पूछ रहे थे।

मुनियों ने जब यह कहा—"हम तो वहाँ गये ही नही !" महाराज श्री को आश्चर्य हुआ। उन्होने कहा—"तुम यहाँ दर्शन-हेतु चले आ रहे हो। मैंने तुम से कहा था, कि सेवा का प्रसग आये तो पीछे मत रहना। एक अवसर आया और वह तुमने आज खो दिया। तुम वहाँ उन मुनि की सेवा में जाते रहते, सेवा करते। मेरा मन मोद को प्राप्त होता।"

मुनि—हम यहा आप की सेवा में आये है।

यहाँ तो सेवा का कोई प्रसग नही है। किसकी सेवा करोगे ? अवसर को तो तुमने खो दिया। महामुनि ने कहा।

मुनियों में पश्चात्ताप के भाव जागे।

मुनि-श्रेष्ठ पुनः बोले—"इसका प्रायश्चित्त यही है, तुम जाओ

वहीं। उन रुग्ण मुनि की सेवा करो। श्रद्धा व स्नेह में भर कर जाओ। यदि तुम ऐसा करते हो, वहाँ रहते हुए भी तुम मेरे समीप हो, मैं तुम्हारे समीप हूँ।"

मुनियों ने आदेश स्वीकार किया और सहर्ष लौट चले उसी राह को, रुग्ण मुनि की सेवा के लिये।

श्री मायाराम जी म० ने अपने जीवन में सेवा का उच्चतम आदर्श स्थापित किया। उन्होंने गुरुजनों की स्वयं सेवा की। समीपस्थ कोई मुनि कभी रुग्ण हो जाता—चाहे वह बड़ा होता या छोटा। उसकी सेवा की वे समुचित व्यवस्था करते। अपने स्नेहमय व्यवहार से उसकी रुग्णता को अल्पतम बना देते। दूर-स्थित मुनि के बीमार होने की सूचना पाते, तो तभी स्वयं वहाँ पहुँचते अथवा अपने समीपस्थ मुनियों को वहाँ भजते। उन्होंने कभी नहीं चाहा—मुनि या गृहस्थ उन्हें महत्व दे। उनके समीप बने रहें और रोगी की तरफ़ कोई ध्यान न दे। श्री मायाराम जी महाराज निष्काम थे। निष्कामता की साधना योग है।

स्वाध्याय :

मुनि-वृन्दारक श्री मायाराम जी म० के जीवन का अभिन्न अंग थी—स्वाध्याय। वे बचपन से ही इससे संलग्न थे। यही कारण था—अल्पावस्था में उन्हें पांच आगम मुखाग्र हुए। 'स्वस्य अध्ययनं स्वाध्यायः'। आत्मा का अध्ययन करना, अर्थात् स्वयं को पढ़ना, स्वाध्याय है। मुनिमर्यादा में अहोरात्र के आठ प्रहरों में से दो प्रहर स्वाध्याय के लिये निश्चित किये गये हैं। मुनिमना का प्रयत्न होता—स्वयं इसका आचरण तथा अन्य मुनियों द्वारा भी इसका पालन। कोई मुनि इस स्वाध्याय के समय को नष्ट करता, तो वे उसे जगाते और स्वाध्याय में संलग्न होने के लिये प्रेरित करते। देखें—प्रसंग एक द्वारा—

मुनि-शिरोमणि श्री मायाराम जी म० रोहतक (हरियाणा) में विराजित थे। एक दिन राजस्थान से कोई श्रद्धालु दर्शनार्थ आया। मुनि-वृन्द के दर्शन किये। अपराह्न में वह मुनिमना की चरणोपासना कर रहा था। वे स्वाध्याय में संलग्न थे। अन्य मुनि भी

अपनी-अपनी मुनि-चर्या में व्यस्त थे। आगन्तुक श्रद्धालु एक मुनि के पास बैठ गया। वे सरलमना मुनि थे। उनसे उसकी बातें होने लगीं। वार्तालाप के संदर्भ में उसने बताया—वह काष्ठ-पात्रों का कार्य करता है। वे ही काष्ठ-पात्र, जिन्हें मुनिजन संयमीय-जीवन-निर्वाह-हेतु ग्रहण करते हैं।

उन मुनि ने कुछ जिज्ञासायें व्यक्त कीं। कैसे बनते है पात्र ? इतने गोल-पतले कैसे हो जाते हैं ? इत्यादि ! मुनिमना श्री मायाराम जी म० स्वल्प दूर पर ही विराजित थे। उन्हों ने यह सब सुना ! उनका अन्तर कैसे स्वीकार करता, कि स्वाध्याय के समय को व्यर्थ की चर्चा में नष्ट करे, कोई मुनि ! उन्होंने तत्काल उन मुनि को सम्बोधित किया। निकट बुला कर मधुर वचन में कहा—"क्या कर रहे हो ? पात्रों के विषय में इतनी जानकारी प्राप्त कर—क्या करोगे ? स्वाध्याय का समय है। तुम समय की इस अमूल्य निधि को नष्ट किये जा रहे हो ! अन्य सभी मुनि स्वाध्याय में निमग्न है, और तुम ? एक बात समझो—अवसर पुनः पुन. प्राप्त नही होता। इसलिये आत्म-दर्शन का ससाधन जुटाओ, स्वाध्याय के द्वारा !"

और वे मुनि सिरसा स्वीकृत कर इसे, स्वाध्याय-परायण हो गये।

क्षमा का नाटक कब तक ?

ग़लती की ! क्षमा माँगी।

गाली दी। माफ़ी मांग ली !

—बस हो गई क्षमा की यात्रा पूरी।

ग़लती या गाली का परिमार्जन हो गया—कहने के लिये ऐसा ही कहा जाता है और समाज में इसे स्वीकृत भी किया है। क़दम-क़दम पर छोटी-छोटी भूलें होती हैं और उन ग़लतियों के लिये हम लोगों ने आँगल भाषा का एक वाक्य खूब उदारता-पूर्वक अपना लिया है—'आइ एँम सॉरी'। 'सॉरी' कहा और काम बन गया। अगली ग़लती के लिए मिल गई स्वतन्त्रता।

जैन समाज में तो क्षमा को बहुत महत्त्व मिला है। अन्य समाजों

और धर्मों ने भी इसके महत्त्व को स्वीकृत किया है; परन्तु जैनों के यहाँ तो पूरे वर्ष में एक बार इसका सामूहिक महत्त्व उत्सव के रूप में आयोजित किया जाता है। धर्म-जगत् ने या आध्यात्मिक समूहवर्ग ने इसे संवत्सर या नये वर्ष का प्रारम्भ माना है। इस दिन यह वर्ग सामूहिक-रूप से, सबंधित और असंबंधित सभी लोगों से परस्पर क्षमा-याचना करता है। अधिकांश लोग संवत्सर वर्ष के बाद भी एक मास तक क्षमायाचना के सिलसिले को आकर्षक, 'निमंत्रणपत्र' पर अंकित कर, डाक द्वारा, क्षमा-याचना करने में भी पीछे नहीं रहते।

मुनि मायाराम जी ने इस तरह की क्षमा का कभी समर्थन नहीं किया था। उनका मत था—क्षमा करना या क्षमा लेने का अर्थ है, भविष्य में पुनः त्रुटि न करना।' इसमें उन्हें किञ्चित् भी आस्था नही थी कि क्षमा माँगते रहो और ग़लतियाँ करते रहो। आज क्रोध में भर जाओ और सम्मुखस्थ व्यक्ति को गाली दे-देकर उसके अहं को जगाते रहो। अगले दिन फिर क्षमा का नाटक रचो और कहो, मुझे तुमसे सहानुभूति है। कल मैं क्रोध में भर गया था, पर अब शांति एवं करुणा की व्यासपीठ पर बैठ गया हूँ। आज मुझे क्षमा कर दो, फिर क्रोध को उत्पन्न नहीं होने दूंगा। फिर तुम्हें अपमानित नहीं करूंगा। कल तो मैंने ज़रूर तुम पर क्रोध किया था, पर आज क्रोध खत्म करता हूँ।

इस तरह हो जाता है, क्षमा-याचना का लेन-देन। अगले ही दिन से मुक़दमा फिर शुरू। अगले दिन फिर क्रोध यथावत्। घृणा का लावा वैसा का वैसा ही। इस तरह फिर ग़लती और ग़लतियों का एक साल के लिए पुनः क्रम प्रारम्भ। इस निरर्थक क्षमा को उन्होंने व्यर्थ कहा था। उनका एक ही उद्देश्य था—क्षमा माँग ली तो बस भूलों का क्रम समाप्त हो जाए। कषाय का स्रोत क्षमा के बाद बंद हो जाना चाहिए। क्षमा का नाटक, क्षमा के बाद खत्म हो जाना चाहिए। नाटक, नाटक ही न बना रहे। क्षमा के बाद तो वह जीवन में यथार्थ हो जाना चाहिए।

जीवन्त क्षमा आत्मा को महामिलन के सिंधु तक पहुंचाती है। और नाटकीय क्षमा आत्मा के बिन्दु को ही सुखाती चली जाती है।

शून्य महल में दियरा बारि ले !

आत्मा का शून्य (निराकार) महल !

उसमें ज्ञान का दिया जलाने मुनि चला !

तुम सोचते होंगे, वह भिक्षा में मिट्टी का दिया लाया होगा ? रुई के लिये हाथ पसारा होगा ? तेल के लिये काष्ठ-पात्र को पूंछ, उसमें तेल डलवाया होगा ?

नही । इन सब साधनों से मिट्टी के घरों में दिया जलाया जा सकता है, किन्तु ज्ञान की ज्योति नही जगाई जा सकती ।

मुनि शून्य महल में दिया जलाने चला । वह दिये में तेल और बत्ती डाल कर उसे जला तो सकता है, पर उस दिये को रखेगा कहाँ ? उसकी आत्मा का महल तो 'शून्य' है ।

इसीलिये श्री मायाराम जी म० ने गाया था—"शून्य महल मे दियरा बारि ले ।"

उन्होंने शून्य महल में दिया जलाना चाहा—जलाया । भावों को शब्द दिये । वह संगीत बन गया । उन्होंने जगत् का निरीक्षण किया । भावों को शब्दों में पिरोया और महावीर की भाषा में कहा—

"निकम्मा अट्ठ गुणा" । निष्कर्म हो जाओ । शून्य में खो आओ । ध्यान बन जाओ । "ध्यान, ध्याता, ध्येय माँही कछु भेद न रह्यो" फिर भेद जैसा कोई तत्त्व कहने को रह ही नहीं जाएगा ।

—अक्रिय, मौन निस्तब्ध हो जाओ । जब यह निस्तब्धता आजाएगी तो अनन्त-अनन्त काल से बंधे, तुम कर्मों से मुक्त हो जाओगे । तभी शून्यमहल में ज्ञान का दीपक जुड़ेगा । तभी तुम अक्षर सुख प्राप्त कर सकोगे ।

शोध-प्रसंगों में हमने पाया—उन्होंने कुछ अक्षर गीत रचे थे । अक्षर गीत गाये थे । उन्होंने अक्षरों में अक्षर को लपेट कर अक्षर पद रचे थे । उन्हें खूब गाया । खूब सुनाया । शून्य महल का सन्देश बताया । बहुतों ने सुना । हजारों जागे, प्रेरित हुए । किसी को

काल से बचने की कला मिली। कोई पूरी तरह चैतन्य हुआ; किसी ने संसार में जीने का मन्त्र पाया। पाने वाले थे—जाट, अहीर, माली गूजर, राजपूत, तेली, चर्मकार और मुसलमान।

उन्हें सुनकर जिन्होंने हृदय में धरा, वे जाग गए। कहीं-कहीं तो पूरा गांव का गांव जाग गया। पूरा गाँव उनके कहे का हो गया। पंजाब और हरियाणा प्रान्त में घूम-घूमकर देख लीजिए। पूरा-पूरा गाँव जैनत्व में दीक्षित मिलेगा।

अवदात मुनि मायाराम जी ने कहा था—"जीवन सौभाग्य है। जीवन अलभ्य है। जीवन अनन्त है। ऋषि-मुनियों ने जो पाया, उसे वे निरन्तर गाते-सुनाते आए है—भीतर, काम और जीवन (ऊर्जा) का युद्ध चलता रहता है—जीवन को विजयी बनाओ। जीवन सत्य है। संवेदना है। 'जीवनरस' को नष्ट न करो, संचित होने दो। तुम वह पाओगे, जिसे पाने के बाद कुछ भी पाना शेष न रह जाएगा। पाने की अभीप्सा समाप्त हो जाएगी।"

पाने का कहीं अन्त नही है—"इस पृथ्वी का एक-एक परमाणु तुमने भोगा है। तुम्हारे शरीर का क्षुद्र-से-क्षुद्र छोटे-से-छोटा अंश उन्हीं परमाणुओं से बना है—बनता रहा है।" अतः बाहर में पाने जैसा कुछ रहता ही नही है। अब तो शून्य महल में वह पाना है, जिस के पाने के बाद, पाना अशेष हो जाए। इसीलिये उन्होंने कहा—

शून्य महल में दियरा बारि ले।



32

बड़ौदा में अद्भुत चातुर्मास !

निवेदनों की भीड़ !

सवत् १९६८ का वर्षावास !

घटनाएं और घटनाएं ! !

महामना श्री मायाराम जी म० ने सयमीय जीवन के ३२ वसंत अतीत किये थे। ३३ वे वसंत की होली का अवसर था। मुनि श्री मायाराम जी म० संघीय विधि-निषेधों के अनुसार इस दिन चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान करते थे।

—निवेदनों की भीड़ ! स्थान था बड़ौदा !

महाराज श्री में सुदूर प्रदेशों के लोगों की अनन्य श्रद्धा थी। सभी चाहते थे, उनका वर्षावास हमारे नगर में हो। इसी आशा से राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा बड़ौदा के समीपवर्ती रोहतक, जीन्द, पटियाला, अम्बाला और दिल्ली आदि के अनेक संघ चाहते थे—इस बार का वर्षावास महाराज श्री हमारे यहां करने की कृपा करें।

बडौदा निवासियों ने विभिन्न प्रांत प्रदेशों से आए, संघों की अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवा-व्यवस्था की थी पर साथ ही बड़ौदा वासियों को एक शल्य भी चुभ रहा था—महाराज श्री बड़ौदा में जन्मे,

किन्तु दीक्षित होने के बाद से आज तक यहाँ वर्षावास नहीं किया। अत: बड़ौदा निवासी भी उक्त लोगों की पंक्ति में खड़े हो गए। सभी संघों ने अपने-अपने ढंग से निवेदन किया। निवेदनों की इस भीड़ में बड़ौदा वालों ने अनुभव किया, कि हम पीछे रह रहे हैं। अत एव उन्होंने सरल भाव से सीधी-सादी प्रार्थना रखी—

"महामुनि ! आपने बड़ौदा में जन्म लिया, हमारे लिए यह परम सौभाग्य की बात है। आपने सुदूर प्रदेशों में वर्षावास किए, यह भी हमारे मन को मुकुलित करने के लिए पर्याप्त है। आपका यश, आपकी कीर्ति सभी दिशाओं में व्याप्त हो चुकी है—अनेक प्रदेशों से आए संघ इसका प्रमाण हैं, परन्तु सीधे शब्दों में सीधी-सी बात हम आपके सामने निवेदन के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, कि आपने बड़ौदा में आज तक चातुर्मास नही किया। हमारे निवेदन में कही कमी हो तो बताये ?"

बडौदा संघ का निवेदन सुनकर, महाराज श्री ने कहा—तुम्हारी प्रार्थना तो ठीक है, और मेरे मन में ग्राम-नगरों का कुछ भी भेद नही है, लेकिन एक बात समझो। चातुर्मास धर्म-ध्यान की अभिवृद्धि के लिए होता है। इस विषय में तुम क्या करोगे ? बड़ौदा-निवासियों ने कहा—इसका उत्तर देने के लिये आप हमे कल तक का समय और दे।

अगले दिन पूरे ग्राम में धर्म-उपासना का समायोजन हुआ। वह समायोजन ऐसा बन पडा, कि उसमें सभी छोटे-बड़ों के अतिरिक्त समस्त जाति के लोगों ने भाग लेकर अपनी श्रद्धा का परिचय दिया। बडौदा वालों की इस धर्म-भावना को देखकर महाराज श्री ने चातुर्मास की सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी।

\+ \+ \+

यह वर्षावास संवत् १९६७ का वर्षावास था। जहाँ उनकी देह ने जन्म पाया था। जहाँ की गली-गली उनकी देखी-भाली थी। हर घर उनके लिए परिचित था। हर घर का सदस्य इस महाश्रमण को जानता था। जिन्होंने उन्हें अपनी आँखों से बचपन में देखा था वे, और जिन्होंने सुना था उन सभी ने माना, कि यह महाश्रमण

हमारे अपने घर-गाँव का है।

महाश्रमण श्री मायाराम जी म० का संवत् १९६७ का वह वर्षावास जाटवंश की खुशियों का ही आधार नहीं था, पूरे गाँव ने उनके वर्षावास-स्वीकृति की खुशी मनाई थी। वे केवल खुश होकर नहीं रह गए, उन्होंने जैनाचार की सभी विधियों को अपनाया— सामायिक, पौषध, व्रत, उपवास, बेला, तेला, अठाई-नौरंगी आदि सभी आराधनाओं में रस लिया। चार-के-चार मास उपदेशों का अमृतपान किया। जीवन की दिशा निश्चित हुई। अज्ञानजनित संगत के कारण व्यसनों ने जिनके जीवन में प्रवेश पा लिया था, वे सब छूटे।

मात्र इतना ही नहीं। श्री मायाराम जी म० का यह चातुर्मास बड़ौदा ग्राम के लिये सुनहरा सवेरा लेकर आया। उनकी प्रेरणा व जन-जागरण के अनेक सुफल सामने आये—कृषक-जीवन में रात्रि चौविहार व्रत का पालन करना कितना कठिन कार्य है? लेकिन महाराज श्री की वाणी का अद्भुत प्रभाव था, कि गाँव के अनेक व्यक्तियों ने इस व्रत को स्वीकृत किया।

इसके अतिरिक्त सामाजिक दृष्टि से समस्त गाँव ने यह संकल्प किया, कि बड़ौदा में जो सरकारी अधिकारी आयेगा, उसे गाँव का कोई व्यक्ति शराब-माँस उपलब्ध नहीं करेगा तथा स्वयं उसे ऐसा यहां करने भी नहीं दिया जायेगा। ग्राम-पंचायत की ओर से यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इसी के साथ-साथ ग्राम से सम्बन्धित वन-प्रान्तरों में हिरण, खरगोश, गीदड़, लोमड़ी, मोर आदि पशु-पक्षियों के शिकार पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया।

महाराज श्री ने यहाँ के जन-जीवन में जो प्रेम, अहिंसा, सत्य, सद्विचारों की—स्रोतस्विनी प्रवाहित की। उससे ग्राम-वासी तो प्रभावित हुए ही, किन्तु तत्कालीन सरकारी अधिकारी भी प्रभावित हुए। इनमें तहसीलदार मीर मुहम्मद अली[1] का नाम उल्लेखनीय है। वह अतिसाम्प्रदायिक एवं मांसाहारी व्यक्ति था। उसने अहिंसा

१. देखें—मेरा मन वनवास दिया—सा, पृष्ठ-११०

व्रत धारण कर चरित्र-नेता का शिष्यत्व स्वीकृत किया।

संवत् १९६८ का चातुर्मास धर्म-जगत् में भी सदा-सदा स्मरणीय होकर महत्त्व-मंडित रहेगा। क्योंकि पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म०[1] को इसी चातुर्मास में श्री मायाराम जी म० से धर्म का प्रकाश मिला। उस समय पूज्य गुरुदेव पूर्ण तारुण्यावस्था में थे। गाँव में युवकों की एक स्वच्छन्द मित्र-मण्डली थी, उसके वे नायक थे। युवकों का यह वर्ग धर्म-कार्यों से दूर रहता था। श्री मायाराम जी म० ने गाँव के युवक-वर्ग में मूलभूत क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। सर्वप्रथम उन्होंने मण्डली के नायक को सद्-विचारों में दीक्षित किया। उनके साथ अन्य युवकों का जीवन परिवर्तित हुआ। पूज्य गुरुदेव, जो उस समय युवक रामजीलाल थे, पर तो उनके विचारों का प्रभाव इस सीमा तक पड़ा कि उन्होंने श्री मायाराम जी म० के सान्निध्य में मुनि-जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प ही कर लिया। किन्तु विधि का विचित्र विधान कुछ ऐसा बना, कि श्री मायाराम जी म० का कालान्तर में स्वर्गवास हो गया। तब उन्होंने श्री मायाराम जी म० के लघुभ्राता श्री सुखीराम जी म० के चरणों में दीक्षा ग्रहण की।

\+ \+ \+

बड़ौदा के वर्षावास में निरन्तर एक-के-बाद एक घटनाओं की शृंखला-सी बंधती चली गई। इस वर्षावास में प्रांतेतर स्थानों के लोग दर्शनार्थ आए। अनेकानेक स्थानों से आए लोगों में मुनिश्री के प्रति अनेक तरह की श्रद्धा थी। देहली से कुछ जौहरी दर्शनार्थ आये। उनकी आस्था देखिए—

वे एक चौपाल में ठहरे थे। चौपाल में धूल-मिट्टी हवा से उड़ कर आती थी। बड़ौदावासियों ने उनके लिए पर्दा लगाने की व्यवस्था सोची। पर्दा लगाने के लिए लोग आए, तो जौहरियों ने पूछा—
"यह सब आप क्या और क्यों कर रहे हैं ?"

ग्रामवासियों ने सहज भाव से उत्तर दिया—"यह गाँव है। यहाँ

१. परिचय परम्परा-खण्ड में देखिये।

का तो धूल-मिट्टी का ही जीवन है। आप लोगों के कपड़े-मिट्टी-धूल में न हो जाएं, बस यही सोचकर पर्दा लगा रहे हैं।"

इस पर जौहरियों ने कहा—"बड़ोदा ग्राम की मिट्टी हमारे लिए मिट्टी नहीं है। इसे आप लोग भले मिट्टी माने, किन्तु हमारे लिए चन्दन के समान है। जिस धरती की मिट्टी में श्री मायाराम जी म० जैसे युग-पुरुष ने जन्म लिया है, वह हमारे लिए चन्दन है, चन्दन !"

\+ \+ \+

वर्षावास में संवत्सरी के बाद, सभी मुनिजन मानते है, कि इसके बाद धार्मिक लोगों में उत्साह की कमी आ जाती है।

इस बात को दृष्टिगत रखते हुए श्री मायाराम जी म० ने कहा —"वर्षावास अभी दो माह से भी अधिक शेप रहता है। अतः तुम सब लोग अपनी गृह-प्रवृत्तियों के साथ-साथ निवृत्ति का भी ध्यान रखना।"

श्री मायाराम जी म० का यह कहना था, कि लोगों का अन्तर दाह आँसुओं की राह फूट पड़ा। वे बोले--"महाराज, आपने गृह-प्रवृत्ति की बात कही है। वह तो ठीक है। किन्तु हमारी गृह-प्रवृत्ति तो कृषि-कर्म है और अब तक वर्षा की एक बूंद भी नहीं पडी। हम करें ही क्या ?"

विधियोग देखिए ! दो दिन बाद ही वर्षा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ हुई, तो श्रावण और भादों में जितनी वर्षा होनी चाहिए थी, वह भादों के दूसरे एक पक्ष में ही हो गयी।

अब बड़ोदा के किसानों का मस्तिष्क यह निर्णय नही कर पा रहा था, कि वर्षा हुई तो खूब हुई। किन्तु हमें खेती कौन सी करनी चाहिए ? श्रावण लगने के आस-पास वर्षा न हो, तो श्रावणी खेती कैसे की जाये ? किसानों ने एक नया ही निश्चय किया, जो सामान्यतया किसान नही करते। श्रावणी की खेती की जाती है— श्रावण में। कार्तिक की 'खेती की जाती है—कार्तिक में। उन्होंने भादों के अन्त श्रावणी—खेती की। खेत फले-फूले। किसानों ने पाया, कि हर साल से इस साल की वर्षा कई गुना अधिक है।

श्रद्धालु लोगों ने इसका निष्कर्ष यह निकाला, कि यह भादों की खेती श्रावणी खेती की तरह फलदायक हुई है। यह सब महाराज श्री की कृपा की ही शुभ उपलब्धि है।

बडौदा का वर्षावास अद्भुत चातुर्मास इसलिए भी है कि बिना मौसम में कृषि करने पर भी पिछले जीवन में जैसी फलदायक खेती होती रही है, उससे बढकर खेती हुई और वह कई गुना अधिक फली-फूली है। एक घटना और देखिये—

बड़ौदा में एक साम्प्रदायिक जैन था। उसकी बड़ी विचित्र मान्यता और आस्था थी। वह अज्ञान के अन्धेरे में इस तरह खोया हुआ था, कि सद्विचारो के समागम के हर प्रसंग को साम्प्रदायिक दृष्टि से देखता था। उसे विश्वास था कि मेरी सम्प्रदाय का मुनि प्रवचन सुनाए तो सुनू। इतना था उसके दिमाग़ में अंधेरा और इतनी थी मिथ्या धारणा।

किसान भाई उसे कहते, महाराज श्री का उपदेश सुनने चलो तो वह मुँह बनाकर कहता—क्या है। एक दिन का उसका मुँह बनाना था, कि उसका मुँह ही टेढा हो गया। किसान भाईयों ने कहा—तू साधु के उपदेश सुनने की बात पर मुँह बनाया करता था, यह सभी अवज्ञा का विधि-द्वारा तुझे दिया गया दण्ड है।"

उसकी समझ में आ गया। वह श्री मायाराम जी म० के उपदेश सुनने का सकल्प ही कर पाया था, कि उसकी गर्दन सीधी हो गई। उसका मुँह ठीक हो गया।

सुनने और पढने में मुँह टेढ़ा होना या गर्दन टेढ़ी होने की बात विचित्र तो लगती है। किन्तु इसे हम यूं समझें—देव, गुरु, ज्ञान और ज्ञान के साधनों की अवज्ञा करने पर मुँह ही टेढ़ा हो जाय, यह अनहोनी बात नहीं है। ऐसा करने पर कभी-कभी देखा गया है, कि मस्तिष्क में विकृति तक आ जाती है।

जब यह सत्य है, तो यह असत्य कैसे हो सकता हैं, कि उस साम्प्रदायिक अज्ञानी की, मुनि की अवज्ञा करने पर, गर्दन टेढ़ी हो गई?

इन कुछ घटनाओं और पूरे चातुर्मास में जो-जो घटा, वह सब

अद्भुत ही लग रहा है। इस दृष्टि से हमें कहने में भी कोई कठिनाई नहीं अनुभव हो रही है, कि बड़ौदा का उनका चातुर्मास अद्भुत चातुर्मास था।

बड़ौदा ग्राम में उनका संवत् १६६८ का वह वर्षावास उनके जीवन का पहला चातुर्मास था। वह पहला ही नही अन्तिम चातुर्मास था। फिर उन्होंने बड़ौदा में दोबारा चातुर्मास नही किया। अत: अन्तिम चातुर्मास और अद्भुत चातुर्मास—कह रहे है।

33

महाप्राण का महाप्रयाण

मुनि और मृत्यु !

मृत्यु और मुनि !!

—मुनि अर्थात् संसार का अद्वितीय साधक !

—मृत्यु अर्थात् प्राणिमात्र की अभिन्न मित्र !!

मुनि बड़ा अद्वितीय है, उसने पूरी सृष्टि को स्नेह दिया है। सबसे मैत्री की है। फिर वह मृत्यु से घृणा कैसे कर सकता है ?

इससे भी आगे हम यह कहना चाहते है—सच्चे मुनि ने मृत्यु को जितना पुकारा है और प्यार किया है, किसी ने उसे मित्र स्वीकार कर उतना प्यार नही दिया और न मित्र स्वीकार कर, उसको घड़ी भर के भी अपना हृदय ही दिया है।

संसारस्थ प्राणी सम्बन्ध तो अनेक प्रकार के स्थापित कर लेता है, पर वह हृदय को आवृत ही किए रहता है। इसलिए वह दुहरी जिंदगी जीता है। पुस्तक की तरह वह स्वयं को अनावृत नहीं रख पाता। मन का आवृत रहना मृत्यु को फूटी आंख नही सुहाता है।

संसारस्थ जनों के संसारस्थ जीवन में भटकाव एवं उलझनें हैं—क्यों कि संबधों के निर्वाह में वे स्वस्थ चिंतन के अभाव में स्पष्ट नहीं हैं। यही अस्पष्टता उनका मृत्यु से, न संग होने देती है न समरसता पैदा होती है।

मुनि है कि वह सतत मृत्यु के साथ रहता है। मुनि का मुनित्व ज्यूं-ज्यूं परिपक्व होता है, त्यों-त्यों मुनि की मृत्यु से मैत्री गहन होती जाती है।

+ + +

मृत्यु का विद्रोह :

मुनि के अतिरिक्त अन्य प्राणियों ने मृत्यु से मैत्री नहीं की है, उसे अपना हृदय दिया। उसे ढके ही रखा। अर्थात् न उसे अपना न हृदय दिया और उसका हृदय पढा। फलतः वह रूठी-रूठी-सी उपेक्षित-सी रहती है। प्राणी से मैत्री न होने के कारण, एक दिन वह विद्रोही बन जाती है। और नागिन जैसे अपनी ममता के अखंड केन्द्र बच्चों को निगल जाती है, ऐसी ही वह प्राणी को निगलने को विवश हो जाती है। क्या करे जीवन भर वह प्राणी के साथ रही, न उसे अपनत्व मिला, न ममत्व मिला। अपनत्व कुचलने पर ममत्व का वमन हो जाता है। तब वह मनुष्य को खा जाती है। इसीलिए जन्म, फिर जन्म। निगलना और अगले शरीर के लिए उस देह को छुडा देना। यह क्रम कभी टूट ही नहीं पाता।

मुनि के जीवन में विपर्य है। मुनि योग और समाधि में गहरा उतरता जाता है। ज्यूं-ज्यूं मृत्यु से उसकी मैत्री गहरी होती चली जाती है।

मृत्यु से अमैत्री या दुराव ही मनुष्य के दुःख का मूल केन्द्र है। यद्यपि मनुष्य मृत्यु को जब-तब याद कर दुःखी होता है। किन्तु सत्य यह है, कि वह मृत्यु से मैत्री स्थापित नहीं कर पाता। श्मशान-घाट में वह पहुँचता है। देखने में लगता है—वह मृत्यु को समझ रहा है, पर तब भी वह मृत्यु से मैत्री स्थापित नहीं कर पाता। यहाँ भी वह केन्द्रीय भूल कर बैठता है।

पलभर को हमें लगता है, श्मशान ने उसे उदास बना दिया है। मृत्यु को जान लेना अब शायद उसकी नियति हो चली है। पर ऐसा नहीं होता। वहां और वहां के बाद भी उसके दुःख का मूल केन्द्र मृत्यु का 'भय' बना है। वह मन-ही-मन में धारणा बना डालता

है—यह मर गया। मैं भी मर जाऊँगा! एक दिन मेरा भी ऐसे ही अंत हो जाएगा—बस यही भय उसे निगलने लगता है। मृत्यु क्या है? मृत्यु क्यों आवश्यक है—इस ओर निमिषभर को भी वह ठहर कर नहीं सोचता ' जब कि सच्चाई यह है, कि मृत्यु जन्म की ओट में छुपी होती है। उसे ठीक से पहचान जाना ही जीवन है। मात्र साँस लेना जीवन नही है।

जीवन तो है ही अंदर में देखने का नाम। झाँको और जीओ। झांकोगे तो जीवन दिखाई देगा। संवर, संयम और तप की धरा के नीचे झाँको, दिखाई देगा—जीवन। छुपी और आवृत आत्मा को देख लेना, जान लेना ही जीवन-दर्शन है।

'पर' का जन्म : मुनि की मृत्यु :

मुनि अकेला है।

मुनि निपट अकेला है। वहाँ दूसरा या 'पर' कुछ भी नही है। मुनित्व का गहरा और स्पष्ट लक्षण है कि जब तक दूसरा है, उसकी दृष्टि में—अन्तर मे—तब तक ससार है, परिभ्रमण है।

इसलिए मुनि सदैव एकत्व की साधना करता है। वह अकेला होता है। अदर में अकेला, मन से अकेला, तन से अकेला, जन से अकेला। उसका 'अकेलापन' उसके 'अकेलेपन' को भी भूल जाता है।

स्वयं के अकेलेपन का बोध भी वह मिटा देता है। दूसरे का बोध तो दूसरा होता ही है। अपने अकेले होने का बोध भी तो दूसरे के अस्तित्व को नकार नही सकता। दूसरा तब तक मिट कर लुप्त कहाँ होता है? दूसरेपन का भाव जब तक न मिट जाए, अकेलापन प्रकट कैसे होगा? दूसरे की याद दूसरे की इच्छा जागी कि मुनि मरा। इसलिए दूसरे के होने के बोध से वह शून्य हो जाता है। जहाँ दूसरा मौजूद हुआ कि 'पर' आया। 'परभाव' आया कि मुनि मिट जाता है। साधुता लुट जाती है। साधुत्व का अखंड सुख खडित हुआ कि 'कर्म' पुद्गल उसे आबंधित कर लेते हैं। इसीलिए हम कहते हैं—मुनि नितांत अकेला ही होता है।

अगर दूसरे की याद, उसकी छाया, उसका आभास भी बना

रहा तो दूसरा 'पर' उपस्थित है। वह उसे बांध रहा है। 'दूसरेपन' के तन, मन, सोच, चिंतन सब जगह से वह अकेला हो जाता है। मुनि की यह भूल, अर्थात् अकेलेपन को भी भूल जाना, पूर्णत्व का चरम बिंदु है। चरम बिंदु इधर मुनि को मिलता है, उधर मृत्यु—उससे दूर, दूरतर हो जाती है। मृत्यु की छाया मिट जाती है। इसी को हम मृत्यु की मृत्यु कहते हैं। अब रह जाता है मात्र प्रकाश। छाया सदा को मिट जाती है।

तो एक बात समझते चलें—मुनि जब पूर्ण होता है, तो वह असीम आकाश की तरह पारावार-रहित आकाश बन जाता है।

\+ \+ \+

मुनि और समुद्र :

मुनि को दूसरी एक दृष्टि से देखें।

मुनि है—वह पारावार-रहित, तटहीन समुद्र है। उसे मिल चुका है—जो मिलना था। इसलिए वह सत्संग करता है, लुटाना चाहता है।

मुनि तो चाह से रहित है, फिर क्यों वह लुटाने को आतुर होता है?

ठीक है प्रश्न।

वह लुटाने को उतावला क़तई नहीं है। उसे मिला है, उसके आत्मकेन्द्र पर जो भरा है, वह इतना है, कि बांध तोड़ कर वह स्वयं बहता है। इसी को हम लुटाना कहते हैं। निरंतर की वर्षा बाढ़ बन कर बहती है। मुनि ने भी इतना पाया है, कि बहने के अतिरिक्त वहां रहा ही नहीं कोई रास्ता।

मृत्यु और मोक्ष :

संसार और मोक्ष, मृत्यु और मोक्ष।
'बाहर' और 'अंदर' इसी में लुप्त है—मृत्यु और मोक्ष।

संसार और मोक्ष का अंतर, इसके भेद, इसकी व्याख्या व

परिभाषाओं से ग्रंथ के ग्रंथ अटे पड़े हैं। बड़ी विचित्र और संख्यातीत व्याख्याएं हैं। विचित्र इस अर्थ में, कि विधि-निषेधों के अम्बार खड़े कर दिए; फिर भी मोक्ष असल रूप में न दिखाई देता है और न परिभाषित हो पाता है। जीवन के जीवन मिट-खप गए लेकिन मोक्ष है, कि परिभाषित ही न हो पाया। ग्रंथ पर ग्रंथ रचते चले गए, टीकाओं पर समानान्तर टीकाएं रची गईं—पर मोक्ष उलझा का उलझा ही रहा। वह अंतिम परिभाषा से मुक्त ही रहा। उसके एक बिन्दु का बिम्बाणु भी परिभाषा में न आ पाया।

श्री मायाराम जी म० से भी पूछा गया, कि मोक्ष का स्वरूप क्या है? तो उन्होंने सीधी सी परिभाषा दी। उसके लिए न ग्रंथ रचने की जरूरत पड़ी और न अनुयायियों की भीड़ एकत्र करनी पड़ी। उन्होंने सीधी चोट करती बात कही—"अपने से बाहर तुमने देखने का प्रयत्न किया, कि बस, सरक गए, धंस गए संसार में। अपने भीतर देखा आँख को, भीतर खोलना शुरू किया, कि बस मोक्ष ही मोक्ष।"

मोक्ष के बारे में यूं मत समझ लेना कि कोई ऐसा स्थान है, जहाँ पहुंचकर घर बसाना है, या डेरा डालना है। मोक्ष परम में विलीन होने का नाम है। अनत में समा जाना ही मुनि का मुनित्व है।

मृत्यु कैसे घटी?

'मुनि' की मृत्यु नहीं होती। अपितु मुनि मृत्यु से गुजरता है। गुजरने का अर्थ है, मृत्यु को मिटा देना। क्योंकि मृत्यु को उसने जीवनभर छाया की तरह धारण किया होता है। मुनि का भू-आसीन हो जाना ही, छाया का मिट जाना है। छाया मिटी, यानी मृत्यु मिटी!

परम श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० के साथ मृत्यु कैसे घटी?—यह एक संस्मरण रेखा की तरह या एक पूरी कहानी के सार-संक्षेप की तरह है। उनकी मृत्यु एक पूरा इतिवृत्त बन गई। कैसे? यही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

संवत् १९६८ में बड़ौदा का ऐतिहासिक चातुर्मास व्यतीत कर

महामनीषी ने हरियाणा प्रदेश के लगभग सभी क्षेत्रों का विचरण पूरा किया। जनता को जीवन का नया सन्देश दिया। जनता निनादित इसी क्रम से वे रोहतक नगर में पधारे। तब तक होली चातुर्मास सरक आया था। रोहतक में होली चातुर्मासी की। आगामी चातुर्मास-स्वीकृति के लिए अनेक क्षेत्रों से संघों का आगमन हुआ और अनेकों में प्रयत्नों की हल-चल शुरू हुई। क्योंकि मुनिजन इसी समय आगामी वर्षावास करने की स्वीकृति, मुनि-मर्यादा की सुरक्षा-हेतु देते हैं।

इसी समय, लम्बे समय से सङ्घ-वन्द्य मुनि श्री मायाराम जी म० के दर्शन की आकांक्षा लिए हुए—स्थान की दृष्टि से सुदूर विचरने वाले मुमुक्षु आचार्य रत्न श्री खूबचन्द जी म० का चार अन्य मुनियों (घोर तपस्वी श्री हज़ारीमल जी म०, पं० रत्न श्री कस्तूर चन्द जी म०, प० श्री केसरीचन्द जी म०, छोटे पं० श्री हज़ारीमल जी म०) सहित रोहतक आगमन हुआ! दो महामुनियों का मिलन हुआ। विचारों का आदान-प्रदान और चर्चा-वार्ता सभी सुखकर था। रोहतक जैन-सघ भी इस मिलन मे परम हर्षित हुआ। वह चातुर्मास स्वीकृति की बात सोच रहा था। तभी अनेक स्थानों से चातुर्मास-स्वीकृति के लिए प्रयास हुए। इस प्रयास में दिल्ली का जैन संघ उल्लेखनीय है।

—यद्यपि पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द जी म० स्वतन्त्र-रूप से एक सम्प्रदाय के प्रमुख थे! वे अपना चातुर्मास कहाँ बिताएँ, किस क्षेत्र को यह अवसर दे?—इसके लिए वे स्वतन्त्र थे। परन्तु महा-मुनि में उनकी कितनी श्रद्धा और नेह-नाता था, इसका प्रमाण है—मुनि श्री मायाराम जी म० ने दिल्ली के जैनसंघ से कहा—इस बार दिल्ली में हमारे अतिथि-मुनियों का चातुर्मास होना चाहिए! मैं तो इधर हूँ ही। आचार्य-प्रवर का कब-कब आगमन होगा? अतः यह मेरा आदेश है, कि आप लोग इन मुनि-प्रवरों का चातुर्मास दिल्ली करवाएं।" ऐसा ही हुआ। उल्लेखनीय है—आचार्य श्री का चातुर्मास मुनिश्रेष्ठ ने देहली के लिये स्वयं स्वीकृत किया था।

बिना साधु-समाचारी के एकीकरण हुए कौन इतना बल देकर कह सकता है—इतनी बड़ी बात? हमने पीछे उल्लेख किया है—श्री

मायाराम जी म० आचार्य न होते हुए भी उस समय के सभी सन्तों के द्वारा श्रद्धा से स्वीकृत आचार्य थे। उनका व्यक्तित्व इतना व्यापक था और विशाल था, कि सभी उन्हें बरबस अपना पथ-प्रदर्शक अर्चनीय और श्रद्धेय मानने को विवश थे।

—यह है मालव-मरुधरा से पंजाब-आगत मुनियों के चातुर्मास की बात। अब स्वयं श्री मायाराम जी म० के चातुर्मास का इतिवृत्त समझें।

संयम-दीप-शिखा प्रज्वलित रखने वाले चरित-नेता ने सं १९६८ रोहतक का वर्षावास स्वीकार किया। विहार का विचार बना। रोहतक में जैन स्थानक से नीचे उतर रहे थे। तभी एक व्यक्ति सर पर सूखी लकड़ियों का भार लिए हुए सामने आता दिखाई दिया। उसका लकड़ियों का भार लिए दिखाई देना था, कि उपस्थित सैकड़ों श्रद्धालु लोगों के मन अनेक प्रकार की आशंकाओ से घिर गए। चरित-नेता से बोले—आप से हमारा विनम्र निवेदन है, इस समय आप न विहार करें। क्योंकि हमारा शकाशील मन इससे दुःखी होगा। आप तो सहजभाव से गमन करना चाह रहे हैं। पर लकड़ियों का भार लिए हुए किसी के प्रस्थान के समय आगमन हम सांसारिक जनों की दृष्टि में शुभ नहीं कहलाता। आप तो प्रस्थान कर जाएगे, परन्तु हमारा मन इस शंका के शल्य की, निरन्तर चुभन अनुभव करता रहेगा।"

अन्तर्दृष्टि महामुनि यद्यपि अन्दर में जानते थे—मृत्यु किस तरह घटना प्रारम्भ हो रही है। वे मृदुल थे। आग्रही नहीं थे। चिन्तन हुआ—संघ का मन कुचलकर जाना भी हिंसा हैं। यह मान कर रुक गए। भिक्षचर्या और आहार-विधि से निवृत्त होकर फिर विहारार्थ उत्कण्ठित हो गये। भक्तजन तब भी वहां उपस्थित थे। महामुनि अपने साधुओं के साथ जैन स्थानक से उतर कर आए, कि इस बार भी एक दूसरा व्यक्ति लकड़ियों का भार लिए सामने से गुजरा। उपासक-वर्ग फिर चिन्तित हो गया। मृत्यु से पार जाने वाले मुनिराज सोचते रहे—मृत्यु तो क्रमशः घट रही है। किन्तु उन लोगों के मन में यह अन्धविश्वास स्थायी हो जाएगा, कि लकड़ियों का भार लेकर सामने आने वाला व्यक्ति मृत्यु का

सन्देश सर पर उठाकर लाता है। करुणाशील मुनि-सम्राट् फिर रुक गए। उस दिन विहार नहीं किया।

अगले दिन विहार करने लगे, तो इस बार सूखी लकड़ियों की भरी गाड़ी ही उनके सामने से गुजरी। लोगों ने कुछ भी सोचा-विचारा हो। किन्तु मृत्यु-विजेता देखते रहे—मृत्यु घट रही है। पर अन्ध-विश्वास कैसे पनप जाते हैं? लकड़ी की गाड़ी से घटने वाली मृत्यु का कोई सम्बन्ध नही है। पर जन-विश्वास कैसे मिटे? उन्होंने भिवानी को लक्ष्य किया और शार्दूलवत् निर्भय होकर विहार कर दिया।

रोहतक छोड़ा, तो उन्हें लगा, कि यह हमेशा के लिए छूट गया है। लकड़ी की गाड़ी का दिखाई देना यद्यपि उनके विश्वास को दृढ़ीभूत न कर पाया था, परन्तु जीवन भर की साधना से उद्घाटित नेत्र द्वारा उन्हें सब कुछ दिखाई दे रहा था। वे जान रहे थे—मृत्यु घटित हो रही है। मुनि की मृत्यु सहमा और अप्रत्याशित नही होती। वह क्रमागत होती है।

·········तो वे रोहतक से विहार कर भिवानी नगर के निकट पहुंचे थे, कि मृत्यु ज्वर के रूप में समीपतर होने लगी। जैसे-तैसे भिवानी नगर पहुँच गए। समय सरकता रहा। वर्षावास का समय निकट आ चला। वर्षावास चूंकि रोहतक का स्वीकार कर लिया था।

—मुनि जो कह देता है, वह हमेशा के लिए कहना है। उसमें किसी प्रकार की ऐसी दरार नही होती है कि कहा गया 'वचन' उसमें समा जाए और उसका कोई मूल्य, महत्त्व न हो। रोहतक में वर्षावास का वचन था, इसी नाते रोहतक जैन-समाज के समयज्ञ सुश्रावक, संघबद्ध महामना की सेवा में भिवानी पहुंचे। निवेदन किया—"आप अपने दिए गए वचन के अनुसार शरीर के अनुमति न देने पर भी रोहतक वर्षावास के लिए पधारेंगे। लेकिन हमारे विवेक का विनम्र निवेदन है, आप अपने वचन से मुक्त है। हम अपने आग्रह, प्रार्थना, अभ्यर्थना और वर्षावास का निमन्त्रण सबको, आपकी शारीरिक अस्वस्थता को देखते हुए, तिरोहित करते हैं।

..........रोहतक के समयज्ञ-जन चले गए। महामना भिवानी में विराजमान हो गये। वर्षावास प्रारम्भ हुआ। नियति की भवितव्यता देखिये—वे स्वस्थ हो गए। धर्म-प्रवचन होने लगे—ठीक उसी तरह, जैसे भिवानी नगर में वर्षावास का उन्होंने अभिवचन दिया हो। धर्म-प्रवचन प्रतिदिन होने लगा हर रोज सूर्योदय की खुशी में सारा जड़-चेतनमय संसार नाच उठता है। ऐसे ही प्रतिदिन के धर्मोद्योत से भिवानी के नागरिकों में नवोदय उत्पन्न करने लगा।

..........इसी क्रम में पर्युषणपर्व का समय आ गया। जैन-अजैन सुज्ञ-अज्ञ, जाति और धर्म-बन्धन से मुक्त, मात्र श्री मायाराम जी म० के आदेश निर्देश में आस्था और श्रद्धा रखने वाले जन, समुद्र की तरह जुड़ने लगे और प्रवचन सुनने लगे। पयुर्षण-पर्व का आयोजन जप-तप, त्याग, तपस्या सवर और संयम में सम्पन्न हुआ। पूर्णाहुति-स्वरूप सांवत्सर महापर्व भी सोत्साह परि-पूर्ण हुआ। क्षमायाचना-दिवस के पश्चात् बाहर से अनेक नगरों के श्रद्धालुजन क्षमायाचना के लिए आने लगे।

उन्हे अपने श्रद्धेयवर्य का स्वास्थ्य जानना था, दर्शन करने थ, और क्षमायाचना करनी थी।

—तो महा-व्याख्याता मुनि श्री मायाराम जी म० भिवानी में पयुर्षण-पर्यंत लगभग स्वस्थ रहे। सांवत्सर महापर्व सम्पन्न हुआ। किन्तु वे क्रमगत मृत्यु को गहराई और निरात से देखते रहे थे।

......बाहर से आने वालों में दिल्ली के श्रावक श्री गोकुलचन्द्र जो जैन जौहरी भी भिवानी पहुंचे थे। गोकुलचन्द्र मात्र उनके भक्त ही नही थे, वे स्वय स्वाध्यायी और विचारक भी थे। अनेक बार महाराज श्री से ज्ञान व विचार-चर्चा करते हुए उनके प्रहर के-प्रहर व्यतीत हुए थे। पर इस बार का उनका भिवानी में आगमन शीघ्रता में हुआ था। शाम भिवानी आए, रात महाराज श्री के सान्निध्य में रहे। अगले दिन निवेदन किया—"मुझे अनुमति प्रदान करने की कृपा करें। मैं पुनीत चरणों में ठहरता। किन्तु विवशता है। कल मेरी अदालत में पेशी है।"

—पेशी शब्द सुनना था, कि गत छः माह से जिस मृत्यु का क्रमागत आगमन वे देख रहे थे—उसे महाप्राण मुनि मायाराम ने प्रकट करना उचित समझा। बोले—गोकुलचन्द ! जितनी शीघ्रता तुम्हें है, उतनी शीघ्रता अब इस देह को भी है। तुम्हारी पेशी कल है और हमारी परसों।

"यह कोई विवाद की बात नहीं है। यह तो त्रिकालाबाधित सत्य है। मेरे बाद तुम्हें जो याद रखना है, वह यही है, धर्म ध्यान को वर्द्धमान रखना। मुनियों के संयम में बृद्धि के साधन जुटाना। यही तुम्हारी पूंजी है। मेरी और तुम्हारी दोनों की यह साँझी पूंजी है। इस में कहीं मेरापन या तुम्हारेपन की मोहर नहीं लगी है। मैं गत छः माह से बाहर से एकदम हट चुका हूँ। मृत्यु की गति बहुत मन्थर थी। इसलिए किसी से कुछ कहना उचित नहीं समझा। पर अब गोपन में कोई श्रेय प्रतीत हो नहीं रहा है।"

गोकुलचन्द का मन उदास हो गया। सोचने लगे—'महाप्राण ने अपने महाप्रयाण का जो सत्य उजागर किया है, वह है तो महाप्राण के शब्दों में शाश्वत सत्य। पर संसारस्थ जनों के लिए पीड़ा-पूरित है।' इतना सोचकर भिवानी के जैन स्थानक से नीचे उतरने लगे तो उनका मन बड़ा बोझिल हो गया। पैर उठाए नहीं उठ रहे थे। वे लाख सयाने व सज्ञान थे, पर हृदय उफन पड़ा और आँखें बरस पड़ीं।

वे नीचे उतरे ही थे, कि भिवानी के सुश्रावक ला० फ़क़ीरचन्द जी जैन दिखाई दिए। उन्होंने गोकुल चन्द जी की बरसती आँखें देखीं, तो अधीर हो उठे। पूछा—"आप जैसे गम्भीर श्रवक की आँखों में आँसू घटित या घटित होने वाले किसी असाधारण घटना के सूचक ही हो सकते हैं। बताइए क्या बात है ?"

गोकुलचन्द जी की आँखें जब तक बरसीं, बरसलीं। पर जब बोले तो बडा सपाट सत्य कहा—"आप भिवानी के ज़िम्मेदार व्यक्ति हैं। सुनने में बड़ा कटु अनुभव होगा। परन्तु यह सत्य है—महाप्राण मुनि मायाराम जी म० अब महाप्रयाण की तैयारी कर चुके हैं। उन्होंने मुझे साफ़-साफ़ कह दिया है। अतः आप लोगों को महाप्रयाणोपरांत की पहले ही तैयारी कर लेनी चाहिए।"

ला० फ़क़ीरचन्द जी ने तुरन्त कहा—"बात आपने, जैसा अनुमान था, वैसी ही अकल्पित बताई है। परन्तु यह घट जाएगा और इतनी जल्दी? इस पर विश्वास नहीं होता। और यदि महामुनि ने अपनी नियति को देखा है और तब कहा, तो भी हम महाप्रयाणोत्तर तैयारी कैसे कर सकते हैं?"

—गोकुलचन्द्र जी! कल्पना कीजिये। हम कितनी अचिन्त्य विकट स्थिति में फंस गये। एक ओर महामुनि ने अपने विषय में आप से जो कहा, उसके अनुसार हमें महाप्रयाण के उपरान्त की तैयारी कर लेनी चाहिये। दूसरी ओर सोचो—पूरे भारत का जैन-संघ हमें क्या कहेगा? यही न कि महामुनि के सानन्द, स्वस्थ रहते हुए भी तुमने महाप्रयाणोत्तर तैयारी की। क्या तुम्हें मुनि-श्रेष्ठ का मरण इष्ट था?

यह सुनकर गोकुलचन्द्र भी चिन्ता-निमग्न हो गये। लेकिन तभी उन्होंने एक रहस्यमय निर्णय लिया। और कहा—इस सम्बन्ध में हमें व्यवस्था तो पूर्ण-रूप से नियोजित कर लेनी चाहिये; परन्तु करनी है परम गोपनीय विधि से। भिवानी के प्रमुख गृहस्थों ने इस सुझाव को मान लिया, और गुप्त तैयारी होने लगी। उस तैयारी में वह सब कुछ समाहित था, जो सामान्यतया महाप्रयाण के अवसर पर सामाजिक जन करते हैं। आगन्तुक श्रद्धालुजनों की उमड़ती भीड़ की व्यवस्था से लेकर शवयात्रा-हेतु शिविका के निर्माण तक, जो होता है, वह किया जाने लगा। यह सब कुछ भाद्रपद शुक्ल नवमी तिथि में हो रहा था।

भाद्रशुक्ल दसवीं तिथि को प्रतिदिन की तरह मुनि-श्रेष्ठ ने प्रवचन किया। इस दिन मृत्यु के संबंध में पूरा प्रवचन दिया। महाप्रयाण की तैयारी में लगे बन्धु भी प्रवचन में उपस्थित थे। उनका मस्तिष्क प्रवचन सुन रहा था, पर मन विविधानेक कल्पनाओं से गुजर रहा था। वे निर्णय नहीं कर पा रहे थे, कि हम जो कर रहे हैं, वह अग्रिम बुद्धि का परिचायक है या अशुभ कृत्य का? जिस महामुनि के लिए हम जो तैयारी कर रहे हैं, वह कितना सजग, सावधान और प्रसन्न है। हन्त! उसके बारे में हमने कैसा निर्णय ले लिया!

—इन सब कल्पनाओं के चित्र उनके मस्तिष्क में बड़ी तेजी से

बने, मिटे ! उभरे और लुप्त हो गए। प्रवचन हर दिन की तरह सम्पन्न हुआ। श्रोता जन अपने-अपने घर लौट गए। मध्याह्न-वेला मे मुनि शिरोमणि ने समीपस्थ मुनियों की सगीति आयोजित की। मुनि श्री मायाराम जी म० ने संतों को विशुद्ध सयम के आदेश दिए और कहा—मुनियो! जैसे सूर्य का प्रतिबिंब कभी-कभी शांत व अडोल नन्ही बूंद में प्रतिबिंबित हो जाता है, ऐसे ही मैं मृत्यु-बिंब को छह माह में देख रहा हूँ। अब इस माटी की काया में दम नही रह गया है। मृत्यु का पूरा-पूरा बिंब इस काया की बूंद में मुझे दृष्टि-गत हो चुका है।

महावीर का पूरा विचार-दर्शन मृत्यु को केन्द्र मान कर परि-क्रमा करता है। उनका कहना है, मेरा कहना है। आज तक हुए तीर्थंकरों का यही कहना है—"मुनि अपने सयम के लिए जीवित रहता है। वह परहित भी जीता है। जब दोनो हित सपादित करने मे काया साथ न दे, तब उस शरीर को सहर्ष छोड देना चाहिए! मायाराम के नाम से जाना जाने वाला शरीर अब इसी नगर की मिट्टी में समाहित होगा। अतः क्षणभर को भी शोक मत करना। मृत्यु मुनि का परम मोद है। ५०, ६०, ७० वर्षों की संयम-साधना का परीक्षा-दिवस है। उसे परीक्षा के रूप में ही जानना।" और संगीति विसर्जित कर दी गई।

मुनिप्रवर स्वाध्याय-रत हो गए। शाम हुई। रात ढली। मुनि-जन शयन-रत हुए। दूसरा प्रहर लगा। मुनियों ने देखा—महामुनि पूज्य गुरुदेव स्वाध्याय-रत है। दसरा दिन हुआ। उन्होंने देखा। अब वे स्वाध्याय नही कर रहे है। वे केवल मौन हैं। भाद्रशुक्ला एका-दशी तिथि का प्रवचन अन्यमुनियों ने किया। उस दिन न वे मुनियों से कुछ बोले, न गृहस्थों से। मनियों से पहले ही कह चुके थे—कल मैं मौन रहूँगा और उपवासी भी।

गृहस्थों ने उन्हें इस दिन उपवासी माना था, और मुनियों ने उन्हें उपवासी और मौनावलम्बी—दोनों। सूर्य ढलने लगा तो मुनियों ने देखा—वे निर्निमेष हो चुके हैं। न उनकी पलकें झपक रही हैं और न किसी प्रकार का भाव-क्रोध उनके मुख-मंडल पर अंकित हो रहा है। मात्र यह लग रहा था—एक महामुनि समाधिस्थ हैं।

सूर्य ढलते-ढलते भिवानी के सिकताकणों को स्वर्णिम आभा में रंगने लगा। प्रतिक्रमण-वेला हुई। मुनियों के लिये प्रतिक्रमण करणीय था। पर महाप्राण मुनि-श्रेष्ठ श्री मायाराम जी म० प्रतिक्रमण से आगे की अवस्था की अब अनुभूति में पहुँच रहे थे। मुनियों ने प्रतिक्रमण-क्रिया मे निवृत हो विधिवत् श्रमण-वंदना की। महामुनि ने जैसे समाधि खोल ली हो, सब मुनियों और गृहस्थों से क्षमा याचना की और अगले ही क्षण फिर अनन्त की समाधि मे लीन हो गये ! ७ बजे ! १८वी मिनट न मिट पाई थी, कि उस संयम के हेमाद्रिशृङ्ग महाप्राण ने महाप्रयाण कर दिया !

महाप्रयाणोत्तर ज्ञातव्य :

श्रद्धालु लोगों के 'भौतिक दर्शन' का तत्कालीन चश्मदीद लोगों से प्राप्त कथन यह है—

पूज्य श्री मायाराम जी म० का जब स्वर्गवास हुआ, तो निकट-दूर विविधानेक प्रांतों से आए लोगों ने श्रद्धा से दुशाले, नारियल और चदन की लकड़ियाँ, श्री मायाराम जी म० के शरीर के अग्नि-संस्कार के लिए अर्पित किये। उससे १८ बैल गाड़ियाँ भर गई थी।

—कल्पना की जा सकती है—उस समय कहाँ-कहाँ, किस-किस प्रांत, प्रदेश और नगर, ग्रामों से कितनी बड़ी संख्या में मानव-समूह एकत्र हुआ होगा ?

—उनके प्रति कितने लोगों में कितनी श्रद्धा थी ?

—आस्था व श्रद्धा के वे मूर्तिमान् कालजयी पुरुष थे !

कालजयी दिव्य-पुरुष को काल-कवलित जनों के श्रद्धावन्दन !!

34

अभिवन्दना

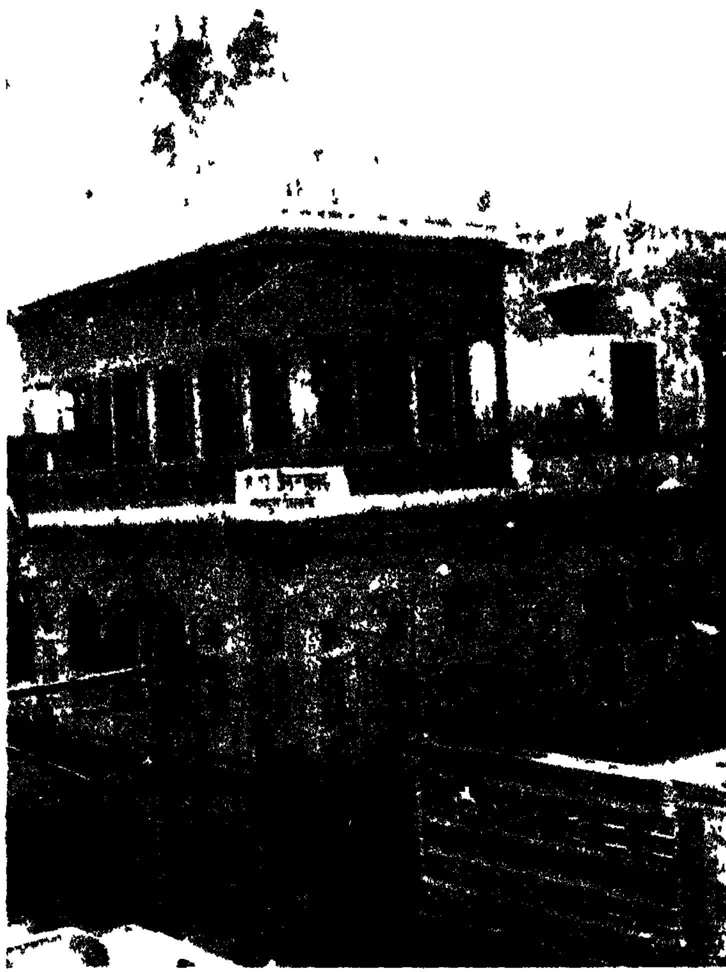
श्री मायाराम जी म० भारत-भर के श्रद्धालुओं के श्रद्धाकेन्द्र थे, परन्तु श्री मायाराम जी म० की देह का केन्द्र था—भिवानी नगर !

उनकी माटी की काया ने भिवानी नगर की स्वर्ण-धूलि में समाहित होकर, इस वसुन्धरा को सार्थक कर दिया था।

\+ + +

भिवानी नगर 'श्री' और 'समृद्धि' का नगर है। इसे श्री मायाराम जी म० की कृपा की 'श्री' मिली, और उनके विचारों की 'समृद्धि' मिली। यह श्री और समृद्धि जैनों को मिली हो, दूसरों को नहीं—ऐसा नहीं। जैन-अजैन सभी लोगों ने उनकी कृपा का अमृत पाया था। उनकी कृपा ने उन्हें अर्थ से और संयम से, दोनों से ही समृद्ध कर दिया था।

भिवानी के विशाल श्मशान मुक्तिधाम में एक अजैन बन्धु ला० शिवनाथ हरलाल वैष्णव ने श्री मायाराम जी म० की ललित समाधि का निर्माण करवाया है। वैष्णव-बन्धु-द्वारा जैन मुनि के महाविश्राम-स्थल में समाधि बनवाना भी अपने-आप में बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। उनकी कृपा का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है—श्री मायाराम जी म० मात्र जैनों के लिए ही अवतरित नहीं हुए थे, वे मानवमात्र को



जैन स्थानक, भिवानी (हरियाणा)
(जहा चरित-नेता ने अपनी अन्तिम साधना पूर्ण की थी)



(श्रद्धेय भगिनी नता की स्मृति में निर्मित—भव्य समाधि)

संयम का अभिमन्त्र देने में विश्वास करते थे।

वैष्णव बन्धु द्वारा निर्मापित श्री मायाराम जी म० की समाधि देख कर मन मुग्ध हो जाता है। भारत के अनेक स्थानों में मुनियों की समाधियां बनी हैं। परन्तु भिवानी में स्थित यह समाधि, समाधि शब्द को सार्थक कर रही है। लगभग २७'×२७' फुट चौड़ा और लम्बा इसका क्षेत्रफल है। इसके मध्य में एक विशाल चबूतरा है। इस परिसर में श्री मायाराम जी म० की तीन द्वारयुक्त, चार सुन्दर स्तम्भों पर आधारित समाधि देखते ही बनती है। समाधि में उनके चरणचिह्न अंकित किए गए हैं। इन चरण-चिह्नों के पास ही उनके प्रशिष्य श्री मोहर सिंह जी म० के भी चरण बने हुए हैं।

'मुक्तिधाम' में निर्मित उनकी समाधि, सचमुच समाधि शब्द के भावों को संजोये हुए है। चरणचिह्नों के समीप ही एक छोटा-सा गुफाद्वार है। गुफाद्वार में प्रवेश करते समय लगता है, आज से अर्धशती-पूर्व हुए, किसी मुनि के समाधि-स्थल पर ही हम पहुँच रहे हैं। वह छोटा-सा गुफाद्वार उक्त चार स्तंभों के मध्य भूमि में, लगभग १५ सीढ़ियां उतरने पर, जहाँ पहुंचता है, वहां दर्शक को—बैठने पर लगता है, ऐसे ही शून्यागारों के भारत के ऋषि-मुनि तपस्या की आँच में कर्मों का अर्घ चढ़ाया करते थे।

समाधि-निर्मापक की चेतना वस्तुतः सजग रही होगी। यही कारण है, कि उस गुफा में मुनि की साधना का प्रतीक एक प्रस्नर-संस्तारक भी उसने बनवाया है।

+ + +

श्री मायाराम जी म० अपने दीक्षा-काल में पूरे भारत में घूमे। वे लोगों को छू-छू कर बताते रहे, कि संसार की वास्तविकता को समझो। मोह, वासना और आकाँक्षा तुम्हारे आत्मधन को अजगर की तरह न निगल जाए।

प्रहरी, मात्र 'सचेत' इतना ही तो कहता है और आगे चल देता है। श्री मायाराम जी म० भी उपदेशों के द्वारा संसार को जगाते हुए उसे आलोक से भर कर आगे चल दिये।

समाधि के परिसर के समीप ही एक भित्ति पर अंकित यह

सन्देश कितना सत्य समन्वित है—

आसन मारे कहा भयो, जो नही मिटी दुरास ?
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ।।

आसन तो लगा लिया साधुना का, वस्त्र सफेद या रंगकर, भले पहन लिए हों, परन्तु मन में दुराशाओं का, दूसरे के अमंगल का, दूसरे के प्रति ईर्ष्या का अधेरा, मन से न मिटा, तो आसन लगाकर छलावा करने से कोई लाभ न होगा। तेली का बैल बेचारा आख पर पट्टी बांध देने पर घूमता रहता है। घूमते-घूमते थक कर चूर-चूर हो जाता है। सोचता है—मैने पचासों कोस मंजिल पार कर ली है, किंतु आंख से पट्टी हटी, कि उसका भ्रम टूट जाता है। वह पाता है, जहां से उसने चलना शुरू किया था, वह वही खड़ा है।

श्री मायाराम जी म० इसी दुराशा, दुश्चिन्तन से दामन बचा लेने के लिए ही सयम की बात कहते रहे—अपने पूरे जीवन में।

अभिवन्दना :

मुनि जब देह तज देता है, तब भी जनता उसे श्रद्धायुक्त हो, वन्दन करती रहती है। इस वन्दन के पीछे क्या दृष्टि है ? इस सत्य को समझना आवश्यक है।

वन्दना, श्रद्धा या कृतज्ञता, व्यक्ति का अपना निजी भाव है। वन्दित ने आज तक कभी न वन्दना की अपेक्षा की है, न श्रद्धा की आकांक्षा की है। वह तो देता है, लुटाता है, बखेर करना जानता है। वह नही चाहता, नही सोचता, नही देखता, कि मेरी बखेर को कौन ले रहा है ? वह किसके काम आ रही है ? वह मात्र देता है। यदि वन्दना की अपेक्षा कर बैठे, एक क्षण को भी, तो बस समझ लो सारा खेल मिट जायेगा। बनी-बनाई माला के मोती बिखर जाएगे। अहंकार जन्म ले लेगा।

परमश्रद्धेय, मुनि-शिरोमणि, जनवन्द्य श्री मायाराम जी म० ने विशुद्ध संयम की साधना की थी, अपने जीवन में। यही कारण है, कि परमश्रद्धेय और जनवन्द्य जैसे विशेषणों की अभिव्यक्ति जनता

के अपने शब्द हैं। उनकी साधना का मुनित्व, श्रद्धा का अर्घ समर्पित करने वाले और असि-प्रहार करने वाले में सदा समता का साधक था।

+ + +

भगवान् महावीर ने संसार को जो दृष्टि दी, वह विश्व की एक ही अद्वितीय दृष्टि है। उन्होंने परमात्मा को सातवें आसमान की विश्व-नियामक या नियंत्रक शक्ति नहीं माना। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मनुष्यमात्र को कहा था—"मानव ! तू किधर भाग रहा है ? कोई दूसरा तेरा कल्याण नहीं कर सकता। तू स्वयं ही ईश्वर है। तेरी आत्मा ही परमात्मा है।"

इस परमात्म-तत्त्व को समझाने के लिए उन्होंने आगे यह भी कहा—'कर्म' आत्मा का आंखों से न दीखने वाला महाबन्धन है। आत्मा उसी में बंधा हुआ है। कर्म तेरा भाव नहीं है। क्रोध, अभिमान, छल, हिंसा और असत्य संकल्प की भावोर्मियों से कर्म आत्मा को ढक लेते हैं। इन्हें हटा। तू वीतराग बन जायेगा। तब आत्मा, परमात्मा का अन्तर मिट जाएगा। अजन्मा परमात्मा तो तू ही है।"

भगवान् महावीर के इस कथन को श्री मायाराम जी म० ने अपने जीवन में पूर्णतः स्वीकार किया था। इस 'दर्शन' पर वे स्वयं चले थे तथा इससे उन्होंने जगत् को भी परिचित कराया था। तप और संयम में वे एकरस हो गए थे। यही कारण है, कि जैन समाज ने और मुनिसंघ ने उन्हें तप और संयम का 'पर्याय' माना था। तप-संयम की पूर्णता-हेतु ही समाज ने उन्हें अपना श्रद्धेय मान, अभिवन्दना कर, कृतज्ञता प्रकट की थी।

परन्तु वीतराग-पथ के पथिक श्री मायाराम जी म० का मन अपनी दीक्षा के ३५ वर्षों में कभी वन्दना करवाने के लिए ठहरा नहीं, क्षण-भर भी रुका नहीं।

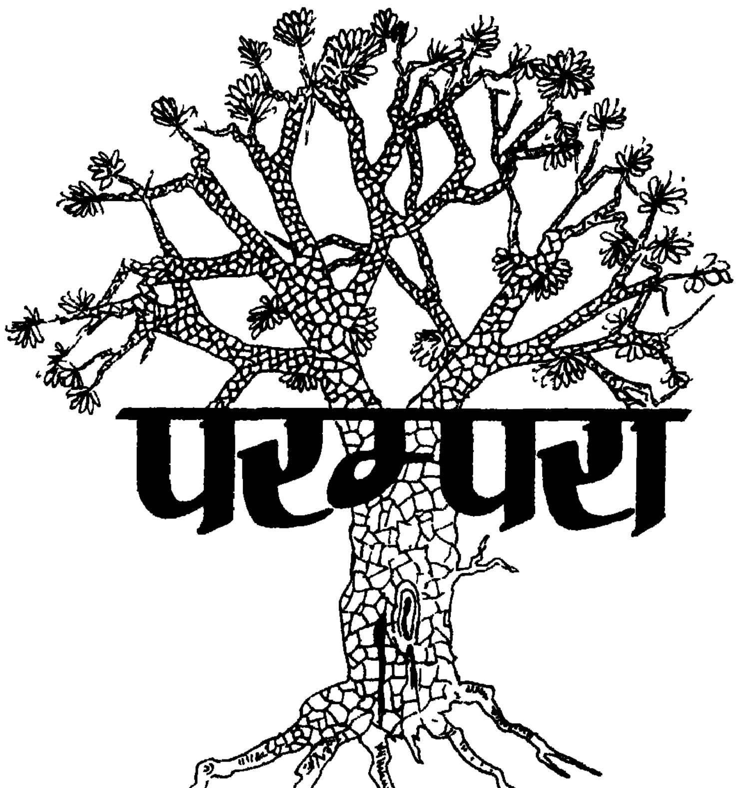
जिस अविनाशी वीतराग परमतत्त्व की श्री मायाराम जी म० ने ३५ वर्षों तक निरन्तर साधना की, उसी परमतत्त्व की हम अभि-

वन्दना करते हैं—केवल माध्यम हैं मुनि श्री मायाराम जी महाराज का जीवन-लेखन।

श्री मायाराम जी म० को हमारा वन्दन इसलिए भी है, कि यह हमारा कृतज्ञता-ज्ञापन है। हम इसलिए उन्हें अभिवन्दना कर रहे हैं, कि उन्होंने गांव-गांव, घर-घर जाकर व्यक्ति-व्यक्ति को छू-छूकर तप की अग्नि-शिखा पर बैठाया था। तप में भावुक मन असंयमी बन कर भाग न जाए, इसलिए संयम का संबल दिया था। इसी वन्दना को करने के लिए कवि का मन रोया था। उसने कृतज्ञतावश उन मुनि-चरणों में अपना मन बिछाया था। कहा था—

वन्दना के इन स्वरों में,
एक स्वर मेरा मिला लो।
अर्चना के रत्नकणों में,
एक कण मेरा मिला लो।




परम्परा

1

आदि गुरु : एक परिचय

आदि गुरु का यह परिचय महाप्राण मुनि मायाराम जी के जीवन-चरित-लेखन में प्रसंगवश करना अनिवार्य है; क्योंकि वे मुनि मायाराम जब केवल 'मायाराम' थे, तब से और 'मुनि मायाराम' बन जाने तक तथा बाद मे भी लम्बे समय तक उनसे जुड़े रहे है। मुनि मायाराम जी स्वयं उनके हृदय से आभारी थे। साथ ही उनके प्रति श्रद्धावनत भी थे।

मुनि गंगाराम जी मुनि रतिराम जी को पूरी तरह समझने के लिए पूरी पुस्तक की आवश्यकता है। वैसे इनके लिए यह कहा जाये, कि ये अनाम साधु थे—तो भी अतिशयोक्ति न होगी। यंत्र-मंत्र-वादी होते हुए भी, नाम और यशःकीर्ति की इन्होंने कभी आकांक्षा को जन्म ही नही लेने दिया था। ये किन कारणों से अपनी सम्प्रदाय से अलग हुए? क्यों एकांत में एकाकी रहना स्वीकार किया? क्यों पजाब व हरियाणा प्रदेश को अपना विचरण-क्षेत्र बनाया—नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना अवश्य है, कि ये किसी राजस्थानी जैन-मुनि-सम्प्रदाय के मुनि थे। अपना प्रदेश और प्रान्त छोड़ कर पूरा जीवन हरियाणा प्रान्त में लगा दिया। दोनों का देह-विसर्जन भी हरियाणा प्रान्त में ही हुआ है।

'दनौदा' ग्राम में श्री गंगाराम जी म० का और 'सुराना खेड़ी' में श्री रतिराम जी म० का स्वर्गवास हुआ। ये स्थान हरियाणा में अव-

स्थित हैं। उपरोक्त दोनों स्थानों पर मुनि-युगल की समाधि बनी हुई है। हरियाणा प्रान्त में गाँव-गाँव घूम कर देखा जा सकता है। विशेषत: रोहतक से जीन्द, बड़ौदा सुराना खेड़ी दनौदा, नरवाना और पटियाला के आस-पास का क्षेत्र, सभी जगह इस मुनि-युगल के चमत्कारों की श्रुति-परम्परा जीवित है। मुनि रतिराम जी के लिए यह स्पष्ट ज्ञात है, कि ये ज़िला सोनीपत (हरियाणा) के अग्रवाल कुलोत्पन्न, सम्पन्न जैन परिवार के थे।

इस मुनि-युगल का परिचय, शोध के बाद भी पर्याप्त-रूप में प्राप्त न हुआ। किन्तु व्यक्ति-परिचय की अपेक्षा से उनके चमत्कार-वादी होने का परिचय विपुल है। लगता है, उन्होंने 'अनामो' बने रहने का महाव्रत स्वीकार किया हुआ था। खान में हीरा रहता है। बाहर में वह छिपा रहता है। दिखाई नहीं देता। पर खोजी और पारखी उसे पा लेते हैं। पर उन्होंने पाने वाले को भी यही कहा, कि हमें अदृश्य ही रहने दो। हम जगत् को नहीं बताना चाहते, कि हमें जानो। हमें जानना है, तो यही कि करुणा से परिपूर्ण हो जाओ, तुम्हारा बाहर-भीतर सब कुछ सम्पन्न, समृद्ध हो जाएगा।

श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म० चमत्कार की जीवित मूर्ति थे। वे स्पष्ट-रूप से चमत्कारवादी थे, परन्तु करुणा-शून्य चमत्कार का प्रयोग वे कभी नहीं करते। वे जिसे चाहते, उसे पत्थर को दृष्टि से तोड़ देने वाले चमत्कार से चमत्कृत कर सकते थे। पर ऐसा उन्होंने कभी नहीं किया। औलिये, अघोरी, भैंरोपासक, कापा-लिक, मुल्ला व फ़क़ीर—सभी का उनसे सम्पर्क था। पर स्वयं ने मैली विद्या का कभी प्रयोग नहीं किया। सम्पर्कस्थ लोगों को भी वे कहते मैली विद्या विनाश करने वाली है; क्योंकि यह दूसरों के अहित की नींव पर स्थापित है। सिकोतरा विद्या और मूठ चलाने को भी वे अच्छा नहीं मानते थे। मूठ चलाने या फेंकने वालों का उन्होंने हमेशा निषेध किया। उनसे उन्होंने कहा—"ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, यंत्र—इन सब के मूल में मानव का हित मुख्य वस्तु है। एक का हित और दूसरे का अहित, इस तरह की समस्त मैली विद्याए नाश के कारागार से पैदा हुई हैं और इन विद्याओं का प्रयोग करने वाले अपने महाविनाश से बच नहीं सकते।"

विद्याओं को प्राप्त करने का मूल उद्देश्य यह कदापि नहीं है,

कि दूसरों की लाश पर खुशियों की खेती उगाई जाये। दुष्ट व्यक्तियों को रास्ते पर लाने के लिए भले ही इन विद्याओं का प्रयोग किया जाये। जब दुरात्मा सही रास्ते पर चल पड़े, वह समझ जाए तो अपनी प्रयोग की गई विद्याओं को समेट लेना चाहिए। उनके इन उदार-उदात्त विचारों से मनी विद्याओं के प्रयोग-कर्त्ता प्रभावित ही नहीं थे, अपितु समस्त जीवन के लिए उन्होंने मैली विद्याओं का विसर्जन कर, मुनि गंगाराम जी मुनि रतिराम जी को अपना धर्म-गुरु मान लिया था।

मुनियुगल के बारे में हमने कहा, कि वे चमत्कार की जीवित मूर्ति थे। उनके चमत्कारवादी परिचय की शताधिक घटनाएं हैं। हरियाणा प्रान्त की श्रुति-परम्परा में वे आज भी जीवित हैं। उनका अनामी एव यश:कीर्ति से बचे रहने का व्रत हो हरियाणा में, श्रुति-परम्परा से, उन्हें यशोर्जित एवं जीवित रखे हुए है।

जीन्द नगर की एक घटना बहुत हो प्रसिद्ध है। आज भी लोग उस तरह के साधुत्व की कल्पना कर साधु समाज के प्रति आस्थावान् हैं। घटना है:—

जीन्द में उनका एक अनन्य भक्त था। व्यापार करता था। कभी-कभी व्यापार-प्रसंग में देश छोड परदेश जाता। जूं-जूं दिन बोतते, मुनियुगल की याद दर्शन के अभाव में उसे बेचैन बना देती। एक बार वह व्यापार के प्रसंग से परदेश गया। बहुत दिन बीत गए। जब लौटा तो अपने घर तो मात्र सूचना भेजी, कि मैं आ गया हूं। पर स्वय घर न जाकर पहले मुनियुगल के चरण भेंटने पहुँचा। रात का समय था। बातचीत होती रही। रात सरकती जा रही थी। समय का पता न चल पाया। १२ बज गए। वार्ता पूरी हुई। मन ने निरात अनुभव की।

बातचीत करते-करते मन भर गया, तो घर जाने का विचार आया। गुरुयुगल के चरण छू कर कहा—"समय क्या हो गया होगा?"

श्री गगाराम जी म० ने आकाश निहारा। कहा—"१२ बज गए हैं। चाहो तो यहीं सो जाओ।" भक्त का मन परि-

वार की स्मृति में उलझ रहा था। बोला—"घर-परिवार में जाने को मन हो रहा है। पर रात का अंधियारा देख कर भय भी लग रहा है।"

मुनि गंगाराम जी बोले—"किसी को साथ भेज दूं ?" भक्त खुश हो गया। बोला—"पर इस समय किसे भेजेंगे ? यहां तो कोई आदमी भी नहीं है।"

"है तुम जाना चाहते हो तो भेजे देता हूं।" उन्होने आवाज दी। कमरे से एक सीधी सपाट मूर्ति-सी आती दिखाई दी। विनम्र अनुचर की तरह बोला—"आज्ञा कीजिए।"

"भक्त के साथ जाना है।"

"बहुत अच्छा।"

मुनि-युगल द्वारा भेजा अनुचर और भक्त दोनों चल दिए। भक्त का घर आ गया। दरवाज़ा बंद मिला। आवाज़ दी। सर्दी के दिन। सब सो चुके थे। मुनि-युगल की करुणा ने भक्त के मन में चिंतन का सूत्र दिया। सोतों को जगाना ठीक तो नहीं है। क्या किया जाए ? फिर चला जाए मुनि-युग्म के सान्निध्य मे ? तभी साथ आये अनुचर ने कहा—"दरवाज़ा बंद है। कुण्डी लगी है, तुम कहो तो मैं खोल देता हूं। और भक्त ने देखा—अनुचर ने हाथ बढ़ाया। उसका हाथ मकान की छत को पार कर गया। चौक में होकर आंगन में आया। स्वयं वहीं खडा रहा। भीतर से दरवाज़े की कुण्डी खोल दी। भक्त अन्दर चला गया। अनुचर लौट आया। इस दृश्य को देख कर भक्त भय-भीत हो गया और उसे बुखार चढ़ आया। प्रातः मुनियुगल के पास सन्देश गया। भक्त बीमार है। मुनि-युगल भक्त के घर पहुंचे, बोले—"एक तो साथ में आदमी भेजा। फिर भी डर गया। उसने तुम्हें डराया या कुछ न कहने जैसा कह दिया क्या ?"

भक्त—"वैसा तो कुछ नहीं हुआ। पर कुण्डी खोलने की उसकी प्रक्रिया ने मुझे डरा दिया है।"

"अपनों से डर कैसा ? यह अपना ही आदमी था। उससे

डरने की बात को मन से निकाल दो। बस तुम स्वस्थ हो।" मुनि के स्वस्थ कहते ही वह मुनियुगल के साथ-साथ चला और उनके निवास तक साथ ही चला आया।

मुनि गंगाराम जी मुनि रतिराम जी आकाश को ऐसे पढ़—जान लेते थे—जैसे चींटियों की पांत-सी अक्षरावली को। मंत्रों के बीजाक्षरों को देख कर वे कह दिया करते, यह मत्र काम का नहीं है, न सधेगा। इसको साधने में समय नष्ट मत करो। जब उस भक्त ने उनसे समय जानना चाहा तो आकाश को पढ़ा—जैसे घड़ी की सूइयाँ देखी हों—कह दिया था १२ बजे हैं।

मुनि-युगल से पूछा "आपने किस तरह—कहा था कि रात के १२ बजे हैं। आपके पास क्या आधार था ? उन्होंने कहा—"आकाश में छाया तारा-मंडल मिनट-मिनट की सही-सही साक्षी देता है। चाहिए, इनकी साक्षी को पढ़ लेने वाले की समझ।"

नमस्कार तो चमत्कार को :

श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म० की एक महत्त्वपूर्ण साथ ही ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करना अपेक्षित लग रहा है—

पटियाला में श्री जयन्तिदास जी म० विराजित थे। श्री जयन्तिदास जी म० ने अपने को तप की अग्नि में तपा-तपा कर कुंदन बनाने का भीष्मव्रत लिया हुआ था। उन्होंने संवत् १६०५ में गर्म जल के अधार पर लम्बी तपस्या का संकल्प कर, तप तपना प्रारंभ किया। पटियाला में आदरणीय श्री दौलत राम जी म० व श्री अमरसिंह जी म० आदि २८ सन्तों का समूह एकत्र हो चुका था। तपस्या करते हुए ८५ दिन बीत चुके थे। सन्तों के मन में सात्त्विक चिन्ता और श्रद्धा का वेग उमड़ रहा था। उनकी यशःकीर्ति पटियाला स्टेट में तो व्याप्त थी ही। अन्य स्टेट व दूर-पास के नगरवासी भी, जैनाजैन का भेदभाव भुला कर, हजारों की सख्या में तपस्वी मुनि के दर्शन करने आने लगे। पटियाला जैन संघ अभ्यागतों के आतिथ्य में तन-मन-धन से जुटा हुआ था। एक ओर सब कुछ हो रहा था।

नगर के कुछ साम्प्रदायिक विद्वेषी लोगों ने मिलकर पटियाला नरेश के कान भरे। कहा—"जयन्तिदास मुनि, मात्र तपस्या ही नहीं कर रहा है, इस तपस्या के पीछे तुम्हारा राज्य हथियाना, उनका मूल उदेश्य है।" कान का कच्चा राजा मान बैठा, कि मुनि जयन्तिदास की तपस्या चलते मेरा राज्य सुरक्षित नहीं रहेगा।

उसने बिना सोचे-विचारे नगर में घोषणा करवा दी—"पटियाला स्टेट से जैनसाधु तीन दिन के अन्दर-अन्दर चले जाएं। तीन दिन के बाद पूरी स्टेट में कहीं भी जैन साधु दिखाई देंगे, तो उन्हें बन्दी बना लिया जायगा।" साम्प्रदायिक लोगों का मनचीता हो गया। वे मन-ही-मन खुश हुए, कि जैन मुनियों की हम लोगों ने अच्छी शामत बनाई है। देखे अब कैसे रहेंगे? कैसे इनकी तपस्या चलेगी और कौन-कौन लोग आते हैं—दूर-पास से?

पटियाला जैनसघ ने यह घोषणा सुनी तो स्तब्ध रह गया। उसे लगा—पैर जमीन में गड गए है। अब क्या उपाय हो सकता है? बहुत सोचा। समाधान का सिरा हाथ लगता न दिखाई दिया। निराशा को पाट न सके। तीन दिन का समय! तपस्वी मुनि की गर्मजल के आधार पर तपस्या का ८५वाँ दिन! समाधान मिलना तो दूर, असमजस की वह घड़ी आई, कि जाए तो जाए वहां?

निराशा के अधेरे समुद्र में डूबे जैन-संघ को आशा की एक किरण दिखाई दी। जैनसघ या मुनि-सगठन के संघीय मामलो से दूर अपनी यत्र-मत्र और तत्र की साधना में रचे-पचे रहने वाले मुनि गगाराम जी मुनि रतिराम जी उस समय पटियाला से लगभग ३५ मील दूर समाना शहर में विराजित थे। पटियाला जैन-संघ उनकी सेवा में पहुँचा और निवेदन किया—"पटियाला नरेश ने जैन मुनियों के सम्बन्ध में जो घोषणा की है, उससे हम लोगों पर जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है। एक ओर महातपस्वी की ८५ दिन की लम्बी तपस्या और दूसरी ओर राजा की तीन दिन के अदर-अदर राज्य से बाहर हो जाने की घोषणा? मुनिप्रवर! यद्यपि आप सघीय मामलों से दूर है, परन्तु जैनत्व पर होने वाले प्रहार और राजा की क्रूर दृष्टि से हम लोगों की प्रतिष्ठा एव मुनियों के निर्मल यश

को बचा लेना आप जैसे समर्थ पुरुषों का ही काम है। कृपा करें और कोई रास्ता सुझाएं। जिस किसी भी प्रकार से हो हमारी रक्षा करें।" मुनि-युगल ने सुना। सोचा। उत्तर दिया—"सकट जैसी कोई बात नहीं है। संघ की प्रार्थना अस्वीकार भी नहीं की जा सकती। यद्यपि हमारी साधना अनुमति तो नहीं देती, किन्तु मुनियों के प्रति राजा की इस क्रूर घोषणा ने हमारे मानस को चुनौती दी है। आप लोग जाओ। किसी भी प्रकार की चिन्ता मत करो। हम आहार करके आते हैं। तुम सब तुरन्त चले जाओ। हम पटियाला पहुंच जाएंगे। तुम सब नगर के प्रवेशद्वार पर मिल जाना।"

संघ सोचता रहा। यात्रा करता रहा—

"मुनियुगल ने कहने को कह दिया, कि हम पटियाला पहुँच जायेगे। वे आते हैं—भोजन के बाद? लेकिन यह संभव कैसे होगा? इतना लम्बा रास्ता पैदल पार करके ये कैसे पहुँचेगे?" संघ का सोचना यथार्थ था। लेकिन मुनि गंगाराम जो, मुनि रतिराम जी ने संघ से अलग रहकर जो पाया था, उस अलौकिक विद्या में यह सब संभव था। सहज था। विकल्प का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। यह सब कार्य उनके लिए वैसा ही था, जैसे मनुष्य जब चाहे पलक बन्द कर ले और जब चाहे खोल ले।

संघस्थ लोग पटियाला नही पहुंच पाए और मुनि गंगाराम व मुनि रतिराम जी पटियाला के प्रवेश-द्वार पर पहुंच गए। विज्ञान का नियम है—प्रकाश पहले पहुँचता है, ध्वनि बाद में। संघ बाद में पहुंचा। मुनि पहले पहुंचे। प्रकाश और ध्वनि की गति में थोडा अन्तर होता है। पटियाला के संघस्थ लोग और मुनियुगल के पचहुँते के बारे में यही सब हुआ। संघ आया। खुशियों में भर गया। ज्वार-सा उठता उत्साह। जयनाद के नारों के साथ मुनि-युगल का पटि-याला में प्रवेश हुआ।

मुनियुगल का जयनाद के साथ नगर में प्रवेश होता देख; विरोधी लोगों का जैनों की खिल्ली उड़ाता अट्टहास गूँजा—"जैनों की अक़्ल को लक़वा मार गया लगता है। राजा ने तीन दिन के अन्दर राज्य की सीमा से बाहर चले जाने का आदेश दिया है। अगर इनकी अक़्ल को पाला न मारा होता, तो ये अपने गुरुओं

को इस तरह जयनाद के साथ नगर में प्रवेश न कराते ?"

मुनियुगल के पास जैनों के अतिरिक्त सभी प्रकार के लोग आते-जाते थे। उनकी विद्या का चमत्कार था, कि जैन-अजैन, मुल्ला, मौलवी कापालिक, फकीर अघोर-पंथी—सभी उनको अपना गुरु मानते थे। राजा के एक खानगी आदमी को बुलाया और राजा की घोषणा की तरह ही उन्होंने भी संयुक्त घोषणा की—

"राजा से कह देना। आज ही शाम तक अपनी घोषणा (आदेश) को वापिस ले ले। आज के बाद किसी जैन मुनि के लिए राज्य हथियाने की मिथ्या धारणा को मिटा दे। अगर वह अपना आदेश वापिस नही लेगा, तो आज रात के १२ बजे उसे पलंग-समेत पटियाला के किले के चौक में उलटा पटक दिया जायेगा। फिर उस वक्त राजा को कोई न बचा सकेगा।"

खानगी आदमी ने राजा को समझाया और बताया, कि "मुनि गंगाराम, मुनि रतिराम सचमुच ऐसा करने मे समर्थ है। तुम तुरन्त अपनी घोषणा वापिस ले लो। अगर मुनियुगल ने ऐसा कर दिया तो दुनिया में फिर तुम्हें कोई बचाने वाला नहीं मिलेगा।" विश्वासी व्यक्तियों द्वारा राजा को चेतावनी दिये जाने पर उसकी समझ ने करवट ली और उसने तुरन्त अपना आदेश वापिस ले लिया।

घोषणा में राजा ने कहलवाया—"जैनमुनि मेरे राज्य में कही आ-जा और ठहर सकते हैं। सूई और धागे तक का जिन्होंने त्याग किया हुआ है—उन जैन मुनियों से मुझे और मेरे राज्य को कोई खतरा नही है।"

श्री जयन्तिदास जी म० का घटनाक्रम आगे चलता है—८९वां तपस्या का दिन बीतते-बीतते उनका स्वर्गवास हो गया। वे स्वर्गवासी हो गए। तब राजा ने दूसरी घोषणा करवाई—"उनके शव पर राजदरबार की ओर से दुशाला ओढ़ाया जाये—मेरे राज्य में कही भी जैन मुनि का स्वर्गवास हो तो राजपरिवार की ओर से प्रथम दुशाला ओढाया जायेगा।"

स्टेटों का जब तक इतिहास रहा, तब तक यह दुशाला ओढ़ाए जाने की परम्परा निरन्तर चलती रही।

घटना कहती है, श्री गंगाराम जी म० श्री रतिराम जी म० जरूरत पड़ने पर विद्या द्वारा साधे और बांधे हुए अनुचर को, इस तरह के प्रसंगों में इस्तेमाल करते थे। मंत्रों का सत्य अक्षरों में नहीं, उनकी साधना में है। मन्त्र की सिद्धि अक्षरों की सिद्धि का सत्य नहीं है, अपितु साधना करने वाले की एकाग्रता का प्रत्यक्ष फल है। मंत्र सधते हैं। हजारों व्यक्तियों ने मंत्र जपे। पर सधे नहीं। उन्हें कुछ मिला नहीं। क्योंकर मिले? मिलता तो मंत्रों से भी वही है—जो योगी को योग से मिलता है। योगी योग से जो पाता है, उनका प्रयोग वह नहीं करता। क्योंकि चमत्कार दिखाकर किसी को रिझाना उसे इष्ट नहीं होता।

दृष्टि-सम्पन्न मन्त्रवादी भी 'सिद्धमन्त्र' से प्राप्त शक्ति का इस्तेमाल रिझाने या चमत्कृत करने के लिए नहीं करता। मुनि गंगाराम जी, मुनि रतिराम जी ने भी प्राप्त शक्तिबल का उपयोग रिझाने या आकर्षित करने के लिए कभी नहीं किया। क्यो करते? नाम, यश, प्रसिद्धि से वे कोसों दूर थे। जब कभी लगता था, कि सिद्धि-दर्शन से अभ्युदय सभव है, तो वे बड़ी खुशी-खुशी उसका प्रयोग करते। काम बन गया, अभिप्रेत सिद्ध हो गया, कि तुरन्त अपनी माया समेटी और फिर वर्षों के लिए अनाम बन चुप साध लेते।*

*साथ ही देखिये—'गुरु-युगल से भेंट', पृष्ठ 55

2

गुरु-परम्परा

मुनि-परम्परा एक ऐसा क्षितिज है, जिसे आंखे देख तो सकती है, पर पकड़ नही सकतीं। मुनित्व एक भाव है, भाषा नहीं। वह मौन है, वाचा नहीं है।

मुनिपरम्परा ऋषभदेवसे महावीर तक, महावीर से मुनि मायाराम तक विस्तृत है। आता है कहीं छोर पकड़ में? मुनित्व तो भाव है। भाव जीया जा सकता है, कहा नही जा सकता। किंतु हम कहने को ही तो बैठे हैं। इसको हम श्री मायाराम जी म० से थोड़ा पीछे से कहते हैं, जिससे पंजाब के स्थानकवासी मुनि-सम्प्रदाय का आलेख मिल सके।

आचार्य श्री अमरसिंह जी म० :

आचार्य श्री अमरसिंह जी म० पंजाब स्थानकवासी सघ के गौरवशाली, महिमा-मंडित आचार्य थे। उन से आज तक की मुनि-परम्परा में श्री हरनामदास जी म० की शिष्य-परम्परा ही हमारा प्रतिपाद्य है। इसे संक्षेप में यूं समझा जा सकता है—

श्री अमरसिंह जी म० का जन्म पंजाब प्रदेश के अमृतसर नगर में लाला बुधसिंह जी तातेड़ के यहां माता श्रीमती कर्मोदेवी की रत्नकुक्षी से सवत् १८६२, वैशाख कृष्णा द्वितीया को हुआ था।

पलक झपकी और खुली। ऐसे ही १५ वर्ष बीत गए। १६ वें

वर्ष के प्रारम्भ में माता-पिता ने इनका विवाह सुश्री ज्वालादेवी से कर दिया। श्री अमरसिंह जी ने कर्तव्य को मशाल की तरह, इस सब को स्वीकार किया।

समय सर्प की गति मे सरकता रहा। इस बीच दो पुत्रियां और तीन पुत्र आए। दो पुत्र बिजली की चमक की तरह आए और आँखों मे ओझल हो गए। तीसरा पुत्र आठ वर्ष तक माता ज्वाला देवी के घर-आँगन को किलकारियों से गुंजाता रहा। वह भी एक दिन सुकोमल पुष्प की पखुड़ियों की तरह बिखर गया। श्री अमरसिंह जी की पितृ-आँखें उसे अपलक देखती रह गईं—किंतु पुत्र उनकी आँखों से ओझल हो गया।

उसका ओझल होना था, कि अमरसिंह जी का मन उन्मना रहने लगा। पुत्र का राग वैराग्य में बदल गया। वैराग्य के रग में रगे मन को लेकर दिल्ली-स्थित श्रद्धेय श्री रामलाल जी म० के सान्निध्य में आगए। साधु को अंतर में जागा। वैराग्य-प्राप्त शिष्य मिल जाए तो साधु की खुशी का पारावार नहीं रहता। श्री रामलाल जी म० जब अमरसिंह जी के मन को पढ चुके, तब स० १८९८, वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन (चाँदनी चौक, बारादरी) में जिन-दीक्षा प्रदान की।

अपने वैराग्यमति मन को नवदीक्षित मुनि अमरसिंह जी ने अध्ययन मे डुबोया। स्वल्प समय मे, आगमग्रन्थों का अध्ययन, मनन, मंथन किया। साथ-ही-साथ समाज-सुधार और धर्म-प्रचार का कार्य भी करते रहे। पजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजपूताना इनका कार्यक्षेत्र रहा।

आचार्य पद :

श्री अमरसिंह जी म० की तीव्र बुद्धि और धर्माभ्युदय की उत्कृष्ट लगन के कारण ही मुनियों ने और तत्कालीन जैन सघों ने इन्हें संवत् १९१३, वैसाख कृष्णा द्वितीया की पावन वेला में आचार्य-पद देकर इन्हें अपना विधिवत् संघशास्ता मनोनीत किया। यह शुभ कार्य समारोह-पूर्वक दिल्ली बारादरी में सम्पन्न किया गया था।

इनके कार्यकाल में १२ व्यक्तियों ने जिन-दीक्षा का महाभिव्रत ग्रहण किया था। उनकी क्रमशः शुभनामावली इस प्रकार है—

१ श्री मुश्ताकराय जी म०	२ श्री गुलाबराय जी म०
३ श्री विलासराय जी म०	४ श्री रामबख्श जी म०
५ श्री सुखदेव राम जी म०	६ श्री मोतीराम जी म०
७ श्री मोहनलाल जी म०	८ श्री खेताराम जी म०
९ श्री रत्नचन्द जी म०	१० श्री खूबचन्द जी म०
११ श्री बालकराम जी म०	१२ श्री राधाकृष्ण जी म०

सम्प्रति पंजाब का मुनि-संघ उक्त १२ मुनियों के शिष्य-प्रशिष्यों का ही सुवासित उद्यान है।

आचार्य श्री अमरसिंह जी म० का जीवन-काल कुछ शेष था तभी मुनि श्री मायाराम जी म० जैसी विमल विभूति ने दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी दीक्षा से वे परम संतुष्ट हुए थे। उन्होने कहा था—अब पंजाब-मुनि-समुदाय एक संयमनिष्ठ मुनि से लम्बे समय तक सुवासित रहेगा।

अथ, इस महापुरुष ने धर्माभ्युदय-मूलक यशस्वी कार्यों को करते-करते ७६ वर्ष पूरे किए। और कहना चाहिए, जिस धरती की माटी में जन्म लिया, उसी धरती की माटी में अपनी काया की माटी को भी सं० १९३८, आषाढ शुक्ल द्वितीया के दिन समाधिपूर्वक विसर्जित कर दिया।*

आचार्य श्री रामबख्श जी म० :

आपने अभी पढ़ा—आचार्य श्री अमरसिंह जी म० के १२ शिष्य थे। उनमें श्री रामबख्श जी का चौथा स्थान था। इनका जन्म अलवर (राजस्थान) में संवत् १८८३, (आश्विन शुक्ल १५) में हुआ था। ये ओसवाल जैनों के लोढ़ा-गोत्रीय थे।

ये वैरागी मन लेकर जन्मे थे। बचपन बीता। युवा हुए तो

* विस्तृत परिचय हेतु देखें, आचार्य श्री अमरसिंह जी म० का 'जीवन-चरित्र' तथा 'पंजाब-श्रमण-संघ-गौरव' श्री अमरसिंह जी म०।

माता-पिता के आग्रह से विवाह करना पड़ा। किंतु वैरागी मन लेकर जन्मे-जाए रामबख्श जी ने विवाहिता को भी अविवाहित रहने का मंत्र दे दिया। वे भी वैराग्य से रंजिता हुईं। फलतः दोनों ने संकल्प किया--कि मुनि-व्रत स्वीकार करेंगे। इस हेतु वे राजस्थान की राजधानी जयपुर में विराजित आचार्य श्री अमरसिंह जी म० के पाद-पद्मों में पहुंचे। आचार्य श्री ने दोनों को संवत् १९०८ में जिन-दीक्षा-व्रत प्रदान किया।

जीवन से बंधी संगिनी आचार्य-द्वारा दीक्षित हो जाने पर संयम और तप साधना में सलग्न हो गई। श्री रामबख्श जी म० आगम व जैन-जैनेतर धर्मों के ग्रन्थों के अध्ययन और स्वाध्याय, मनन, चिंतन में डूब गए। जीवन के अनेक वर्ष किस तरह कैसे, एक के बाद एक अनंत अतीत के ग्रास बनते चले गए—इन्हें पता ही न चला।

मुनिसंघ ने इनके गहन-गम्भीर अध्ययन और अगाध ज्ञान का गांभीर्य देखा तो 'पंडित जी म०' से संबोधन दिया। यही तलस्पर्शी ज्ञान-गरिमा देखकर मुनिसंघ ने, आचार्य श्री अमरसिंह जी म० के स्वर्गस्थ हो जाने पर—इन्हें संवत् १९३९ ज्येष्ठ कृष्णा तृतीया के दिन मालेरकोटला (पंजाब) में मुनिसंघ का शास्ता-आचार्य घोषित किया।

महाप्राण मुनि श्री मायाराम जी म० ने भी इनसे ज्ञानार्जन किया था।

नियति की अदृश्य लीला देखिए। आचार्य-पद के २१ दिन बाद ही पंजाब का मुनि-संघ अपने संघ-शास्ता के शासन से वंचित हो गया।

संवत् १९३९ (ज्येष्ठ शु० ९) इनके स्वर्गारोहण की तिथि है।

इनके ५ शिष्य थे। श्री शिवदयाल जी म०, श्री बिशनचंद जी, म० तपस्वी श्री नीलोपद जी म०, श्री दलेलमल जी म०, एवं श्री धर्मचंद जी म०।

इन में तृतीय शिष्य का आलेख अभीष्ट है।

तपस्वी श्री नीलोपद जी म० :

इनका जन्म पंजाब प्रांतस्थ सुनाम नगर के लोढ़ा-गोत्रीय ओसवाल कुल मे, श्री मोहरसिह जी की धर्मपत्नी श्रीमती काहनुकु वर की पुण्य कुक्षी से संवत् १८७४ में हुआ था* ।

युवा हुए, विवाह हुआ। पत्नी आई, बिछोह हुआ। मन तपस्या में बंध गया। जब भी मन होता बेला, तेला, अठाई, पदरह-पदरह दिन का तप तपने बैठ जाते। मासखमण का महा-तपस्या गृही जीवन मे ही कर डाली। श्री रामबक्श जी म० का सान्निध्य मिला। उन्होंने एक वर्ष तक गृहस्थ जीवन मे रहते हुए ही साधु-जीवन का पालन करने को कहा। इन्होंने शिरोधार्य किया। जब घर में रह कर ही कुन्दन बन गए, तो दो अन्य साथियो (श्री दलेलमल जी व श्री धर्मचन्द जी) सहित श्रद्धेय-चरण श्री रामबक्श जी म० से सवत् १९१९, फाल्गुन मास में दीक्षा धारण की।

दीक्षा लेते ही फिर तपस्या में लग गए। पहले एक दिन तप, एक दिन आहार। इस क्रम को चलाया। कड़ी से कडी सर्दी मे भी अवस्त्र हो शीत परीषह जीतते। शरीर को कपा देने वाली सर्दी पड़ता पर ये रात्रि में अवस्त्र हो ध्यान लगाया करते।

साथ के मुनिजन कहते—ये मुनि ही नही है, नीलोपद तो तप-पुरुष है। तप का पर्याय है—मुनि नीलोपद। वे मुनियों द्वारा तप के पर्याय क्यों कहलाए ? निम्न चातुर्मास के तपस्या-पूरित आकड़े इस के साक्षी है।

अपने जीवन-काल में तपस्वी श्री ने कुल २५ चातुर्मास किये, जो निम्न प्रकार है—अलवर, नागौर, जयपुर, जोधपुर, नाभा,

* (क) तिन्ह हू की प्रसिद्ध माता कानु कुंवर
श्री मोहरसिंह तात, गुणी गण मानिये।
(ख) वेद-मुनि वसु सोम सवत् (१८७४) औ
फाल्गुन सित (शुक्ल) दसवीं गुरुवार जानिये ॥

नालागढ, जंडियाला, देहली, बड़ौदाग्राम, रोहतक, सियालकोट, बड़ौत में एक-एक। तथा जालन्धर मे ७, अमृतसर में २, पटियाला में ६ और मालेर कोटला में ३ चातुर्मास किये। प्रत्येक चातुर्मास मे वे एक मास का तप तो अवश्य करते थे। इसके अतिरिक्त कुछ चातुर्मासों में तप इस प्रकार किया—देलही चातुर्मास मे ८० दिन तप, ४० दिन आहार। बड़ौदा में ८४ दिन तप, ३६ दिन पारना। यहाँ पर तपस्वी श्री को मासखमण तप के २१वें दिन शरीर कष्ट हो गया, किन्तु कष्ट के होते हुए भी इन्होंने पूरे ३१ दिन का उपवास किया।

रोहतक में ८८ दिन तप व ३२ दिन आहार। पटियाला चातुर्मास में ९० दिन तप व ३० दिन पारना। मालेर कोटला में ९० दिन तप और ३० दिन आहार किया।

हाँसी (हरियाणा) में पौत्र शिष्य श्री मायाराम जी म० के रुग्ण हो जाने पर उनके स्वास्थ्य की कामना[1] में सब सन्तो के सामने पूरे जीवन के लिये बेले-बेले तप करने की प्रतिज्ञा कर ली।

तपस्विराज केवल छ: द्रव्यों (रोटी, पानी, खिचडी, कढी, छाछ, औषध) एव सब मिला कर कुल सात वस्त्रो का ही प्रयोग करते थे।

एक बार लुधियाना मे विचरण करते हुए पधारे। वहाँ पर आठ दिन का तप किया। पारना न करके सथारा कर लिया। समाज को बुला कर मरणोपरान्त किसी भी प्रकार का आरम्भ-समारम्भ करने का त्याग करवा दिया।

धरती पर ढूंढे से भी ऐसा तपपुरुष मिलना कठिन है। तपस्या उनके जीवन का सगीत था। साँस आये तो तप का संगीत, साँस जाये तो तप का संगीत। जीवन रहे तो तप का सगीत, जीवन जाये तो तप का संगीत। अन्त मे तप किया तो पारना न कर सीधा ही समाधि-व्रत को स्वीकार कर लिया। कहाँ है संसार मे ऐसे तप-पुरुष?

संवत् १९४४ फाल्गुन १४ को उनका स्वर्गवास हुआ। तो ऐसी पावन गाथा है—तपस्वी श्री नीलोपद जी म० की!

इनके एक शिष्य हुए—श्री हरनामदास जी म०।

---

१. देखे—पृष्ठ 113

गुरुप्रवर श्री हरनामदास जी म० :

पीछे हमने पढ़ा था—परम श्रद्धेय श्री हरनामदास जी म० महामना श्री मायाराम जी म० के दीक्षा-गुरू थे।

गुरू का प्रतिबिम्ब जब शिष्य के मन-बिंदु पर पड़ता है, तब शिष्य में पूर्णत्व के अंकुर फूटने लगते हैं। गुरुप्रवर श्री हरनाम दास जी म० अद्‌भुत मुनि थे—गुरु थे। उनकी निर्मल, निर्लिप्त आँखों में साधुत्व की साकार छवि के दर्शन होते थे। साधुत्व की छवि जब धूमिल हो जाती है, तब वह यश की आकाँक्षा से मन के बिम्ब पर कालिख पोतना प्रारंभ कर देता है।

—यह यश की, नाम की आकाँक्षा है ही ऐसा भाव, कि जिससे साधुता कलंकित हो जाती है। गुरु श्री हरनामदास जी म० सच्चे मुनि थे। उन्होंने अपने जीवन में सब से अधिक बल इसी बात पर दिया था, कि साधु अतीत हो जाए तब भी और वर्तमान रहे तब भी लोग उसके यश का ढोल न पीटते फिरें। यश व स्तुति की प्रति-ध्वनि ऐसी होती है, कि उससे साधु प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मुनि जहाँ प्रभावित हुआ, उसका एक रोम भी उससे स्पर्शित हुआ, कि उसकी साधुता भूलुंठित हुई। बस गुरु श्री हरनामदास जी म० ने यही न होने दिया।

चारित्र-चूडामणि महामुनि श्री मायाराम जी म० पर अपने गुरु के गुणों की छाया पड़ना स्वभाविक ही था। फलस्वरूप महा-मना भी इस से अस्पर्शित रहे।

उनकी इसी विशेषता का परिणाम है, कि उनके माता, पिता जन्मतिथि, दीक्षा-स्थान, आदि किसी प्रकार के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इसी कारण हम भी उनके जीवन के सम्बंध में अधिक कुछ नहीं कह पाएंगे। मात्र इतना ही, कि उनका जन्म रोपड़ (पंजाब) के ओसवाल परिवार में हुआ था।

कुछ व्यक्ति आते हैं और अनाम पृथ्वी से चले जाते हैं। आम लोगों की दृष्टि में वह व्यक्ति उल्लेखनीय नहीं होता। किंतु सत्य यह है कि वही मुनि, सच्चा मुनि या संत है जो यशाकाँक्षा-रहित अनाम

आता है, अनाम रहता है और अनाम ही चला जाता है। वही सर्वाधिक उल्लेखनीय होता है।

मुनि श्री हरनाम दास जी म० ने भी नाम की आकांक्षा नही की थी। वे अपने तप और संयम के भावों में ही सदैव खोये रहे।

कवि के ये शब्द, ऐसे ही महामुनियों के प्रति तो हमें श्रद्धावनत होने को उत्प्रेरित करते हैं—"हम तो उन्हीं सन्तों के हैं दास, जिन्होंने मन मार लिया।"

गुरु-प्रवर श्री हरनामदास जी म० के तीन शिष्य हुए—

१. चरित्र-नेता श्री मायाराम जी म० २. श्री जवाहरलाल जी म० ३. तपस्वी श्री शंभुराम जी म०।

२ व ३ का परिचय अगले पृष्ठों पर देखिये।

3

गुण-रत्नों की खान गुरुभ्राता

श्री जवाहरलाल जी म०

शिष्य और गुरु, गुरु और शिष्य का सम्बन्ध और दोनो में नेह-नाता —इससे हम सब परिचित हैं।

लेकिन गुरु और गुरुभ्राता का सम्बन्ध बडा ही निराला है। यह सुनने मे जितना निराला है, निभाने में, मानने मे, जानने में और व्यवहार में उतना ही उलझन-पूर्ण और टेढा भी है। उलझन-पूर्ण इसलिए, कि गुरु तो गुरु है। पिता, पिता है। शिष्य गुरु के प्रति समर्पित है। पुत्र पिता के लिए श्रद्धान्वित है। दोनो के सम्बन्ध बडे स्पष्ट है।

पर गुरुभाई के साथ कुछ और ही नाता है, वहां ईर्ष्या जन्म जाती है, तो उस पार तक न छोटा भाई बडे को छोडता है और न बडा छोटे को मुआफ करता है। अगर प्रेम जागता है, तो दोनों एक-दूसरे के प्रति कृतज्ञता से इतने भर जाते है, कि छोटा गुरुभाई बडे को, अपनी श्रद्धा में डुबो लेना चाहता है। बडा, छोटे को धड-कते दिल की गहराई में निमग्न कर देता है। उन दोनो के स्नेह-निमज्जन को बेचारा गृहस्थ नही समझ पाता, कि ये दोनों गुरु-शिष्य है या गुरुभ्राता ?

—वह इसलिए भी नही समझ पाता, क्योंकि उसका अनुभव होता है गृहस्थ-जीवन का। अत. उसे अनुभव कहता है—एक पिता के

दो पुत्र तो इस तरह समर्पित होकर रह नहीं सकते। इसलिए अवश्य इन दोनों का सम्बन्ध गुरु-शिष्य का है। गुरुभ्राता का कदापि नहीं।

मुनि-मूर्धन्य श्री मायाराम जी म० और श्री जवाहरलाल जी म० दोनों—ऐसे ही गुरुभाई थे। दोनों का एक दूसरे के प्रति ऐसा ही कृतज्ञभाव था! श्री मायाराम जी, श्री जवाहरलाल जी को और श्री जवाहरलाल जी, श्री मायाराम जी को—इसी कृतज्ञता के भाव से जानते, मानते बोलते और पुकारते थे।

परिचय-सूत्र :

इनका जन्म 'बड़ौदा ग्राम' में हुआ था। तब संवत् १९१३, ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी का शुभ दिवस था। माता श्रीमती बदामोदेवी जी। पिता चौ० रामदयाल जी। चौ० जोतराम और चौ० रामदयाल वंशगत-भ्राता थे। इन दोनों के पिता श्री भी सहोदर थे। अर्थात् श्री मायाराम जी और श्री जवाहरलाल जी के बाबा सहोदर थे।[1]

यह मायाराम जी और जवाहरलाल जी के सम्बन्धों का रहस्य है। दोनों परिवारों का प्रेम-सम्बन्ध परस्पर सटा-गुंथा हुआ था। दोनों की सुख-दुःख में साझेदारी थी।

जवाहरलाल जी तीन सहोदर थे। दूसरे दो के नाम थे—हिरदुलाल और गुणियाराम। बस इतने प्रारम्भिक परिचय-सूत्र को स्मरण रख लें।

जवाहरलाल आये कैसे ?

घर, बचपन में मायाराम जी और जवाहरलाल जी दोनों मित्र थे, वंशज भ्राता थे। जवाहर लाल जी का मायाराम से विचार आचार में सहयोग था। मायाराम जी ने जवाहरलाल जी को वैचारिक दीक्षा दी।[2] कालान्तर में जवाहरलाल जी ने जिन-दीक्षा को अपना संलक्ष्य बना लिया। उन्हें मुनि मायाराम जी का सान्निध्य इष्ट था।

माता-पिता ने जवाहरलाल जी का विवाह उस बचपन में

---

१ देखें—पृष्ठ 14

२ देखिये—दीप जले, दीप से...पृष्ठ 43

कर दिया था, जब व्यक्ति को विवाह का अर्थ भी ज्ञात नहीं होता।

इधर उनमें मायाराम जी द्वारा प्रदत्त निर्वेद के बीज पनपते रहे। उधर पिता ने देखा—जवाहरलाल के जीवन में यौवन की वासन्ती बयार चल पड़ी है। अब द्विरागमन कर दिया जाये। घर में वधू आयेगी। जवाहर का मन उसमें बध जाएगा। मन बंधेगा, तो घर को सम्भाल लेगा। खुद भी स्थिर हो जाएगा—गृहस्थ-जीवन के दायित्व की छाया में हमें निश्चिंतता मिलेगी।

उन्हे पता नहीं था, कि मायाराम जी का विचार-मन्त्र जवाहर लाल ने सिद्ध कर लिया है। वधू का आगमन उसके मन को बाँध नहीं पाएगा।

माता-पिता गौने की तैयारी में लगे। जवाहरलाल जी चरित-नायक मुनि मायाराम जी के सान्निध्य में पहुँचने का मौक़ा तलाशते रहते थे। मौका मिला। माता-पिता सोचते रह गए—

जवाहरलाल, श्री मायाराम जी म० के पास पहुंच गये। फिर द्विरागमन कैसा ? द्विरागमन स्थागित हो गया। घर वाले आए। पड़ौसी आए। जवाहरलाल के ससुराल वाले भी बेटी की चिन्तावश जवाहर को मनाने, समझाने आए। पर जवाहरलाल जी घर जाने को तैयार न हुए। सब हार-थक कर लौट गये। अन्ततः परिवार से अनुमति प्राप्त कर निस्पृह मुनि मायाराम जी की दीक्षा के दस माह बाद मार्गशीर्ष, कृष्णा पंचमी, सवत् १९३६ के दिन पटियाला में इन्होंने गुरु-प्रवर श्री हरनामदास जी म० के शिष्य और मुनि श्री मायाराम जी म० के गुरुभ्राता बन कर, सच्चे गुरु भाई का मोद पाया।

जीवन भर इन्होंने जगदुद्धारक मुनि मायाराम जी के कार्य को आगे बढ़ाने में तन-मन से योगदान दिया। इन्होंने अध्ययन से, तपस्या से स्नेह से, श्रद्धा से या गुरुभाई की मैत्री से पता नही कैसे एक विलक्षण दृष्टि पाई थी, जैसे चिमटी की बारीक नोक अपने इच्छित तत्त्व को पकड़ कर ला देती है, बाक़ी सब छोड़ देती है।

आकर्षण और महत्त्व की दृष्टि से इनके जीवन के संस्मरण-संदर्भ भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने मुनि मायाराम जी के है। हमने कहा—गुणग्रहण की दृष्टि इनकी बहुत तीखी थी।

संस्मरण:

एक बार इनका चातुर्मास रावलपिंडी में निश्चित् हो गया। वहां एक वृद्ध महिला ने आठ दिन की गर्म जल के आधार पर तपस्या की। वृद्धा को जब इन्होंने देखा, तो इनका गुणग्राही मन भी तपस्या के लिए उत्सुक हो उठा। 'वृद्धा आठ दिन तक गर्म पानी पीकर-तप कर सकती है, तो मैं युवा होकर तप करने में पीछे क्यों रहूं ? इन्होंने पहली ही खेत्र में एक मास तक गर्म जल के आधार पर तप कर डाला।

ऐसा उज्ज्वल गुण-ग्राही निरीह मन था उनका !

\+ \+ \+

कसूहन ग्राम (जीन्द) में आप का चातुर्मास था। वहां आपने १५ दिन का तप किया। पारणे का दिन आया। आप ने अपने सरल-सीधे शिष्य मुनि खुशीराम जी को आदेश दिया—आहार के लिए देख कर जाना। ऐसा न हो, पारणा समझ कर किसी गृहस्थ ने हमारे निमित्त से कुछ बना रखा हो और तुम ले आओ !

पन्द्रह दिन का उपवास ! भोजन के लिये किञ्चित् भी त्वरा नहीं। कितना धैर्यशील मन था उनका ! संयमीय मर्यादा का कितना सूक्ष्म विचार था उन्हें !

शिष्य मुनि खुशीराम जी आहार को गये। गुरुदेव की आज्ञा को ध्यान में रखकर वे अपरिचित घरों में गये। एक घर से उन्हें ठण्डे पूड़े मिले। देने वाले ने भक्ति-वश, मुनि के बस-बस करते हुए भी अधिक दे दिये। वे ले आये। श्री जवाहरलाल जी म० ने देखा—पूड़े ठण्डे हैं। उन्हीं से समतापूर्वक पारणा कर लिया। उसके बाद ११ दिन तक पेट में पीड़ा होती रही। उसे धैर्य-पूर्वक सहा।

भिक्षा में शुद्ध विधि से प्राप्त कष्ट-प्रद आहार से ही पारणा कर, शुद्ध संयमीय मर्यादा का पालन किया।

इसी कसूहन ग्राम में एक और बात बनी। स्थान बड़ा निर्वात, घुटनपूर्ण था। हवा का नाम न था—जहां वे ठहरे थे। पूरा चातुर्मास

अपने शरीर पर से गुजार दिया—जहाँ पसीना कभी सूखता तक न था।

\+ \+ \+

टूटे मनों को जोड़ना, समाज मे संघभावना और प्रेम की वृद्धि की कला, इन्होने सघ-निष्णात मुनि मायाराम जी से पाई थी या मुनि मायाराम जी ने जवाहलाल जी से पाई थी, यह निर्णय करना बड़ा कठिन है। लाहौर का प्रसग पढ़ें—

भारत-विभाजन से पहले लाहौर शहर में जैनों की बहुतायत थी। किसी कारण से कुछ व्यक्तियों के मन उलझ गए। उलझन इतनी, कि सुलझने का सिरा ढूढे से भी हाथ नही आ रहा था। सात वर्ष बीत गए, किसी सन्त का चातुर्मास भी न हुआ। कारण स्पष्ट था—लाहौर के सघीय मामले को निष्पक्ष भाव से सुलझाने वाला कोई मुनि न मिला।

अत में आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ने सुझाव दिया—"आप लोग श्री जवाहरलाल जी का चातुर्मास करा लें। सघ मे फैले फूट के बीज नष्ट हो जाएंगे। समस्या सुलझ जाएगी। सघ की प्रार्थना पर उन्होने लाहौर में चातुर्मास किया। टूटे मन जुड गए। समाज का सुधार हुआ। वहाँ के लोग अतीत भूल गए। मुनि जवाहरलाल जी के चातुर्मास का कवल वर्तमान उन्हे याद रहा। प्रेम हो गया। समाज जुडा। समाज मिल गया।

\+ \+ \+

ग्रामीण जनता को जगाने में उन्होने अपूर्व योगदान दिया। जि० जीन्द में एक गाव है, घोघड़िया। इसमे पहले धर्म-प्रचार का अभाव था। श्री मायाराम जी म० वहाँ पहुचे। उन्होंने देखा, कि यहाँ काम करने की जरूरत है। मुनि जवाहरलाल जी से कहा—"इस ग्राम को जगाओ।" जवाहरलाल जी ने गुरुभ्राता श्री मायाराम जी म० की बात को स्वीकारा। सहर्ष यह काम लिया—अपने ऊपर।

गाव मे जो कठिनाई थी, वह विकट थी। वहा मुनि के ठहरने के लिए कोई स्थान ही न था। कल्पना की जा सकती है, श्री मायाराम जी म० द्वारा आदेशित कार्य कैसे हो? गाँव से आधा

मील दूर ऊँचे टीले पर एक स्थान था—यूं कहना चाहिए, एक छोटा-सा कोठडा-भर था। श्री जवाहरलाल जी म० ने वहीं गांव के लोगों को जगाने के लिए ठहरना स्वीकार कर लिया। चातुर्मास की स्वीकृति भी दे दी। वृक्ष के नीचे वे ध्यान, स्वाध्याय, समाधि साधते। वर्षा में कोठड़ी उनका निवास होता, शेष समय वृक्ष के नीचे।

घोघड़ियां-वासी आज भी श्री जवाहरलाल जी म० को याद करते हैं। उनके जागने का और धर्म में स्थिर होने का प्रमाण यह है, कि उनके गांव से कोई मुनि चलते-चलते ठहर कर आगे बढ़ना चाहता है, तो तभी वे मुनि जवाहरलाल जी के उस आदर्श वर्षावास की याद दिलाते हैं और बार-बार उनके प्रति श्रद्धावनत हो जाते हैं।

वह कच्चा कोठडा अब गिर चुका है। अब वहां एक दीवार-मात्र ध्वस्त अवस्था में खड़ी है। वही दीवार मुनि जवाहरलाल जी के चातुर्मास की साक्षी भर रही है। गांव के लोगों का कहना है 'जवाहरलाल जैसा साधु कोई तो पैदा हो।'

\+ \+ \+

इन प्रसंगों के बाद एक विशेष पद का उल्लेख किया जा रहा है। तत्कालीन आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ने इनकी योग्यता, सयम-निष्ठा, अनुशासन आदि गुणों से प्रभावित होकर गणावच्छेदक का इन्हें शास्त्रीय पद दिया था। गणावच्छेदक का अर्थ है, मुनि-गण का प्रमुख। इस पद पर रहने वाले को पूरे गण के संरक्षण का दायित्व तो संभालना ही होता है, साथ ही यह भी होना है, कि वह मुनियों के गिरते मनों को रोककर संयम में स्थिर भी करें।

इन्होंने अपने जीवन की संध्या में मूनक, जि० संगरूर में स्थिर-निवास स्वीकार किया। मुनि श्री मायाराम जी म० के साथ-साथ राजस्थान, उ० प्र०, पंजाब, देहली आदि स्थानों के अतिरिक्त स्वतंत्र भी अनेक स्थानों में वर्षावास किए और गुरु-भ्राता श्री मायाराम जी म० के कार्य को आगे बढ़ाने में मन-प्राण लगाकर सहयोग किया। मूनक का स्थिरवास इन्हें पूर्ण समाधि में ले गया। शास्त्रविधि से संथारा किया। समय था माघ कृष्ण १४, संवत्

१६८८। मूनक में बनी प्रस्तर-समाधि आज भी इनकी साक्षी दे रही है।

इनके छः शिष्य थे। नाम क्रमशः १. श्री खुशीराम जी म०, २. श्री गणेशीलाल जी म०, ३. श्री बनवारीलाल जी म०, ४. हिरदुलाल जी म०, ५. श्री मुलतानचंद जी म०, ६. श्री फ़क़ीर चंद जी म०।

परिचय शिष्यों का :

एक —**श्री खुशीराम जी म०** : इनका जन्म उ० प्र० में हुआ। बचपन में माता-पिता न रहे। अतः मामा के घर पुर (पाँचो) ग्राम में रह रहे थे। ये जाति से जाट थे। गुरुभ्राता-युगल से इन्हें वैराग्य का चिंतन मिला। सं० १६४०, माघ शुक्ल ८ को इन्होंने दीक्षा-मंत्र लिया।

यहाँ एक बात विशेष है कि—इनका जन्म नाम—नानकचंद था। श्री मायाराम जी म० ने इनका मन पढ़ा तो उन्होंने पाया कि नानकचंद के स्थान पर इनका नाम खुशीराम अधिक उपयुक्त है। क्यों कि यह सदा प्रसन्न रहता है। मुनिसंघ में मुनि खुशीराम नाम से ही इन्हें भविष्य में जाना गया। ये स्वभाव से बालक की तरह सरल, कठोर तपस्वी, और सेवाव्रत तो इनके जीवन का महामंत्र ही था।

इनका मूनक में ही सं० १६८४, माघ चतुर्दशी को स्वर्ग-वास हुआ।

दो—**श्री गणेशीलाल जी म०** : इनका जन्म विक्रमी संवत् १६१४, मूनक में हुआ। जाति से ओसवाल थे। इन्होंने वयस्क होने पर दीक्षा ली। लेकिन गृहस्थ में रहते हुए इन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यही कारण है, कि गृहस्थ में रहते हुए भी मुनि-सा तप समय-समय पर करते ही रहते थे।

सं० १६५३ कार्तिक, शुक्ला १५ को इन्होंने तथा श्री मोहर सिंह जी ने देहली में साथ-साथ दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के तुरंत बाद ये तपश्चर्या में प्रवृत्त हुए। १७-१७ उप-

वासों का शास्त्रीय विधि से विशिष्ट तप किया। २१-२१ दिनों के उपवास भी किए। छाछ के आधार पर ३१ दिन की तपश्चर्या भी की। इन तपः-साधनाओं के साथ ही ये अभिग्रह भी करते रहे। ३८ घण्टे का संथारा करके वि० सं० १६६८ में मूनक में स्वर्गवासी हुए।

तीन—आदर्श सन्त श्री बनवारीलाल जी म० :

मुनिमना श्री मायाराम जी म० व श्री जवाहरलाल जी म० के मुनि-संघ में इन्हें आदर्श मुनि माना गया है। ये श्री जवाहरलाल जी म० के तीसरे शिष्य थे। इनका परिचय अनूठा है। ये खुद अनूठे थे।

इनका जन्म वि० सं० १६२६ मार्गशीर्ष मास में, जि० मुजफ्फर नगर के तीतरवाड़ा ग्राम में, माता—नन्हीदेवी की पुण्य कुक्षी से हुआ। श्री लखपतराय इनके पिता का नाम था। जाति से अग्रवाल जन थे। बचपन आंख मूंदते हंसी-खुशी और मोद से बीता। युवा होते ही बिना किसी विकल्प के विवाह कर दिया गया था। कुछ वर्ष गृही रहे। दो पुत्र और एक पुत्री के पिता कहलाए।

स्वाति की बूंद सीप में गिर कर मोती बन जाती है। वह समय स्वाति नक्षत्र का ही रहा होगा जब वैराग्य की बूंद गिरी। वह सयम का मोती बन गयी। तीन वर्ष तक इन्होंने अपने मन को तपाया और अंत में—स्त्री के राग, पुत्र के ममत्व, पुत्री का दुलार इन सब अदृश्य बन्धनों को तृण की तरह तोड़, रात के गहरे अंधेरे में निकल पड़े, संसार से विमुख रहने वाले मुनि के दर्शन पाने और खुद को उनमें समा देने के लिए। इनके गमन ने हमें बुद्ध के महा-अभिनिष्क्रमण को फिर से याद करा दिया।

मूनक में श्री बधावाराम जी म० विराजित थे—ये वहां पहुँचे। घर पहुँचा समाचार। चाचा उग्रसेन, इन की मां, स्त्री, पुत्र, पुत्री, सभी मिलकर आए, इन्हें लेने। पर इन्होंने फिर से घर जाने को स्पष्ट इन्कार कर दिया। गृहिणी इतनी क्रोधाभिभूत हुई, कि आंचल में दूध पी रहे बच्चे को इनकी गोद में फैंक दिया। पर

बनवारीलाल जी में उतेअना न जागी। मूनक के ला० खजानामल इस मान-मनुहार में साक्षी थे। उन्होंने बनवारीलाल और आए लोगों के बीच सेतु का काम करना चाहा। पर सब विफल होता-सा नजर आने लगा था। श्री बधावाराम जी म० यह कह कर प्रस्थान कर दिया—बनवारी! तुम्हारे पीछे अभी अनेक उलझनें है। तुम जब सुलझ लो, तब वैराग्य की बात सोचना।"

बनवारीलाल जी ने कुछ सोचा। फिर जाने को राजी हो गए। इन्हे अज्ञातरूप से यह विश्वास हो चला था, कि किसी तरह मां मान जाएगी। घर पहुंचे। कुछ दिन बीत गए। परिवार पच मरा। पडौस हार मान बैठा। धारणा बनी, कि बनवारीलाल को अब गृहस्थी में रस नहीं आयेगा। इसे जाने देने में ही भला है। तभी किसी ने सुझाया, इसकी एक आंख फोड दो। अंग-भंग होने पर मुनि-लोग इसे अपने सघ में नही रखेंगे। पर पुण्ययोग से ऐसा हो नही पाया।

उन्होंने जब यह सुना तो बोले—सर भी चला जाये, तब क्या है? एक आँख चाहते हो, तो दोनों ले लो। चोरी से ही क्यों, सामने से ले लो। तुम मुझे तन से साधु बनने से रोक सकते हो, मन से नही।

एक दिन सहसा फिर पहले की तरह ही वे चल पड़े। तब १९५३ वि० का संवत् था। श्री मायाराम जी जी म० का वर्षावास था—राणाओं के उदयपुर में। श्री जवाहरलाल जी म० का वर्षावास था—बेगू (जि० उदयपुर, राजस्थान)। बनवारीलाल, मुनि जवाहरलाल जी के पास पहुँचे। वैरागी बने तो भी आदर्श! साधु का-सा आचरण। देखे—

एक बार इन्होने एक गृहस्थ से पीने को पानी माँगा। गृहस्थ ने जान-बूझ कर गर्म पानी ला कर दिया। गर्मी का मौसम और गर्म पानो? दोनो की कैसी संगति? पर इन्हें जरा भी रोष न आया। स्नेह-पूर्वक एक बर्तन और माँगा तथा पानी ठण्डा करके पी लिया। गृहस्थ चकित-सा देखता रह गया।

कई बार गृहस्थों ने आप को शाक में नमक न दिया, कभी मिर्च न दी, तो कभी दोनों अधिक या दोनों गायब! ये जिक्र तक

न करते। पूछने पर कहते ठीक था—पेट भर गया। आप के इस समत्व को देखकर बेगू के प्रमुख श्रावकों ने श्री जवाहरलाल जी म० से प्रार्थना की—आप इन्हें अवश्य दीक्षा दें। निश्चय ही ये भविष्य में महापुरुष सिद्ध होंगे!

स्वयं श्री जवाहरलाल जी म० ने इन्हें दीक्षा के सर्वथा योग्य जान कर स० १९५३, मार्गशीर्ष कृष्ण २ को बेगू में ही दीक्षा प्रदान की गयी।

इन्होंने दीक्षा के तुरन्त बाद से सेवा और स्वाध्याय को अपना जीवनलक्ष्य बनाया। श्री मायाराम जी म० की इन पर असीम कृपा थी। थोड़ ही समय में ये छोटों के श्रद्धाधार और बड़ों के सलाहकार बन गए।

श्री मायाराम जी म० के बाद 'मुनि-मायाराम-गच्छ' में कुछ मुनियों के मन परस्पर टूट चले थे। किन्तु मुनि मायाराम जी की भावना का जीवंत प्रतिनिधि मानते हुए इनमें सब ने आस्था व्यक्त की और इन्हें एक मत से अपने सघ का सवत् १९९२ में होशियारपुर (पजाब) में गणवच्छेदक बना लिया।

जब से मुनि बनवारीलाल जी को गणावच्छेदक बनाया, तब से संघ में स्नेह और सद्भावना पल्लवित होती चली गई। सब मुनियों की इनमें अनन्य आस्था थी। श्रद्धा थी। इनका आदेश अतिम और सर्वोपरि माना जाता था। इतना था—समाज में इनका सम्मान और आदर।

दूर-दूर प्रांत प्रदेशों में विचरण करने वाले मुनि, इन से चातुर्मास के लिए अनुमति चाहते। ये अनुमति देते, साथ ही यह भी कहते—"संत का चार मास एक स्थान पर रहना केवल गृहस्थों से प्रशस्ति-गान सुनने के लिए ही नहीं है। इस कालावधि में धर्मोद्योत करना मत भूलना।"

वे अक्सर ही बडी से-बडी बात बड़े साधारण ढंग से कहते थे। कहने के इस साधारणीकरण ने मुनियों के मन में जादू का असर किया। हर वर्ष मुनियों के समूह अपने गणावच्छेदक के दर्शनार्थ आते। अपना वर्षाकालीन अनुभव सुनाते। इस तरह फिर

से सभावना को, उनके सान्निध्य में पहुंने पर नया बल और उत्साह प्राप्त होता था।

इन्होंने अपने जीवन के चौथेपन को मूनक (पजाब) में बिताया था। वे अशक्त हो चुके थे परन्तु इनकी संघ-भावना युवा थी। बडी-से-बडी बात सहसा और अलौकिक ढग से कहने के पीछे दृढता और निश्चय की गहराई होती थी। एक दिन (सवत् २००५, वैशाख शुक्ल ५) उन्होंने धीरे-से कहा—"आज के बाद मैं पेयवस्तु ग्रहण करूगा। चबाकर खाया जाने वाला भोजन अब मैं आखिरी साँस तक न लूगा। आठ महीने (पौष शुक्ल ६) तक यह क्रम चलता रहा।

तपस्या और विचारों की मत्री उनका जीवन-प्राण बन गये थे। वे अक्सर यह कहते थे, कि बिना मन की, बिना आस्था की तपस्या निर्जरा के स्थान पर कर्मबंध का कारण बन जाती है। तपस्या के प्रति उनके मन मे जो अटूट आस्था थी, शायद उसका प्रतिनिधित्व कवि कर पाया है—

आदमी की साँस तप के लिए है,
आदमी का जिस्म हित के लिए है।
आदमी खुद के लिए जीता नही है,
आदमी की ज़िंदगी सब के लिए है।

इसी सवत् २००५ में जीवित रहते मृत्यु का इन्होंने आह्वान किया था। ११ दिन तक मृत्यु-निमत्रण (संथारा) चला। इस निमत्रण-वेला मे २२ मुनि आपकी सेवा में समर्पित थे।

एक रात श्री मदनलाल जी म० व पूज्य गुरु महाराज (योगिराज श्री रामजीलाल जी म०) ने इनकी वैयावृत्य करनी चाही। इन्होने नकारात्मक सकेत किया। मुनिराज बोले—ये चरण हमे फिर न मिलेगे, सेवा कर लेने का अनुग्रह करे।

तभी उत्तर मिला—तुम शरीर का मोह करते हो? शरीर का मोह कैसा? मैंने सयम का सार इस शरीर से निकाल लिया है। अब यह खाली पात्र है। वस्तु-रहित है। देखते हो न? दोने से

वस्तु को ग्रहण कर व्यक्ति कितने निस्पृह भाव से उसे फेंक देता है। बस ऐसा ही समझो। मोह तो बन्धन है ! यह उचित नहीं।

तो श्री बनवारीलाल जी म० के अपने शब्दों में—सार-रहित, रिक्त पात्र (शरीर) को माघ कृष्ण २, सं० २००५, रविवार को मध्याह्न १-३० बजे उन्होंने छोड़ दिया। उनकी इस महा-निद्रा को जनता ने स्वर्गवास कहा था।

गणावच्छेदक श्री के पीछे दो शिष्य रहे—

१—श्री जीतमल जी म० : (परिचय उपलब्ध न हो सका)

२—श्री टेकचन्द जी म० : स्वानामधन्य श्री टेकचन्द जी म० इस समय मुनि-संघ के वरिष्ठ मुनिराज हैं। मधुर-स्नेह-शील स्वभाव, हर छोटे-बडे के लिये इनके हृदय में स्थान है। आगमज्ञ हैं। स्थविर हैं। जन्म सं० १९६० में रिढाना ग्राम (हरियाणा) में हुआ। पिता—ला० शीशराम जी जैन व माता श्रीमती नन्दी देवी थे। सं० १९८२, जीन्द नगर में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि-संघ आप से अनेकों आशा रखता है।

इन के शिष्य है—

(i) **श्री भागचन्द जी म० :** इनका जन्म बिठमड़ा ग्राम (हरियाणा) में जाट-वंश में हुआ। ये स्वाध्याय-प्रिय है। इनकी कुछ पुस्तके भी प्रकाशित हुई हैं।

चार—**श्री हिरदुलाल जी म० :** ये श्री जवाहरलाल जी म० के चतुर्थ शिष्य एवं लघु भ्राता थे। जन्म : संवत १९१५, वैशाख कृष्णा १०, स्थान बडौदा। दीक्षा : १९५४, माघकृष्णा १२। इनको मुनि श्री मायाराम जी म० द्वारा दीक्षाव्रत प्रदान किया गया। ३२ वर्ष तक दीक्षाव्रती रहे। स्वर्गवास : सवत् १९८६, भाद्र मास, मूनक (पंजाब) में, हुआ।

पांच—**श्री मुलतानचन्द जी म० :** श्री जवाहरलाल जी म० के ये पाँचवें शिष्य थे। जन्म : बड़लू (मारवाड़ : राजस्थान)। ये ओसवाल जैन थे। इ होंने यौवन के प्रवेश-द्वार की उथल-पुथल से भरी घड़ी में संयम में प्रवेश किया। संवत्-१९५६ इनका दीक्षा-संवत्

है। इनके साथ-साथ इनकी पूज्य माता भी दीक्षित हुई।

ये तीव्र बुद्धि के धारक मुनि थे। दीक्षा के कुछ ही अनन्तर पंडित कहलाने लगे थे; किन्तु संयोग कुछ ऐसा बना—होशियारपुर के चातुर्मास में ये रुग्ण हो गये। उपचार किया गया, पर रोग शान्त न हुआ। अन्ततः समीपस्थ सन्त आप को डोली-द्वारा लुधियाना ले आये। वहाँ उपचार की कुछ आशा थी। उस समय सन्तों की संयमीय दृष्टि पाठक देखें--जिन बाँसों की डोली बनाकर सन्त उन्हें लुधियाना लाये थे, उन बाँसों को श्री गणेशीलाल जी म० वापिस होशियारपुर स्वयं लौटा कर आये।

लुधियाना में भी श्री मुलतान चन्द जी म० स्वस्थ न हो सके। वहां उनका सं० १९६७ में स्वर्गवास हुआ।

(i) इनके एक शिष्य श्री मेलाराम जी म० हुए। जन्मना ये अग्रवाल थे। कपूरथला (पंजाब) में श्री जवाहरलाल जी म० के वरदहस्त से इन्होंने सं० १९५९, माघ शुक्ल ग्यारस को दीक्षा ग्रहण की।

मूनक (पंजाब) में सं० २००३ में ये स्वर्गवासी हुए।

छः—**तपस्वी श्री फ़क़ीरचन्द जी म०** : इन्हें श्री जवाहरलाल जी म० के छठे शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ।

जन्म : संवत् १९४६, फाल्गुन मास में दनौदाकलाँ, हरियाणा में हुआ। जन्मना अग्रवाल जैन थे। इनकी पूज्य माता श्रीमती मामनी देवी जी व पिता श्री पोरुमल जी जैन के नाम से सम्मानित थे।

संवत् १९७४, मार्गशीर्ष शुक्ल ९ को कैथल शहर में दीक्षाभिमन्त्र प्राप्त किया। मुनि-जीवन स्वीकार करने के पश्चात् इन्होंने अपने लिये तप का मार्ग स्वीकार किया। दर्शन के धरातल पर ठीक ही कहा गया—मुनि और तप का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इसलिये तप को मुनि से तथा मुनि को तप से पृथक् किया ही नहीं जा सकता।

श्रमण-संस्कृति का मूलाधार तप है। चित्त-विशुद्धि व कर्म-

निर्जरा का यह महामार्ग है। तीर्थंकरों ने इस मार्ग का स्वयं आचरण किया और जब वे अपने महालक्ष्य पर पहुंच गये, तब उन्होंने दूसरों को इस पर चलने हेतु सम्प्रेरित किया। इसके हार्द को समझ कर, धन्य कुमार जैसे सुकोमल राजकुमार तप के अप्रतिम उदाहरण बने। भगवान् महावीर ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा—धर्म के तीन अंग है—अहिंसा, संयम और तप। अर्थात् तप के अभाव में धर्म अपूर्ण है।

भारत की धर्मधरा पर तपस्वी ऋषि-मुनियो की सुदीर्घ परम्परा है। उसमें श्री फ़क़ीरचन्द जी म० का नाम अत्यन्त गौरवास्पद है। पजाब, हरियाणा, देहली, उत्तर-प्रदेश—कही भी हम देखे—जनता की जिह्वा पर उनके लिये 'तपस्विराज' शब्द मिलेगा। यह इसलिये, कि मुनि फकीर चन्द जी ने अपना पूरा जीवन तप की नौका में विहार करते हुए व्यतीत कर दिया। इनके तप के आंकडो मे २१ दिन का दीर्घ उपवास, ग्यारह दिन की औपवासिक लडी भरना, उल्लेखनीय है। इसी के साथ चातुर्मास काल मे कभी दो-दिन के अन्तर से तो कभी एक दिन के अन्तर से आहार ग्रहण करना मुनि श्री को इष्ट होता। तप की अन्य भी कई विधियाँ इन्होने स्वीकार की, जिन में एक यह भी थी—शैत्य-तितिक्षा व ग्रीष्म-ऋतु मे आताप लेना।

तपस्वी श्री फ़कीरचद जी म० ग्रीष्मकाल मे १२ बजे से ४ बजे तक सूर्य की दाहक किरणों के नीचे आसन लगाकर बैठते। ठिठुरा देने वाली हेमन्त ऋतु में सारा जग, जब कपड़ो में लिपट जाता था, तब वे आसन लगा, अवस्त्र शीत का स्वागत करने के लिए आंखे मूदकर बाहुबली की तरह अचल-अकंप हो जाते। यही कारण है उन्हे सबने मिलकर तपस्विराज कहा था।

यह उनकी तपस्या का एक रूप था। इसके अतिरिक्त वे कोई एक सकल्प (अभिग्रह) कर लेते और अपने को नियति के हाथों सौंप देते—यह मानकर, कि अगर नियति में है तो सकल्प पूरा हो जाएगा, अन्यथा तपस्या ही चलती रहेगी। अभिग्रह व्रत ठीक वैसा ही होता है, जैसे एक नाविक अपनी नाव को जानबूझ कर भवर में

जाने देता है—नियति भंवर से बचाना चाहे तो बचती है वह नाव, अन्यथा नहीं।

इस कठोर तपःक्रम की निरन्तर साधना करते हुए सं० १९८६ में तपस्वी श्री ने एक और महाभिग्रत स्वीकार किया। वह था— "मैं समस्त खाद्य और पेय पदार्थों में से केवल १० वस्तुयें ही ग्रहण करूंगा। अन्य सभी वस्तुओं का आजीवन परित्याग करता हूँ।" उनके ग्रहण योग्य १० वस्तुये ये थीं—रोटी, जल, छाछ, दाल, कढ़ी, खिचड़ी, दलिया, दही, घी, औषध। ३३ वर्ष तक यह महाभिग्रत निरन्तर चलता रहा। हम देख सकते हैं—उनके जीवन में कितना महान् त्याग था।

बहुधा देखा गया है—तप करने वाले तपस्विराज रुक्ष उत्तेजित हो जाते हैं। तन से ही नहीं व्यवहार से भी। परन्तु इस तपस्विराज के विषय में यह बात न थी। वे स्वभाव से परम सरस थे। निकट से देखने वाले जानते हैं—उनके जीवन में कितनी मधुरता घुली थी।

तपः साधना के साथ उनके जीवन का एक और अद्भुत गुण था—सेवा! मूनक (पंजाब) में विराजित सात वृद्ध गुरुजनों की उन्होंने लम्बे समय तक आदर्श सेवा की। सुना जाता है—तपस्वी तप करता है, तो वातावरण में सुगन्ध व्याप्त हो जाती है। इस तथ्य को सामने रखते हुए हम कहना चाहते हैं—तपस्विराज के जीवन से प्रतिक्षण गुणों की मनोज्ञ सुगन्ध आती रहती थी। सरलता की वे प्रतिमूर्ति थे। उनमें सरलता और सेवा का तप के साथ अद्भुत मिश्रण था। उपरोक्त गुणों के कारण उनके जीवन में आनन्द-नद बहता था। जन-जन की श्रद्धा के वे आधार थे।

इन महामना श्रद्धेय तपस्विराज* ने सं० २०१९, पौष कृष्ण ७ को टोहाना नगर (हरियाणा) में समाधि-पूर्वक प्रतिक्रमण सुनते-सुनते अपनी नश्वर देह का विसर्जन किया।

वहाँ पर इनकी स्मृति में सुन्दर स्मारक निर्मित हुआ है। तपस्वी श्री के अन्तेवासी शिष्य श्री सहज मुनि जी म० हैं।

* विशेष परिचयार्थ देखें—मुद्रित जीवन चरित : सरलता के महास्रोत।

श्री सहज मुनि जी म० : इनका जन्म लेहल कलाँ (पंजाब) में ला० बाबूराम जी के घर हुआ। वैराग्य भाव से इन्होंने सं० २०१०. कार्तिक शुकल १० को मूनक में दीक्षा ग्रहण की।

ये तरुण तपस्वी मुनि हैं। तप: क्षेत्र में भारत के समस्त मुनि-संघ में ये उच्चस्थ हैं। इन के तप के कुछ आँकड़े निम्न प्रकार हैं—प्रतिवर्ष चातुर्मास में क्रमशः २१, ३१ ६२, ५३, ६३, ६२, ५७, ५३, ५४, ३७ दिनों की दीर्घ तपस्यायें आपने की है। वर्तमान में भी इनका तप: क्रम चलता रहता है। तपस्या के साथ-साथ इनमें सेवा का भी अद्भुत गुण है। स्व० तपस्वी श्री फ़क़ीर चन्द जी म० की इन्होंने महान् सेवा की। वर्तमान में श्री टेकचन्द जी म० की सेवा में सलग्न हैं।

आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म० ने इन को 'जैनरत्न' की उपाधि से गौरवान्वित किया है।

इनके एक शिष्य—श्री सुशील मुनि जी है।

4

गुप्त तपस्वी :

श्री शंभुराम जी म०

महामना श्री मायाराम जी म० के दूसरे गुरुभ्राता, व गुरु श्री हरनामदास जी म० के तीसरे शिष्य थे—श्री शभुराम जी म० !

जन्म : उत्तरप्रदेश-स्थित अमींनगर सराय में हुआ । पं० सोहन लाल को इनके जनक होने का गौरव प्राप्त था ।

योग्य आयु होने पर विवाह हुआ । पुत्र जन्मा । शंभुराम का हृदय पितृत्वसुख से प्रमुदित हुआ । लम्बे समय के बाद सोहनलाल के वंश में बालक की किलकारियां सुनाई दी थीं । परिणामतः सभी का स्नेह पुत्र पर भ्रमर की तरह गुंजारित होने लगा । शंभुराम मुदित थे । वंश-परिवार का हर व्यक्ति उल्लसित था ।

एक लोक-श्रुति है—'अत को नेह टूटण के वास्ते' । पुत्र पर सब के अत्यधिक स्नेह की रज्जू, एक दिन सहसा टूट गई ! सर्वत्र गहन उदासी छा गई—जैसे सोहनलाल के वश में मरघट ही उतर आया हो । परिवार के स्नेही जनों का जमघट बिखर गया ।

…और शंभुराम को पुत्र की मृत्यु ने निर्वेद, निसंगता की महाशून्यता मे पाट दिया । पुत्र की बंद आंखें, पिता की आंखें खोल कर वैराग्य का अमृत भर गई ।

इस पारावार-रहित जगत् में जीवन सत्य है, तो मृत्यु परम

सत्य है। पत्थर टूट जाते हैं, पहाड़ सरक जाते हैं, धरा धस जाती है, गंगा का प्रवाह बदल जाता है, यमुना दिशा बदल लेती है; किंतु मृत्यु का सत्य शाश्वत है। मृत्यु ही वैराग्य की जननी है। अतः वैराग्य का बिरवा भी अमर है।

निसंगता की महाशून्यता शंभुराम जी को निर्वेदी बना गई। शंभुराम, जंगलों, पहाड़ों, शून्यागारों में भटकने लगे। साधुओं के अखाड़ों पर गए। मठों से उठते धूओं में जाकर देखा और सोचा पुत्र की मृत्यु से आहत मन इस धूएं में रम कर सबल बन जाएगा। परंतु ऐसा कुछ हुआ नहीं।

मठों के धूओं के वर्तुलों में घुटकर उनकी आंखें कड़वी तो हुई पर उन्हें जिसकी तलाश थी, वह उन्हें कहीं न मिला। जब मिला तो अपने ही अन्तर में मिला। निमित्त थे, गुरु श्री हरनाम दास जी म०, साक्षी थे मुनि श्री मायाराम जी म०। तब संवत् १९४५ था।

गुरु श्री हरनामदास जी म० के चरण भेटकर साधना में डूबने का समय आया। साधना शुरू हुई। पुत्र की मृत्यु से जन्मा वैराग्य इनके जीवन में ऐसे अवतरित हुआ, जैसे सूर्य का महाप्रकाश ओर-छोर-रहित पृथ्वी पर बरस कर उसके अणु-अणु में प्रवेश पा जाता है।

मुनि शंभुराम में एक विशेषता बड़े ग़ज़ब की थी। कहते हैं—महान् दार्शनिक सुकरात यूनान की राजधानी एथेंस में, दिन के बारह बजे हाथ में लालटेन लिए नगर के दोराहे-चौराहे पर, गली-गली में बाजार-बाजार में तेजी से घूम रहे थे। महान् दार्शनिक को यूं लालटेन लेकर अधीरता से घूमते देखा गया, तो सड़क पर उन्हे कुछ व्यक्तियों ने रोका और पूछा—"आप दिन में लालटेन लेकर क्या ढूंढ रहे है?"

सुकरात का छोटा-सा उत्तर था—"मैं सच्चे इंसान को ढूंढ रहा हूँ।" दार्शनिक ने इंसान की खोज में 'सच्चा' विशेषण जोड़कर अपनी खोज का रहस्य उद्घाटित कर दिया।

मुनि शंभुराम की विशेषता को खोजने के लिए लेखक की यह विवशता है—'शभुराम जैसा तपस्वी साधु समाज में लालटेन से खोजने पर भी मिलना मुमकिन नही लग रहा है'—यह कहने की।

तप तो अनेक मुनि करते है। तप के लिए ही मुनि ने जन्म लिया है। किंतु शंभु मुनि का तप शिव की तरह महान् था। नाम और यशःकीर्ति के गर्व से रहित। शभु मुनि के तप की राह गोपनीय थी। कैसे ? वे आहार का एक ग्रास कभी दो ग्रास लेते। समाज मानता, आज श्री शभुराम जी म० ने आहार ग्रहण कर लिया है। उनसे पूछा जाता—आज उपवास तो नही है ? उनका उत्तर होता—नहीं।

एक बार उन्होंने १० दिन की तपस्या की। इन तप-दिवसो में जब एकांत में बैठकर वे आत्मवार्ता करते तो उन्हे उत्तर मिलता—"शभु ! यह भी कोई तप हुआ, कि जिसे सब जान ले ? ज़रा-सा तप उसे सब लोग गाते फिरे। यदि इस प्रशमा मे अह की लपटे उठने लग गई तो तपस्या का सारा सारतत्त्व जलकर भस्म न हो जाएगा ?"

अस्तु तत्क्षण शभुराम जी ने गोपनीय तप करना प्रारभ कर दिया। इस तरह प्रकट में वे तप नही करते। कहने के लिए तप नही था, पर सचमुच मे तप होता था। कहा जाने वाला, प्रकट हो जाने वाला तप वे नही करते। जो प्रकट नही होता। एक-ग्रासी-दो-ग्रासी-पंचग्रासी—इस तरह का तप उन्हे इष्ट था। तप का प्रकट हो जाना अनेक बार कर्मबंध का कारण हो जाता है, किन्तु गुप्त तपस्या कर्मों की निर्जरा ही करती है।

इस प्रकार शभुराम मुनि की सतस्त साधना मौन और गुप्त थी। प्रकट होने में उनका विश्वास नही था। वे अपनी तपस्या का किसी को साक्षी नही बनाना चाहते थे। वे अपने मन की निर्मलता या तप की विमलता के स्वयं ही साक्षी थे। उनके इस स्वयं-साक्षी भाव के तप ने, उनके अन्तर को निष्पाप और उज्ज्वल बना दिया था। यही कारण है, कि उन्होने अपनी आने वाली मृत्यु के सात दिन पहले ही, साथ रहने वाले मुनियों को जोधपुर (राज०) में कहा

था—आने वाला सातवाँ दिन मेरे जीवन का अंतिम दिन होगा—और उन्होंने समाधिव्रत स्वीकृत कर लिया।

उनकी समाधि पूरी हुई। वे अदृश्य हो गए। तब कवि का अन्तर अकुलाया, उसने कवि मन को 'समय' बनाकर कहा—

समय ठिठक कर पूछ रहा है,
कहाँ गया वह चिरपरिचित स्वर ?
धरती से अमृत का पनघट,
क्या अंबर ले गया चुराकर ?

5

महामना की शिष्य-परम्परा :

आगम-निधि

श्री नानकचंद जी म०

श्री नानकचंद जी म०, महाप्राण मुनि श्री मायाराम जी म० के प्रथम शिष्य थे। इनके जीवन में सब कुछ अद्वितीय था।

ये बड़ौदा के न होकर भी बड़ौदा के थे। बड़ौदा ग्राम में इनका जन्म हुआ था। किसी भी व्यक्ति के जीवन परिचय में माता और पिता का परिचय जोड़ना आवश्यक माना जाता है। इसी दृष्टि से देखें, नानकचंद जी कितने अनोखे हैं।

बड़ौदा में चौ० अखेराम चहलवंश के जाट तपस्वी पुरुप थे। खेती में उनका सांस, मन, प्राण सभी कुछ रंगा-रचा था। खेत के काम से निबृत्त हो, भगवद्-भक्ति का आनंद अनुभव करते थे। जमींदारी करते हुए उनकी मान्यता यह रहती थी, कि मैं देश के अभ्युदय में योगदान कर रहा हूँ। मानवता की सेवा कृषि-कर्म से बढ़कर हो ही नहीं सकती।

श्री अखेराम जी की दो संताने थीं। एक पुत्र—मातूराम, एक पुत्री मनभरी देवी। मनभरी का विवाह उन्होंने किया। सम्पन्न घर था। वहाँ भी जमींदारी होती थी। पुत्री को खुशी-खुशी विदा किया—तो शीशला ग्राम में भी उसे खुशियों का साम्राज्य

मिला। पिता का मन पुत्री के सुख-साम्राज्य को देख इतना खुश, कि पुत्री का विवाह कर देने पर खुशियों का खजाना ही जैसे उन्हें मिल गया हो।

किन्तु मनभरी देवी ने मन भर, न पति का सुख पाया था न सास-ससुर की सेवा की थी, कि सहसा पति परलोक वासी हो गए। मनभरी देवी उस समय छः मास से गर्भवती थी। पुत्री पर टूटा कष्ट का पहाड़ पिता के लिए अथाह वेदना का भंवर बन गया। वे पुत्री के मन का दुख बंट जाए इस दृष्टि से उसे बड़ौदा ले आए। बड़ौदा में ही मनभरी ने पुत्र को जन्म दिया। नाम रखा गया नानकचद (सं १९१३, मार्गशीर्ष कृष्ण १२)।

इसलिए हमने कहा कि नानकचंद बड़ौदा के नही थे। फिर भी वे बड़ौदा के कहलाए। अतः जन्म की दृष्टि से वे बड़ौदा के थे और कुल या वंश की दृष्टि से गीशला ग्राम के।

फिर से जान लें कि नानकचंद जी बड़ौदा में जन्मे। कुछ मास बीते थे कि पतिवियोग में कलपती मनभरी बड़ौदा में अपनी कूख से जन्मे नानकचंद को अपने पिता (नानकचंद के नाना) अखे राम की गोद में सौंप, स्वय भी उठ गई इस भूतल से।

नानकचंद के लिए माता-पिता सब कुछ थे—अखेराम। 'माँ' 'पिता' बोलने का क्या सुख होता—नानकचंद ने कभी उच्चारण तक कर के नहीं अनुभव किया था। उनके लिए नाना ही सब कुछ थे। पलक मूंदते और पलक खुलते, साँसों के आते और साँसों के जाते, नानकचंद के लिए अखेराम ही पालक-पोषक तथा उनके दुःख-सुख को सुनने के लिए बच रहे थे। उन्होंने मन से, प्राण से, रोकर, हंस कर, जब पुकारा तब केवल 'नाना जी' बस यही उनके लिए एकमात्र शब्द था, क्योंकि उनके एकमात्र मामा का भी स्वर्गवास हो गया था।

बचपन बीता—ऐसे, जैसे सुकुमार हाथों में फूल की सुरक्षा होती है। अखेराम ने अपनी छाती के धन मातूराम को खो दिया था। मनभरी भी आँखों से ओझल हो चुकी थी। उनके पितृत्व का एकमात्र केन्द्र रह गया था—नानकचंद।

वह किशोर हुए। सोचने की शक्ति बढ़ी। तब उन्हें स्पष्ट

रूप से यह दीख पड़ा—"मेरे जीवन में 'नानाजी' के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आगे-पीछे, अब, तब, कभी भी देखूं और पाऊं तो मैं नानाजी के अलावा कुछ न पा सकूंगा।" किशोर होकर उन्होंने धीरे-धीरे शीशला ग्राम के साथ अपने संबंध को समझा। "पिता पेट में छोड़ कर ही चले गए। माँ थी वह भी अपनी गोद से पृथ्वी की गोद में मुझे छोड़ गई। ओह! जीवन क्या है? कहाँ है मनुष्य का आधार? पृथ्वी ही मेरी माता है। आकाश ही मेरा पूर्णपुरुष पिता है। नाना आज हैं, कल चले जाएंगे। मैं किस के लिए, कहाँ रहूँगा? कौन है, जिसे मैं अपना कहकर पुकार पाऊंगा?"

इस अंतर्द्वंद्व की उथल-पुथल भरी अनिर्णायक बेला में श्री मायाराम जी से जो उनके समवयस्क थे—भेंट हुई।[1] दोनों में अटूट मैत्री जुड़ी। मित्र मायाराम की हर बात को वे तन-मन से प्यार करने लगे। मायाराम जी से मिलन वैचारिक दृष्टि से उन्हें बड़ा सामीप्य-पूर्ण लगा। मार्ग-नेता मायाराम जी ने उन्हें जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण बताया। उनके विचारों को सुनना था, कि एक दिन वे कह बैठे—"मायाराम! जहाँ तू, वहाँ मैं। तू संयम के शिखर तक पहुंचेगा, तो तलहटी से कुछ तो मैं भी चढ़ ही लूंगा—बस याद रखना—साथ मरेंगे, साथ जीएंगे। मैं जिन्दगी की आखिरी साँस रहने तक के लिए तुझे वचन देता हूँ—मैं तेरा हूँ, तू मेरा है। साधु बनेगा तो मैं भी तेरा ही अनुकरण करूंगा। तू गुरु बनेगा, तो मैं चेला।"

मायाराम जी और नानकचंद का वह वैचारिक गठबंधन हो चुका था। नाना बेचारे अभिज्ञ थे—इस गठबंधन से।

नानकचंद को यौवन में पदार्पण करते देख, नाना के मन ने विचारों की करवट बदली।—"नानकचंद युवा हो चला है। अब इसके विवाह की भी चिंता करनी चाहिए।" नानकचंद जी के सामने प्रसंग आया, तो उन्होंने इंकार कर दिया। अन्ततोगत्वा नानकचंद जी ने अमृतसर नगर में अपने दो साथियों—केसरीसिंह जी, देवीचन्द जी के साथ सं० १९३७, मार्गशीर्ष कृष्ण ५ को दीक्षा महाभिव्रत स्वीकार किया।[2]

---

१. देखिये—पृष्ठ 43, २. देखें—पृष्ठ 47

मुनिमना श्री मायाराम जी म० का शिष्यत्व स्वीकारते ही मुनि नानकचंद जी अध्ययन में प्राणशक्ति बटोर कर जुट गए। आगम, स्तोक, नय, निक्षेप, प्रमाण एवं जैन न्याय का गम्भीर अध्ययन किया। ज्ञान की आँखे मिलीं। आँखें मिलते ही अध्ययन का परम काम्य 'विनय' जन्मा। विनम्रता जागी। वैराग्य की गहराई में चरणन्यास किया—तो तपस्या का मोती उनके हाथ लगा। विवेक, विनय, विनम्रता की निर्मल उर्वरा भूमि तपस्या, संतोष-सुख निराभिमानिता और करुणा के फल-फूलों से महक उठी।

लम्बी-लम्बी तपस्या पर अपने पूज्य गुरुदेव श्री मायाराम जी म० के पादपद्मों में आज्ञाकारी सेवक की तरह विनयमूर्ति बने खड़े रहते। उनकी तपस्या का एक पक्ष यह भी था—

"उन्होंने कभी नया कपड़ा अपने तन पर नहीं ओढ़ा। अन्य मुनियों का पुराना जीर्ण वस्त्र लेते और तन पर डाल लेते!

एक बार छाछ के आधार पर रहने का अभिग्रह कर लिया। कर लिया, तो बस कर ही लिया। १२ वर्ष बिता दिए। छाछ मिली, तो पी ली, न मिली तो उपवास।

दिन-रात, रात और दिन आगमग्रंथों की स्वाध्याय में डूबे रहते। स्वाध्याय के महायज्ञ की प्रत्यक्ष उपलब्धि उन्होंने पाई थी—तीन-तीन दिन शास्त्रों का कंठाग्र ज्ञान दुहराते रहते—फिर भी पता नहीं लगने पाता था—कितने शास्त्रों और शास्त्र-गाथाओं, तथा सुभाषितों का रत्नाकर था उनका मस्तिष्क।

अद्भुत प्रसंग एक बार का—

जन-जागरण का दिव्य सन्देश देते हुए महामना श्री मायाराम जी म० हांसी (हरियाणा) में पधारे। यात्रा लम्बी होने के कारण दिन ढल आया था। हांसी में उस समय मुनिजनों का आवागमन कम ही था। साधु-चर्या से लोग अनभिज्ञ थे। अतः उनका उपहास भी कर बैठते थे।

मुनिमना ने ठहरने के लिये स्थान पूछा, तो किसी ने भी स्थान न दिया। अन्ततः एक व्यक्ति ने कहा—ठहरना हो तो यह एक

जगह है—जीने के नीचे की कोठरी। उसका दरवाज़ा गली में खुलता था। समय का अभाव देखकर मुनि उसी में ठहर गये। कोठरी में जगह इतनी तंग थी, कि मुनि उसमें सिर्फ़ बैठ ही सकते थे।

रात्रि में प्रतिक्रमण के पश्चात् दो-चार व्यक्ति आये, उपहास करने का मन बना कर। बोले—कुछ सुना सकते हो?

हाँ, क्यों नहीं। मुनि शिरोमणि श्री मायाराम जी बोले—"यदि सुनोगे, तो अवश्य सुनायेंगे।" कौतुहलवश आगन्तुक व्यक्ति बैठ गये। महाराज श्री ने कोठरी के द्वार पर बैठ कर सुनाने का उपक्रम किया। उनकी मधुर स्वर-लहरी गूंजी। जहां जिसके कान में उनकी वह मधुर ध्वनि पड़ी, वह बलात् खिंचा चला आया। थोड़ी ही देर में पूरी गली श्रोताओं से भर गयी। गली के दोनों ओर छतों पर भी नर-नारी एकत्र हो गये। एक-डेढ़ घंटा प्रवचन हुआ। श्रोता विमुग्ध हो उठे! जिन लोगों ने स्थान देने से इन्कार किया था, उन्हें स्वयं पर ग्लानि हुई और उसी समय प्रार्थना की—"महाराज श्री! यह स्थान ठहरने के लिये उपर्युक्त नहीं है। आप हमारे दूसरे बड़े स्थान पर पधारें।" मुनिमना ने उत्तर दिया—"रात्रि में जैन मुनि अन्यत्र कहीं भी नहीं जाते। अतः हम यहाँ इसी स्थान पर ही रहेंगे।

प्रातः मुनि श्रेष्ठ ने विहार करने का विचार किया, किन्तु हांसी के लोगों ने उनका रास्ता रोक लिया तथा पुनः पुनः ठहरने का आग्रह करने लगे। जन-प्रार्थना को देख महाराज श्री एक उपयुक्त स्थान पर ठहर गये। प्रवचनों की नित्य पीयूषवर्षा होने लगी। बहुत से व्यक्तियों के साम्प्रदायिक मलिन मन अमल हो उठे। अनेकों ने तत्व-ज्ञान सीखा। सामायिक को पहचाना। कुछ व्यक्तियों ने आगमों का अध्ययन भी किया। मुनिमना एक मास वहां रहे। विहार करने का समय भी आया। जनता का मन टूटने लगा। सब ने एक स्वर से प्रार्थना की—"महाराज श्री! आप ने एक मास यहां रहकर हमारे हृदयों में धर्म-बीज का वपन किया। हम उससे तो कभी उऋण न होंगे। किन्तु अब कृपा करके आप अपने पीछे किसी ऐसे मुनि को छोड़ जाओ, जो इन बीजों को सींच कर पल्लवित कर दें।"

यह आवश्यकता मुनिमना भी समझते थे। उन्होंने कहा—"मुनि नानकचन्द मुनि-द्वय के साथ अभी दो दिन पूर्व ही अन्य क्षेत्रों का विचरण करता हुआ आया है। मैं इसे आज्ञा करता हूँ यह मेरे बाद में तुम्हें धर्म-तत्त्व से लाभान्वित करेगा।" श्री मायाराम जी म० ने विहार कर दिया।

श्री नानकचन्द जी म० अतिसरल, सीधे दीखने वाले मौन-प्रपन्न मुनि थे। उन्हें देख कर लोगों ने परस्पर चर्चा की—महाराज श्री ने हमारी प्रार्थना तो स्वीकार की, किन्तु ये मुनि हमें क्या धर्म-लाभ देंगे। चलो ठीक है। गुरु हैं, पूज्य हैं। ऐसे उपेक्षा के भाव उनके हृदयों में उदित हुए। दूसरे दिन धर्मोपदेश का प्रसंग उपस्थित हुआ। श्री नानकचन्द जी म० ने दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसति, जस्स धम्मे सया मणो॥

पढ़ी। इस का विश्लेषण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने सर्व-प्रथम 'धर्म' शब्द का नय, निक्षेप, प्रमाण के द्वारा अर्थ कहना शुरू किया। यह क्रम नित्य चलता रहा। वे भी एक मास वहां रहे और इसी शब्द का अर्थ कहते रहे, किन्तु व्याख्या पूर्ण न हो सकी। अन्तत: विहार कर दिया। श्रोताओं की आँखें खुलीं। इतना गम्भीर ज्ञान और इतनी सरलता ? प्रकाश और मौन का कितना अद्भुत सगम ! हमने बड़ी भूल की, इतने महान् मुनि की उपेक्षा करके।

अस्तु, इसका प्रायश्चित्त करने के लिये हाँसी का जैन-संघ श्री मायाराम जी म० के चरणों में उपस्थित हुआ और अपने सोचे के लिये क्षमा माँगी।

ज्ञान और क्रिया का समन्वित रूप देखना हो तो मुनि नानकचन्द जी के जीवन में देखा-पाया जा सकता है। उनके गुणों का यह कितना बड़ा वैशिष्ट्य था कि पूरा का पूरा जीवन जी लिया पर घी, दूध, तेल, मीठा इन वस्तुओं का दीक्षा के बाद कदाचित् ही सेवन किया होगा। ज्ञान और क्रिया की समानान्तर पाँखों के सहारे वे संयम, तप त्याग, वैराग्य और तितिक्षा के आकाश में स्वस्थ

विहग की तरह उड़े ।

इनका स्वर्गवास भी अनोखा था । जीवन अनोखा । स्वर्गवास बेमिसाल । जन्म की बेमिसाली तो पढ़ी ही है ।

जींद शहर में ठहरे हुए थे । स्वाध्याय और कण्ठाग्रज्ञान को आवृत्ति इनका जीवन रस था । रात के घने अंधेरे में पता न लग पाया—खोए हुए थे शास्त्र चिंतन में । लघुशंका के लिये उठे । पैर फिसल गया । ऊपरी मंजिल से नीचे चौक में गिर पड़े । चोट काफ़ी लगी । संतों ने सेवाटहल की । मुनि नानकचन्द जी ने देखा—"शरीर इतना क्षत और अशक्त हो गया है, कि इसके द्वारा साँसे, लेते जाओ और छोड़ते जाओ । साथी मुनियों से सेवा करवाते रहो । उनकी स्वाध्याय छुड़वाओ अपनी सेवा के पीछे—क्या लाभ है ऐसी पराश्रित देह में बने रहने से ?"

तुरंत निर्णय लिया । साथी मुनियों से जिक्र भर कर दिया—'अब यह शरीर संयम का साधक न रहकर बाधक बन गया है ।' और संथारा कर लिया । आयु के सभी परमाणुओं को भोगा—परमनिर्मल भाव से संथारा पूरा हुआ । वे बड़ौदा में पाई मिट्टी की काया को जींद नगर में छोड गए ।

जींद नगर में निर्मित स्मारक आज भी उनके इस महाप्रयाण का यशोगान कर रहा है ।

इनके चार शिष्य हुए । परिचय क्रमशः —

एक—श्री कृपाराम जी म० : ये प्रथम शिष्य थे । इनका जन्म खाचरौद (मध्यप्रदेश) में हुआ था । जन्मना ओसवाल जाति के थे । इनकी सं० १९४९ में दीक्षा हुई । बालब्रह्मचारी व संयमनिष्ठ मुनि थे । इनका जोधपुर राजस्थान के १७ दिन के संथारे के बाद स्वर्गवास हुआ था ।

दो—श्री जड़ावचंद जी म० : इनका जन्म बेगूं (उदयपुर) में हुआ था । जाति से ओसवाल जैन । बालब्रह्मचारी । इन्होंने सं० १९५०, वैशाख कृष्णा सप्तमी तिथि को दीक्षा-व्रत स्वीकार किया था ।

मुनि श्री मायाराम जी म० की परंपरा में इनका उल्लेखनीय स्थान है। ये स्पष्टवादी व साहसी थे। श्रुति-परंपरा कहती है—तत्कालीन राजा-महाराजाओं के यहां इनके परिवार में लम्बे समय से खज़ांची पद चला आ रहा था। अतः आर्थिक दृष्टि से उस समय की परिभाषा के अनुसार 'श्री'—सम्पन्न थे। अतएव इनका वैराग्य, समृद्धि में से जन्मा हुआ वैराग्य था। यही कारण है इनके मुख से कही गई बात बड़ी ठोस होती थी। पद और प्रतिष्ठा भी इनकी दृष्टि में समृद्धि की तरह ही त्याज्य थी।

मुनि बन जाने के बाद उन्हें आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ने सं० १९६६, फाल्गुन शुक्ला ६ को गणावच्छेदक पद से अलंकृत किया था। एक बार प्रसंग आया मुनियों के एकीकरण का। तब इनकी स्पष्टवादिता का परिचय हमें इन शब्दों में मिला—यदि मुनि मायाराम जी के मुनियों का एकीकरण होता हो, तो मैं आज और अभी अपना गणावच्छेदक पद छोड़ सकता हूँ। यह त्याग मेरे लिए कोई बडी बात नहीं है। संयम के लिए राज्य-परिवार से सबंधित समृद्धि का परित्याग कर दिया, तो मुनि एकता के लिये पद का परित्याग मेरे लिये कोई मूल्य नहीं रखता।"

मुनि-चर्या के प्रति इन्हें गम्भीर निष्ठा थी। उसमें किञ्चिन्-मात्र भी शिथिलता पसन्द नहीं करते थे। दूसरे मुनियों को भी वे इस हेतु निरन्तर प्रेरित करते थे।

निम्न दो घटनाओं में उनकी सूक्ष्म दृष्टि को देखें—

अमीनगर सराय (मेरठ, उ०प्र०) में मुनि श्री अन्य साथी मुनियों के साथ विराजित थे। स्वाध्याय, प्रतिपल स्वाध्याय! यह उनका आनन्द था। इसी में उन्होंने रस माना था। एक दिन वे स्वाध्याय निमग्न थे। सामने एक श्रावक बैठे थे। उनसे कुछ ही दूर हट कर दूसरे एक मुनि स्वाध्याय कर रहे थे। शास्त्रीय पाठान्तर का कोई प्रसंग उपस्थित हुआ, तो श्री जड़ावचन्द जी म० ने स्वाध्याय-रत मुनि को कहा—लो! यह पृष्ठ देखो। वे मुनि पृष्ठ ग्रहण करने हेतु अभी उठ न पाये थे कि सम्मुख बैठे श्रावक ने कहा—कृपा निधान! मुझे कृपा करो। मैं दे देता हूँ।

मुनि श्री ने निषेध-परक स्वर मे कहा—नही। साधु का कार्य श्रावक को करना उचित नही है। साधु का कार्य साधु को ही करना चाहिये। क्योंकि साधु विवेक-पूर्वक कार्य करेगा जबकि गृहस्थ से अविवेक संभव है। अविवेक से कृत-कार्य मुनि के सयम में क्षति पहुंचाता हैं।

दूसरी एक घटना—

इस घटना मे भी हम उनके सूक्ष्म विचार व सयम के प्रति सावधानता का दिग्दर्शन करेगे। मुनि श्री की आख के नीचे कुछ हट कर एक बढा-सा बाल उग आया। बाल उन्हे चुभता और आख को कष्ट पहुंचाता। वे इसे सहते रहे।

एक बार बाहर से कुछ मुनि घूमते-विचरते उनके सान्निध्य में पहुंचे। उनमे से एक मुनि के साथ उनकी वार्ता हो रही थी, कि आगन्तुक मुनि की दृष्टि उनकी आख के नीचे उगे बाल पर गयी। उन्होंने हाथ बढाया और उस बाल को उखाड कर हटा दिया। मुनि श्री ने उन्हे टोका तथा पूछा—ऐसा क्यो किया तुमने ! मुनि ने कहा—महाराज यह आप के चेहर पर बुरा लगता था। इस लिये मैने इसे हटा दिया।

मुनि श्री ने कहा—यही तो वह बात थी—जिसके कारण मै लम्बे समय से इसे सह रहा था। यह मुझे बाधा पहुचाता था, लेकिन जब भी मै इसे हटाने की बात सोचता, तो बाधा के साथ 'बुरा लगना' भी स्मरण आता। साधु को शोभा-वृद्धि के लिये कुछ नही करना चाहिये। इस लिये मै रुक जाता और इसे सहता रहता।

ये रोहतक मे एक अरसे तक स्थानापति रहे। सवत् १९८८, मार्गशीर्ष मे स्वर्गवास हुआ।

तीन—श्री मोहरसिंह जी म० : इनका जन्म तीतरवाडा, जिला मुजफ्फर नगर उ० प्र० मे, अग्रवाल जैन कुल मे हुआ था। ये अविवाहित थे। देहली में सवत् १९४३, आषाढ शुक्ला १५ को इन्होंने साधु-दीक्षा ली।

मुनि नानकचंद जी की परंपरा में ये उल्लेखनीय सन्त थे।

भिवानी नगर में ८४ घंटे के संथारे का लम्बा काल व्यतीत कर चैत्र कृष्णा दशमी तिथि संवत् १९९९ में स्वर्गवास हुआ।

इनके पांच शिष्य हुए।

१. श्री रामसिंह जी म० : इनका जन्म, ग्राम जसरा (जि० बीकानेर) में संवत् १९३८ में हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती केसरबाई था। पिता : श्री रुपचंद जी। कालान्तर में ये बेगूं (जि० उदयपुर, राजस्थान) में रहने लगे थे। श्री कृपाराम जी म० व श्री मोहरसिंह जी म० से इन्हें प्रतिबोध मिला। संसार से जब मन उपरत हो गया तो सं० १९५९, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी, ग्राम कदवास, निकट बेगूं, में दीक्षा ली।

ये बालब्रह्मचारी, सरल स्वभावी थे। इनकी संयम-निष्ठा को देख आचार्य श्री आत्माराम जी म० ने उन्हें लुधियाना मुनि सम्मेलन में सं० २००३ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को गणवच्छेदक पद से विभूषित किया था।

इनका बुढ़लाडामडी (पजाब) में १ अक्तुबर १९५८ को ११२ घटे के सथारे सहित स्वर्गवास हुआ।

२. श्री इन्द्रसैन जी म० : इनका जन्म खटकड़ कलां ग्राम (जि० जींद) में हुआ था। दीक्षा पट्टी (पंजाब) में ग्रहण की।

विशेष विवरण उपलब्ध न हो सका।

३ श्री मगनसिंह जी म० : (परिचय उपलब्ध नहीं है)

४. तपस्वी श्री टेकचंद जी म० : इनका जन्म ग्राम गरावड़ (जि० रोहतक) में हुआ। दीक्षा सं० १९८८, आषाढ़ शुक्ला नवमी, को कलानौर में हुई।

इन्हें तपस्वी मुनि के रूप में जाना जाता है। ३५-२१, ३१, ४५, ३३ आदि दिनों की गर्म जल के आधार पर दीर्घ कालीन तपस्यायें की हैं। समय-समय पर अन्य प्रकार के तप भी करते रहे।

इनका स्वर्गवास ग्राम खेयोवाली में दिनांक १९।६।७९ को हुआ।

५. श्री पूर्णचंद जी म० : ये बडौत (उ० प्र०) में जन्मे-जाये थे।

वंशतः जैन । इनका दीक्षा स्थान ग्राम रिठाल (रोहतक) है। संवत् १९९८ में अम्बाला छावनी में स्वर्गवास हुआ ।

इनमें शिष्य-परम्परा केवल श्री रामसिंह जी म० की है। क्रमतः —

(i) **श्री मोबतराय जी म० :** इनके पिता श्री सन्तराम जी, माता श्रीमती निहालीदेवी जी थे। स्थान तीतरवाड़ा (जि० मुज्जफर नगर) संवत् १९६४, चैत्रशुक्ला पंचमी, इनकी जन्म तिथि है। हांसी नगर में सं० १९८०, माघ शुक्ला दसवीं को भागवती दीक्षा अंगीकार की।

ये आगमग्रंथों के अध्येता हैं। श्रमणसंघीय उपप्रवर्तक हैं। इनके एक शिष्य हैं—श्री प्रीतमचन्द जी म०।

श्री प्रीतमचन्द जी म० : इनका जन्म विधीपुर (जि० अलीगढ) में सं० १९८२, आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को हुआ। इनके पिता श्री का नाम श्री सेवाराम प्रजापत है ।

इनकी मुनि दीक्षा राहोंनगर में, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन सवत् २०१२ को हुई ।

(ii) **तपस्वी श्री मनोहरलाल जी म० :** इन्होंने दीक्षा गोल्ली ग्राम (करनाल) में, संवत् १९८७ में ग्रहण की। दीक्षा पूर्व का विवरण यद्यपि उपलब्ध नही है तथापि दीक्षा के बाद का आपका जीवन बहुत स्पष्ट है कि इन्होने ३१ व ४१ दिन की लम्बी तपस्याए करते हुए संयम की आराधना की।

स० २०२५, फाल्गुन शुक्ला १४ को भिक्खी नगर में इनका स्वर्गवास हुआ ।

(iii) **श्री नेमचन्द जी म० :** इनका जन्म, चौथका बरवाडा (सवाई माधोपुर, राजस्थान) में सं १९७६, जेष्ठ मास चतुर्दशी तिथि को हुआ । इनके पिता श्री देवीलाल जी जैन व माता श्रीमती भूरोदेवी जी थी।

माता व पुत्र इन दोनों ने एक साथ जिन-दीक्षा का व्रत लेने का विचार किया। परिणामतः दिल्ली में स्थिरवास कर रहे श्री मोहरसिंह जी म० के पास आए। अपना इरादा बताया। श्री मोहरसिंह जी

म० के आदेशानुसार उस समय जम्मू में स्थित साध्वी श्री जशवन्ती जी म० के पास माता को दीक्षा-व्रत दिलाने के बाद स्वयं श्री नेमचन्द जी ने भी सं० १६६३, मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चमी को श्री रामसिंह जी म० के पास दीक्षा-व्रत ग्रहण किया।

ये मधुर वक्ता व मिलनसार मुनिराज हैं। पंजाब, हरियाणा, उ० प्र०, राजस्थान व मध्यप्रदेश आदि प्रांतों में इन्होंने परिभ्रमण किया है।

इनके तीन शिष्य हैं।

(क) **श्री जिनेश मुनि जी म० :** इनका काटल (निकट कसौली, हिमाचल) ग्राम में सं० १६६७, माघ कृष्णा चतुर्दशी को जन्म हुआ। इनके पिता का नाम श्री जगतराम जी वर्मा व माता श्रीमती सावनादेवी हैं।

प्रभात (चण्डीगढ़) में स० २०१६, मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन इन्होंने जिन-दीक्षा स्वीकार की। ये सेवाभावी और तपस्वी मुनि हैं।

(ख) **श्री पद्म मुनि जी म० :** इन्होंने दिल्ली में दीक्षा-व्रत स्वीकार किया। ये पंजाब, हरियाणा, उ० प्र० आदि प्रान्तों में विचरण करते हैं।

(ग) **श्री नवीन मुनि जी म० :** चौथका बरवाड़ा सन् १६६१ में इनका जन्म हुआ है। जन्मतः जैन है। इनकी दीक्षा २०३२ में मोगामंडी में हुई है। ये सेवाभावी मुनि हैं।

(iv) **श्री तिलोकचन्द जी म० :** इनका राजली ग्राम (जि० हिसार) में, सं० १६७३, पौषकृष्णा ३ को जन्म हुआ था। इनके पिता श्री मोलूराम जी अग्रवाल व माता श्रीमती लाडोदेवी जी थे।

देहली सब्जीमंडी क्षेत्र में १६६७ में मुनि-दीक्षा ग्रहण की। ये तपस्वी एवं मौनाभ्यासी हैं। स्वाध्याय एवं जप में निमग्न रहते हैं।

(v) **श्री भगवानदास जी म० :** बड़ौत (उ० प्र०) इनका निवास स्थान रहा। जाट वंशज थे। बैंसी (रोहतक) में सं० २००६, कार्तिक

शुक्ला ६, यह आपकी दीक्षा तिथि थी। मानसा मंडी (पंजाब) स० २०२४ में स्वर्गारोहण किया।

(vi) **श्री मंगत मुनि जी म० :** थानेसर (कुरुक्षेत्र) में इन्होंने संवत २०१० को मुनि-दीक्षा ली। वंश की दृष्टि से जाट है। ये तपस्वी एवं स्वाध्यायी मुनि हैं।

चार—**श्री सुगनचन्द जी म० :** ये ओसवाल जैन थे। जन्म से ब्रह्मचारी। श्री नानकचन्द जी म० के ये चतुर्थ शिष्य थे। इनका स्वर्गवास कांधला (उ० प्र०) में हुआ था। इनके एक शिष्य श्री मामचन्द जी म० हुए।

6

उग्र संयमी

श्री देवीचंद जी म०

संयम-सूर्य श्री मायाराम जी म० के शिष्य-रत्नों में श्री देवीचंद जी म० का दूसरा नम्बर है।

इनके पिता श्री का नाम था—चौ० मसाणियाराम, मातु श्री थी—सुखमां देवी। एक पुत्र ने जन्म लेकर माता-पिता के 'एक-संतान' के शाप को मेटा और स्वर्गवासी हो गया। फिर देवीचंद जी ही पिता की इकलौती संतान रह गए। माता और पिता का पुत्र देवीचंद मे स्वाभाविक ही है, अनन्य अनुराग होना। देवीचंद किशोर हुए। इनका भी परिचय पूज्य चरित-नेता मायाराम जी से हुआ।

पूज्य चरित-नेता शुरू से ही मित्रों में विचारों की दीक्षा देने वाले प्रेरणा-केन्द्र थे। उन्होने देवीचंद जी को घर में रहते हुए पहले मित्र बनाया था। फिर विचारों की दीक्षा दी। देवीचंद जी उनसे विचार-दीक्षा लेकर मन-ही-मन निश्चय कर बैठे—'मुझे मायाराम के पथ का अनुगमन करना है।' मन के एकान्त में किया निश्चय, मन में पनपता रहा।

देवीचन्द जी युवा हुए तो दीक्षा लेने का संकल्प किया। परिवार ने बचपन में हुए विवाह का स्मरण कराते हुए द्विरागमन को बात की। परम-निश्चयी देवीचन्द जी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।

अमृतसर नगर में आचार्य श्री अमरसिंह जी म० के स्थिर-वासकाल में इनकी दीक्षा हुई।[1]

\+ \+ \+

श्री देवीचन्द जी म० जी की मंज़िल इतनी सरल न थी। भवितव्यता इनके संयम को अग्नि की कसौटी पर कसना चाहती थी। इसलिये इनके जीवन में बड़ी कठोर घटना घटी। जिसका उल्लेख कर रहे हैं —

गाँव-गाँव में धर्म-प्रचार करते मुनियों के साथ मुनि देवीचन्द जी बड़ौदा के समीप दनौदा आ निकले। दीक्षा लिए कुछ समय बीत चुका था। दनौदा आए तो बड़ौदा में रह रहे, उनके परिजनों ने मिलकर देवीचन्द जी को फिर से बलात् घर वापिस ले जाने का निश्चय कर डाला।

उन्होंने पूरी योजना बनाई। दनौदा ग्राम के बाहर लाठी और रस्सी लेकर पूरा दल छुप कर बैठ गया। प्रसग ऐसे घटा, कि मुनि देवीचंद जी शौच के लिए जंगल गए। उन सबने मिलकर उन्हें पकड़ लिया। और कहा—"चलो घर ! घर में माँ-बाप अकेले हैं। तुम गाँव-गाँव भीख माँगते फिरते हो। और तुम्हारा घर "पुत्र बिन कैसा गृहस्थ ? चिराग़ बिन कैसा घर ? इसे हम बर्दाश्त नहीं करेंगे।"

मुनि देवीचन्द जी अभी सोच भी न पाये थे, कि क्या किया जाए ? एक तरफ़ स्वीकृत मुनि-जीवन। दूसरी ओर यह ज्यादती ?

छिपे बैठे लोगों ने रस्सी से देवीचंद जी को बाँध दिया। लाठियाँ तान लीं, देवीचंद को हम से छुड़ा कर ले जाने वालों का मुक़ाबला करने के लिये। लेकिन किसी को पता न चला।

देवीचंद जी को बड़ौदा लाया गया। वे लोग उनके मुनि-वेष को उतरवाना चाहते थे। देवीचन्द जी अडिग बने रहे। अत में उन्हें बड़ौदा की चौपाल में खम्भे से बाँध दिया गया।

तीन दिन बीत गए। फिर से घर में लौटाने का आग्रह एक ओर था। दूसरी ओर देवीचंद जी तो संयम-पथ के अचल यात्री थे। तीन दिन तक वे भूखे-प्यासे रहे। सब लोग हार गए। पच लिए,

१. विशेष विवरण देखें—पृष्ठ 47 से 52 तक।

तब देवीचंद जी ने अपनी माता से कहा—"तुम यह चाहती हो, कि मैं जीवित रहूँ, तो मेरा मोह छोड़ कर तुम इन सब को ले जाओ। मैं स्वीकृत मुनि-जीवन-पथ पर से नहीं हट सकता। संयम-पथ पर ही जीवन का अन्त होगा। मेरी मृत्यु संभव है, पर मैं घर नहीं जाऊंगा।"

बड़ौदा की पंचायत ने सीधे शब्दों में कहा—"मुनि-जीवन राजी का सौदा है। पर मार कर, पीट कर, डरा कर, तुम इन्हें नही ले जा सकते। समझ से काम लो। समझा लो, देवीचद जी को और ले जाओ। पर चौपाल में इस तरह एक साधु को बांधे रखना ठीक नही।"

मुनि देवीचन्द जी की माँ का मोह भंग हुआ। उसने सब लोगों से देवीचंद को मुनि-जीवन जीने के लिए स्वतन्त्र कर देने का साग्रह अनुरोध किया। सब लोग मान गये।

साथ के मुनि दनौदा ग्राम से विहार कर चुके थे। मुनि देवीचंद जी ने बड़ौदा से प्रस्थान किया। अनेक दिन फिर भूखे उपवासी रहते हुए आगे बढ़े और मुनिसंघ मे जा मिले। श्री मायाराम जी म० ने इस घटना का सुना, तो वे उनकी दृढ़ता से अत्यन्त प्रसन्न हुए। मुनि-वृन्द तब से श्री देवीचन्द जी म० को बड़े आदर से देखने लगा।

\+ \+ \+

श्री देवीचन्द जी म० कठोरवृत्ति के उग्रसंयमी सन्त थे। उन्हें शिथिलवृत्ति, ढीला आचार लेशमात्र भी सह्य नहीं था। उनकी इस दूसरी व अन्तिम घटना से यह स्वयं स्पष्ट हो रहा है।

यह घटना है उदयपुर (राजस्थान) की। श्री मायाराम जी म० का उदयपुर में चातुर्मास था। चातुर्मास में मुनि देवीचंद जी को एक दिन, रात के समय हैज़ा हो गया। हैज़ा ऐसा कि जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया। संघ एकत्र हुआ। उदयपुरवासियों ने कहा—"महाप्राण! (मुनि मायाराम), आप मुनि देवीचंद जी को हमें सौंप दें। हम इनका उपचार करेंगे। स्वस्थ हो जायेंगे, तो प्रायश्चित्त द्वारा इन्हें मुनि-संघ में मिला लेना। ये फिर उसी तरह संयम-पालन करेंगे। पर इस तरह दवा के अभाव में (रात्रि में दवा मुनि के लिए

निषिद्ध है) संसार से उठ जाएं, यह ठीक नहीं।"

चरित-नेता श्री मायाराम जी म० ने कहा—"इस प्रश्न को मैं हल नहीं कर सकता। इसका हल देवीचंद चाहे तो स्वयं कर सकता है।"

श्री देवीचंद जी म० से उदयपुर जैन-संघ ने निवेदन किया—"मुनिवर! आप औषध-सेवन करे। दोष का प्रायश्चित्त कर लेना। जीवन रह जाएगा तो मुनि-जीवन फिर शुरू कर लेना।"

मुनि देवीचंद ने तब भी एक ही उत्तर दिया—"मुनि-जीवन, संयम के लिए है। संयम से बाहर की कल्पना मैं नहीं कर सकता। जीवन-मरण दोनों ही अनिवार्य हैं। आयु है तो जीवन है। आयु नहीं है, तो मरण निश्चित है। परन्तु स्वीकृत मुनि-जीवन की प्रतिज्ञा का, जीवन से कोई सम्बन्ध है, न मृत्यु से। प्रतिज्ञा हाथ की चूड़ियाँ नहीं है, कि जब चाही पहन ली और जब चाही उतार कर रख लीं।"

शैया से उठकर बैठ पाने की शारीरिक शक्ति न होते हुए भी आत्मबल उनमें ऐसा जागा, कि महामुनि मायाराम जी से कहा—"गुरुदेव! मुझे जीने का मोह नही है। संयम से अनुराग है। मुझे संथारा करवा दीजिए। संथारे की शैय्या पर मेरा संयम सुरक्षित रहेगा।" औषध-सेवन संयम की सुरक्षा नहीं है।

उनके जीवन-चरित का उत्तरार्द्ध यह है, कि उन्होंने संथारा किया। सुबह होते-होते इधर सूरज उगा, उधर दृढ़धर्मी आत्मा शरीर को छोड़कर अमर-लोक पहुँच गई।

\+ + +

सकल्प के धनी श्री देवीचन्द जी म० का आयुष्क्रम स्वल्प ही था। किन्तु जो था वह पूर्ण सार्थक था। मुनि-सघ के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों से मण्डित है। श्री मायाराम जी म० के शुद्ध संयमीय युग-निर्माण के कार्य में श्री देवीचन्द जी म० का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

इनकी शिष्य-परम्परा नहीं है।

7

समर्पण में जन्मे

श्री छोटेलाल जी म०

मुनि श्री छोटेलाल जी म० के जन्म और दीक्षा से पहले हमें आचार्य श्री उदयसागर जी म० के समर्पण और मुनि श्री मायाराम जी म० की स्वीकृति को समझना है।

मुनि श्री मायाराम जी म०, पंजाब प्रांत और हरियाणा प्रांत की प्रदेश-रेखाओं को लांघ चुके थे। राजधानी देहली से राजस्थान में प्रवेश किया। राजस्थान के प्रवेश-द्वार—गिरि-शृंखला से आवेष्टित—अलवर तक पहुंचे थे कि राजस्थान प्रांत का मुनिवर्ग मुनिश्री की यशःकीर्ति और गुणगरिमा से प्रभावित और उत्सुक हो कर, विभिन्न सम्प्रदायों के मुनि-वर्ग ने प्रवर्य मुनि श्री मायाराम जी म० के दर्शन व वाणी-श्रवण के लिए एकमत से उन्हें दर्शन देने, मिलने, भेंटने के लिए सादर आमंत्रित किया।

मुनि प्रवर्य ने एक ही उत्तर दिया। उन्होने सभी आचार्य-प्रवर और मुनिवृन्द से कहा—"राजस्थान में प्रवेश किया है, तो सभी से मिलूंगा। मुनि-समाज मेरा श्रद्धाकेन्द्र है—चाहे दीक्षा-पर्याय में छोटा हो या बड़ा, संयम में सांस लेने वाला हर मुनि मेरी दृष्टि में स्नेह और श्रद्धा का आधार है।"

उन्हें अलवर से आगे बढ़ना था, कि जयपुर, किशनगढ़, अजमेर,

ब्यावर, पाली, जोधपुर, नागौर, बीकानेर आदि क्षेत्रों में विविधानेक राजस्थानीय मुनियों से मिले-भेटे। सर्वत्र स्नेह दिया, स्नेह लिया।

पूज्य गुरुदेव योगिराज रामजीलाल जी म० के संस्मरणागार से हमने सुना, कि उस समय राजस्थान का मुनि-वर्ग श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० के प्रति समर्पित हो चुका था। वे जहाँ-जहाँ पहुँचे, वहीं-वही उन्हें श्रद्धा विश्वास और आस्था मिली।

कालांतर में राजस्थान का मुनिवर्ग यह कहने लगा था—"चारित्रचूडामणि श्री मायाराम जी म० मात्र पंजाब के ही श्रमण-रत्न नहीं है. वे राजस्थान के मुनिवर्ग के भी उतने ही पूज्य और आदरणीय हैं, जितने पंजाब प्रांत के। वे हमारे मन न बसे होते, तो हम लोग उन्हें अपने दीक्षा के पूर्वाभ्यासी शिष्यों को सौप कर श्रद्धा का अर्घ कैसे अर्पित करते ?"

तो ऐसे ही मिलने-भेटने का निमंत्रण देने वालों में से एक थे—श्रद्धेय आचार्य श्री उदयसागर जी म०। उन्होंने कहा था—"आप राजस्थान पधार रहे है। आप जैसी दिव्यात्मा का इस ओर पदार्पण इस प्रदेश के लिये सौभाग्य-सूचक है। हम आप में मिलने के इच्छुक है। हमसे मिले बिना आप अन्यत्र न जाये।

इस सन्देश पर समादृत मुनि श्री मायाराम जी म०, पूज्य श्री उदयसागर जी म० के सान्निध्य में पहुँचे। उनका वहाँ पहुँचना था, कि आचार्य श्री उदयसागर जी म० चरित्र-चूडामणि मुनि मायाराम जी के उत्कृष्ट संयम और चारित्र को देखकर गद्‌गद् हो गये।

लम्बे समय तक दोनों ने साथ-साथ विचरण किया। ज्ञान-वार्ताएं की। विचार-विमर्श हुआ। विचार-विमर्श, आदान और प्रदान की तुला पर आंका-परखा और जाना-माना गया।

एक ओर अपनी सम्प्रदाय के एक आचार्य थे।

दूसरी ओर न आचार्य, न उपाध्याय, न गणी और न गणावच्छेदक— अपितु मात्र मुनि—यानी मुनि मायाराम थे।

ज्ञानवार्ता में आचार्य-प्रवर इतने प्रमुदित हुए कि उन्हें कहना

पड़ा—"मायाराम ! तुम्हारे संयम और प्राचार को देखने पर मुझे लगता है, सम्प्रदायों के बंधन कितने महत्त्वहीन होते हैं क्या मूल्य है इन सम्प्रदाय के बंधनों का व इन घेराबंदियों का ?"

"मारवाड से इधर साधु को हमारे यहाँ परदेसी साधु कहा जाता है। मात्र कहा ही नही जाता, इस कहने के पीछे यह मान्यता है, कि परदेशी साधु ढीले और क्रियाहीन होते हैं । लेकिन तुम्हें देख-परख लेने पर यह लगता है कि यह सब भ्रम था । तुम्हारा चारित्र सचमुच मेरी स्पर्धा का विषय है।"

लम्बा समय इस तरह साथ-साथ अतीत हुआ । एक दिन मुनि मायाराम जी ने निस्संगभाव से आचार्य श्री से निवेदन किया—"आचार्य प्रवर ! मुझे अनुमति प्रदान करें। अब अन्यत्र विचरण के लिए उमंगित हो रहा हैं।"

आचार्यप्रवर बोले—"साधु-स्वभाव और विचरण का अविनाभावी संबंध है। तुम पद से मुक्त कितने निस्संग हो ?

विचरण के लिए उमगित हो, तो रोकना तो मैं नही चाहता, पर इतना अवश्य कहता हूँ (अपनी भाषा में) 'मारवाड़ सूं दूर मति जाइयो'—शीघ्रता मत करना अभी राजस्थान से दूर जाने को।

\+ \+ \+

आचार्यप्रवर श्री उदयसागर जी म० मुनि मायाराम जी को विहार करने पर विदा देने लिए गांव की सीमा तक पहुंचाने प्राए।

महाराज श्री को प्रागे बढ़ना था।

आचार्य श्री को वापिस लौटना था।

आचार्यश्री ने आशीर्वाद-स्वरूप, पारंपरिक मंगलवचन (मंगली) सुनाया और अपने भाव-दीक्षित शिष्य छोटेलाल को सम्बोधित करते हुए बोले—छोटेलाल ! (छोटेलाल करबद्ध खड़े होकर) "हाजिर हूं। हुक्म फ़रमाइए।"

आचार्यप्रवर—"हुक्म यह है कि आज से तुम मुनि मायाराम जी की सेवा में रहोगे। ये तुम्हें पढ़ाएंगे। इनसे ही तुम्हें ज्ञान मिलेगा। इन्हें ही तुम अपना गुरु मानना। इनका दिया हुआ ज्ञान ही तुम्हारा ज्ञाननेत्र बनेगा। ये ही तुम्हारे जीवन में सम्यग्-दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप के बीज छिटकाएंगे। और देख छोटेलाल ! मुझे आत्म-सुख तब मिलेगा, जब तेरे अंतर्मन में मुनि मायाराम जी की तरह संयम-निष्ठा के फूल महकेंगे। सच मानना तब मेरे मन का आंगन उस दिन अनन्त खुशियों से चहक उठेगा।"

छोटेलाल जी के मन में क्या भावचित्र उभरे और मिटे ? इसे तो छोटेलाल जी ही स्वयं कह सकते थे। परन्तु आचार्य श्री के मुनि-समुदाय और मुनि मायाराम जी म० के मुनियों के मनों की खुशी का पारावार न रहा। दोनो ओर के मुनि वीतराग—प्रतिमा की तरह चित्रलिखित हो गए। वे सोच-सोच कर भी सोच न पाए। बस एक ही तत्त्व-चिंतन का विषय था—"आचार्यश्री ने यह क्या कहा ?

छोटेलाल जी थे कि इंकार न किया। आचार्यश्री के आदेश को नतमस्तक हो स्वीकार कर लिया।

प्रीति-मुद्रा श्री मायाराम जी म० ने अनेक तरह से छोटेलाल जी को अपने साथ न रखने के लिए अस्वीकृति के तर्क दिए। किन्तु आचार्यप्रवर ने अंतिम और सर्वोपरि बात यह कही, कि "वस्तु का आदान-प्रदान वस्तु में सिमट कर मिट जाता है या नष्ट हो जाता है। मैं तुम्हें सदैव जीवन्त रहने वाले देदिप्यमान रहने वाले वैरागी छोटेलाल को समर्पित कर रहा हूँ। मेरे इस समर्पण को स्वीकार करना ही होगा।"

महाराजश्री की अस्वीकृति आचार्य श्री के आग्रह के सम्मुख स्वीकृति में परिणत हो गई।

पाठक भूलें न होंगे—उसी संस्मरणागार से एक स्वर और सुनाई दिया—आचार्य श्री उदयसागर जी म० ने सभी क्षेत्रों में अधिसूचना प्रेषित कराई, कि परम मुनि मायाराम तुम्हारे क्षेत्र

में पधार रहे हैं—इनकी हृदय से भक्तिभावना, श्रद्धा और सेवा में कमी न होने पाए।

महाराज श्री, आचार्य श्री उदयसागर जी म० के समर्पण को स्वीकृति दे चुके थे। और तब—

जन्म-जन्म के यायावर मुनि के चरण राजस्थान की धर्मधरा पर बढ़ते जा रहे थे। छोटेलाल थे, कि उनका आज्ञाकारी, विनयावत मन 'जीवन' को जिज्ञासा के हाथ सौंपकर बढ़ा चला जा रहा था।

यायावर-चरण थे—मुनि मायाराम।

यायावर के चरणचिन्हों का अनुगामी थे—छोटेलाल।

\+ \+ \+

छोटेलाल, गुरु मायाराम जी के चरण-चिन्हों पर चलते रहे। यह कह देने पर भी उनके बारे में कुछ अकथित रह गया है।

छोटेलाल जी ने मुनिप्रवर से ज्ञान प्राप्त किया। पूरी राजस्थान-यात्रा में साथ-साथ छाया की तरह रहे-सहे। पंजाब आ गए। सवत् १९४६, पौषकृष्ण द्वितीया के दिन आचार्य श्री उदयसागर जी का प्रातःकालीन स्मरण कर इन्होंने गुरु श्री मायाराम जी म० के सान्निध्य में विधिवत् जिन-दीक्षा स्वीकार की।

दीक्षा के बाद अगला अंतर्मुहूर्त प्रारम्भ होना था, कि मुनि छोटेलाल जी ने अपने चित्त की समस्त वृत्तियों का केन्द्रीकरण किया—स्वाध्याय और चिंतन में।

लगभग आधी शती तक संकल्प के धनी मुनि छोटेलाल जी ने आगम ग्रंथों के सस्वर उच्चारण से अपने ब्रह्मरंध्र को प्रतिध्वनित रखा। ७०० थोकड़े कंठगत होना, १२ आगमों का मुखाग्र होना क्या हमें यह कहने के लिए विवश नहीं करता कि उनकी चित्त-प्रवृत्ति, मन का रुझान और उनका मस्तिष्क निरन्तर स्वाध्याय में निमग्न रहा होगा?

\+ \+ \+

श्री छोटेलाल जी म० को 'अनुशासन' शब्द से बडा लगाव था। उनका कहना था—सघ मुनियों का हो या गृहस्थो का, अनुशासन सबके लिये आवश्यक है। साधना का विकास इसी से सम्भव है। अनुशासन के विषय मे वे कठोर भी थे। इसका उल्लंघन उन्हे स्वीकार न था। उनका कितना भी प्रिय कोई हुआ, अनुशासन की अवेहलना होते ही वे उसे कठोर चेतावनी देते थे।

एक बार की बात। जिन्हे आज समाज, व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलाल जी म० के नाम से स्मरण करता है—जब वे केवल 'मदन मुनि' थे—एक दिन वे श्री छोटेलाल जी म० की ओर भूल से पीठ कर के बैठ गए, ख्याल नही रहा। तभी श्री छोटेलाल जी म० का 'अनुशासन' शब्दो की देहधार तक प्रकट हुआ। वे जोर से बोले—"मदन, तू जा यहा मे ! साधुता का मूल 'विनय' है। मूल के उन्मूलन से बृक्ष पल्लवित नही हो सकता। महावीर ने तभी तो कहा था—

वृक्ष के मूल से स्कन्ध, स्कन्ध मे शाखा, शाखा मे छोटी-छोटी शाखाए। छोटी प्रशाखाओ से पत्ते, पत्तो के बाद फूल फिर फल और अन्त में रस उत्पन्न होता है।

श्री मदलाल जी म० को गहरा पश्चात्ताप हुआ। क्षमा-याचना की। तब श्री छोटेलाल जी म० का मार्दव अभिव्यक्त हुआ।

उपरोक्त घटना उनके कठोर अनुशासन की समूचक है।

लोक-हितङ्कर श्री मायाराम जी म० का स्वर्गवास हो चुका था। सवत् १९६९, फाल्गुन शुक्ला ६ को, आचार्य श्री सोहनलाल जी म० ने श्री छोटेलाल जी म० को उनके अपने शिष्य-समूह का गणावच्छेदक घोषित किया। उस लोक-हितङ्कर महामुनि का विचरण-क्षेत्र ही मुनि छोटेलाल जी की भी विचरणस्थली था।

जीवन का अंतिम समय राजधानी मे स्थित चाँदनी चौक मे बीता। सवत् १९९२, कार्तिक शुक्ला ११ को समाधि-पूर्वक देह-विसर्जन हुआ।

इन के पाँच शिष्य हुए। परिचय अंकित है।

एक—**श्री रूपलाल जी म०** : ये श्री छोटेलाल जी म० के प्रथम शिष्य थे। जन्म : दायेड़ा (उदयपुर : राजस्थान) में। इनके दीक्षा-व्रती होने का संवत् था—१९५६, मार्ग शुक्ला सप्तमी।

थोकड़ों का ज्ञान और आगमग्रंथों का स्वाध्याय, इन्हें विरासत में मिला था। इनका स्वर्गगमन, संवत् १९७५, कार्तिक मास, स्थान हाँसी (हरियाणा) में हुआ था।

दो—**श्री नाथूलाल जी म०** : ये दूसरे शिष्य थे। इनका जन्म : उदयपुर के निकट पिनाणा (पलाणा) ग्राम में हुआ था। ओसवालों में प्राप्त दुग्गड इनका गोत्र था। उदयपुर में ही संवत् १९६१, आश्विन शुक्ल १० को इन्होंने दीक्षा धारण की थी।

श्री छोटेलाल जी म० की विरासत को इन्होंने खूब सम्भाला था। यही कारण है, कि होशियारपुर (पंजाब) में आचार्य श्री काशीराम जी म० के आचार्यपद-महोत्सव के समय इन्हे 'बहुसूत्री' का पद प्रदान किया गया।

इनका खरड (पंजाब) में, संवत् १९९९, ज्येष्ठ शुक्ला ११ को स्वर्गवास हुआ।

तीन— **श्री राधाकिशन जी म०** : इनका जन्म उदयपुर (राजस्थान) में हुआ था। ये जाति के पुष्करणा ब्राह्मण थे।

इनका देह जन्म भी उदयपुर में हुआ और दीक्षा भी उदयपुर में (सं० १९६१, पौष कृष्ण १२) हुई थी।

ये नितान्त एकान्त-प्रिय, शांत निजानंदी मुनि थे।

इनका बुढ़लाडा मंडी (पंजाब) में सन् १९४१ में स्वर्गारोहण हुआ।

चार—**श्री रतनचंद जी म०** : इनका जन्म भी उदयपुर के समीप नाई गाँव के ओसवाल परिवार में हुआ था। संवत् १९६२, पौष कृष्णा ७ को दीक्षा ली। ये तीव्र बुद्धि के धनी व साथ-ही-साथ तपस्वी भी थे। अमृतसर में इनका ६५ दिन की दीर्घ तपस्या के बाद स्वर्गवास हुआ।

पाँच—**श्री बलवन्तराय जी म० 'भण्डारी'** : ये, मुनि श्री छोटेलाल जी म० के पाँचवें शिष्य हैं। इनका जन्म : ग्राम लुहारा (अमीनगर : उ०प्र०) में हुआ। इनकी पूज्य माता का नाम श्रीमती मामकौर देवी जी व पिता श्री यादराम जी थे।

संवत् १९७६, वैशाख कृष्णा ८, स्थान : 'खट्टा' ग्राम (मेरठ : उ० प्र०) में मुनि-दीक्षा का अभिव्रत लिया।

वर्तमान में श्री मायाराम जी म० के मुनिसंघ में आप ज्येष्ठ रात्निक है। सेवा-भाव इनका प्रमुख गुण है। इन्होंने अपने जीवन काल में अनेक मुनियों की महान सेवा की है। अपने इसी गुण के कारण 'भण्डारी जी' के नाम से अभिहित हैं। साँघिक मामलों से दूर स्वभाव से सरल हैं। सभी छोटे-बड़ों के लिये आपके हृदय में स्नेह है।

उपरोक्त मुनिराजो में से केवल श्री नाथूलाल जी म० की शिष्य परम्परा है। क्रमतः—

१. व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म०

मुनिश्री मदनलाल जी म०, निकट अतीत के साधु पुरुष मुनिराज थे। समाज सुधार के साथ-साथ साध्वाचार के प्रबल पक्षधर थे। आगमग्रंथों का स्वाध्याय करना, उनकी चर्या थी। व्यक्तिरूप में परम विनम्र, साधुता के लिए समर्पित थे।

समझौता करना उनकी शान के खिलाफ़ था। पर समन्वय के लिए हामी थे। साधु आचार के प्रति कठोरता उनकी विशेषता थी। स्नेह सबंध को महत्व देते थे परन्तु सिद्धांतों की ज्योतिशिखा को मंद करना उन्हे कभी इष्ट न था।

उनके जनसम्पर्क का माध्यम प्रवचन था। प्रवचन में मिठास थी। विषय प्रतिपादन की सुबोध पद्धति के कारण व्याख्यान वाचस्पति कहलाए।

इनका हरियाणा प्रांत (जि० रोहतक) के राजपुर ग्राम में, श्री मुरारीलाल जी जैन, माता श्रीमती गेंदोबाई की कुक्षी से, विक्रम संवत् १९५२, फाल्गुण शुक्ल ६ को जन्म हुआ था। जन्म के

बाद ७ वर्ष बीते थे कि संरक्षण करने वाली माँ स्वर्गवासो हो गई। पिता ने माँ और पिता दोनों हृदयों का समान प्रतिनिधित्व करते हुए इनका लालन-पोषण किया था। इनका जन्म नाम—मौजीराम था।

संवत् १९७१ (भाद्रपद कृष्ण दशमीं), ग्राम बामनौली (मेरठ) में श्री नाथूलाल जी म० का शिष्यत्व स्वीकार किया। दीक्षा से स्वर्गवास तक, आगमों की स्वाध्याय में रसलिप्त रहे। समाज सुधार के नानाविद कार्य किए।

जंडियालागुरु (पंजाब) में अस्वस्थता के कारण लम्बे समय तक रुकना हुआ। सभी तरह के औषधोपचार विफल होते गए। अध्ययन से संचित ज्ञान और अनुभव ने इन्हे नश्वर देह विसर्जन का आभास कराया। शिष्यों से संथारा करवाने का संकेत किया। अन्ततः वे स्वयं ही समाधिस्थ हो गए। २७-६-६३, ईस्वी में समता-पूर्वक देह विसर्जन किया।[1]

२. श्री मूलचंद जी म० :

इनका जन्म, ग्राम देहरा (हरियाणा) में पिता श्री आसाराम जी 'वर्मा' के यहाँ सवत् १९५६ में हुआ था। २३ वर्ष की युवावस्था में, रोहतक शहर, संवत् १९७९ (श्रावण मास) में दीक्षा ली।

ये संयमी, प्रवचनकार, स्वाध्यायी, विनयी और सदा प्रसन्न रहने वाले मुनि थे।

मूनक (पंजाब) में संवत् २०२०, आषाढ़ शुक्ल १२ को इनका स्वर्गवास हुआ।

३. श्री फूलचंद जी म० 'स्वामी जी' :

इनका जन्म, मिलगाणा (जि० अलवर) में राजपूत परिवार मे हुआ। इनके पूज्य पिता श्री का नाम श्री बेरिसाल सिह व माता श्रीमती अछना देवी था।

इन्होंने १४ वर्ष की किशोर अवस्था मे जिन-दीक्षा का व्रत

1. विस्तृत परिचय के लिये देखें—मुनि श्री का मुद्रित—जीवन परिचय।

बामनौली ग्राम (उ० प्र०) में संवत् १९८४, पौष कृष्ण चपंमी को लिया।

ये प्रकृति से मिलनसार और सरल हैं। प्रथम मिलन में ही ये व्यक्ति को अपना बना लेते हैं। प्रकृति की ओर से यह गुण इन्हें सहज उपलब्ध है। वाल-युवा वृद्ध सभी को समान आदर और स्नेह देते हैं। ये 'स्वामी जी' के उपनाम से प्रसिद्ध हैं।

—श्री मूलचन्द जी म० और श्री फूलचन्द जी म० की शिष्य परम्परा नहीं है।

श्री मदनलाल जी म० के ६ शिष्य हुए, जिनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं :—

(i) **श्री जग्गूमल जी म० :**

इनका जन्म, रोहतक में श्री चिरंजोलाल जी जैन के घर मे हुआ था। युवा होने पर श्रीमती शर्बती देवी से इनका विवाह हुआ। इनके तीन पुत्र हुए। ५१ वर्ष की आयु में घर-परिवार सब को तज कर नारनौल में माघ शुक्ला त्रयोदशी सवत् १९९३ के दिन दीक्षा ग्रहण की।

अन्तिम दिनों में दिल्ली चाँदनी चौक में स्थिरवासी रहे। १० मई १९५९ ईस्वी में इनका स्वर्गवास हुआ।

(ii) **श्री सुदर्शन मुनि जी म० :**

इनका जन्म, ४ अप्रैल १९२३ ईस्वी में, रोहतक शहर में, पिता श्री चन्दगीराम जी जैन, माता श्रीमती सुन्दरीदेवी जी की कुक्षी से हुआ था। इन्होंने १८ जनवरी १९४२ के दिन सगरूर (पजाब) में दीक्षा ग्रहण की।

ये मधुर वक्ता, आगमज्ञाता मुनिराज हैं। इनके प्रवचनों में तेज-ओज एवं माधुर्य का सामञ्जस्स रहता है। साधुचर्या के प्रति सजग, समाज सुधार हेतु प्रयत्नशील हैं।

(iii) **तपस्वी श्री बदरो प्रसाद जी म० :**

इनका जन्म ग्राम रिढाणा (रोहतक) में संवत् १९६३ में, पिता

श्री गंगाराम जी जैन व माता श्रीमती चन्द्रावली जी के यहाँ हुआ। योग्य अवस्था प्राप्त होने पर श्रीमती भूलांदेवी से विवाह हुआ था। इनके दो पुत्र हुए।

श्रीमती भूलांदेवी के स्वर्गवासी होने पर वैराग्यभाव से अपने दोनों पुत्रो (श्री प्रकाशचन्द जी, श्री रामप्रसाद जी) सहित नारनौल नगर में संवत् २००१ माघ शुक्ल ५ को जिन-दीक्षा व्रत ग्रहण किया।

ये तपस्वी मुनिराज है, तथा 'तपस्वी जी' के नाम से ही प्रसिद्ध है। वर्षों मे एकाशन तप कर रहे है।

(iv) श्री प्रकाशचन्द्र जी म० :

इनका जन्म, पिता श्री बदरीप्रसाद जी माता श्रीमनी भूलाँ देवी जी के यहा पौष कृष्ण ६, सवत् १६८५ में हुआ था। पिता श्री के साथ दीक्षा ग्रहण की। ये विनयी, आगमज्ञ एव मितभाषी मुनि है।

श्री रामप्रसाद जी म० :

जन्मस्थान माता-पिता, व दीक्षा उपर्युक्त। इनकी जन्म निथि सवत् १६८७ वैशाख शुक्ल १२ है। इनकी माना जब स्वर्गस्थ हुई उस समय ये मात्र ५ दिन के थे।

ये विविध भाषा-भाषी, व्याकरण, न्याय व आगम के ज्ञाता, प्रवचनकार, कवि, गायक एवं मिलनसार प्रकृति के मुनिराज है।

श्री रामचन्द्र जी म० :

इनका जन्म सवन् १६६१, सिरसिली (उ० प्र०) में पिता श्री केहरीमल जी जैन, माता श्रीमती मनोहरी देवी जी के घर हुआ था। कुछ समय तक श्रावक वृति का पालन किया। पश्चात नारनौल में सं० २००१ माघ शुक्ल ५ को दीक्षा ग्रहण की।

अधुना एकाकी वयोवृद्ध होने पर भी साधुचर्या का ध्यान रखते हैं। आजकल सदर बाजार देहली मे स्थिरवास कर रहे है।

—इनमें मात्र श्री सुदर्शन मुनि जी की शिष्य परम्परा है, जो

निम्नलिखित हैं।

१. श्री प्रकाश मुनि जी म० :

जन्म : द्वितीय श्रावण शुक्ल ४, सं० १९९९, देहली ।

माता : श्रीमती चमेलीदेवी जी, पिता श्री पन्नालाल जी भंसाली।

दीक्षा : २-२-१९५८, स्थान दिल्ली ।

२. श्री पद्म मुनि जी म० :

जन्म : आश्विन कृष्ण ६, सं० १९९७, देहली।

माता : श्रीमती कमलावती जी, पिता मा० श्री श्यामलाल जी जैन ।

दीक्षा : २-२-१९५८, स्थान दिल्ली।

३. श्री शांति मुनि जी म० :

जन्म : १७ सितम्बर १९४२, देहली।

माता : श्रीमती सरस्वती देवी जी, पिता श्री स्वरूपचद जी जैन

दीक्षा : २-२-१९५८, स्थान दिल्ली।

४. श्री रामकुमार मुनि जी म० :

जन्म : १५ अक्तूबर १९४९, ग्राम बुटाना [हरियाणा]।

माता : श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी, पिता श्री कृपाराम जी जैन।

दीक्षा : २५ अप्रैल १९६६, स्थान बुटाना।

५. श्री विनय मुनि जी म० :

जन्म : वैशाख शुक्ल ८ सं० २००६, ग्राम बुटाना (हरियाणा)

माता : श्रीमती सोनादेवी जी, पिता श्री मोतीराम जी जैन

दीक्षा : ३०-१-१९६७, मूनक (पंजाब)।

६. श्री जय मुनि जी म० :

जन्म : २७ अक्तुबर, १९५६, ग्राम बुटाना (हरियाणा)।

माता : श्रीमती बहोती देवी जी, पिता श्री पन्नालाल जी जैन।

दीक्षा : १५-२-१९७३, स्थान बुटाना।

७. श्री नरेश मुनि जी म० :

जन्म : भाद्रपद कृष्ण ४ सं०२०१३, हिलवाड़ी (उ० प्र०)।

माता : श्रीमती प्रकाशवती जी, पिता श्री वकीलचंद जी जैन ।
दीक्षा : २६-११-१९७३, स्थान गन्नौर (हरियाणा)

८. **श्री सुन्दर मुनि जी म० :**

जन्म : द्वितीय भाद्रपद शुक्ला ३, सं० २०१५, ग्राम रिढाणा ।
माता . श्रीमती भरपाई देवी जी, पिता चौ० माईराम जी ।
दीक्षा : ५-१२-१९७३, स्थार गन्नौर मंडी ।

९. **श्री राजेन्द्र मुनि जी म०**

जन्म : २ जून १९५९, स्ग्राम महोटी (हरियाणा)
माता : श्रीमती अनारकली देवी जी, पिता श्री रामगोपाल जी जैन ।
दीक्षा : १८-१-१९७९ स्थान सोनिपत मंडी ।

१०. **श्री राकेश मुनि जी म० :**

जन्म : १०जुलाई १९६०, सोनिपत मण्डी (हरियाणा)
माता : श्रीमती चन्द्रावती देवी जी, पिता श्री बनवारीलाल जी जंन ।
दीक्षा : १८-१-१९७९ स्थान सोनिपत मडी ।

उपर्युक्त सभी मुनिराज अध्ययनशील प्रवचनकार, विनयादि गुण सम्पन्न हैं । समाज को । इन मबसे बड़ी आशायें हैं ।

8

श्री वृद्धिचन्द जी म०

इनका जन्म, उद्भट वीरों की जन्म-भूमि—मेवाड़ में हुआ था। गांव का नाम है—बगड़ूंदा। मेवाड़ की हरियाली भूमि उदयपुर रियासत का छोटा-सा गांव। जहाँ चारों ओर दूर-दूर तक महाराणा प्रताप के शौर्य की गाथा गाते हुए पहाड़ खड़े हैं। महाराणा प्रताप की लौह प्रतिज्ञा—मेवाड़ का भूखंड स्वतंत्र करवालेने की दृष्टि से शासकीय इतिहास में अमर है। ओसवालों के लोढ़ा गोत्रीय, वृद्धिचन्द जी के पिता श्री भी महाराणा की तरह एक लौह-प्रतिज्ञा कर चुके थे। उनकी प्रतिज्ञा थी—

"मेरी संतान—पुत्र या पुत्री, दीक्षा लेना चाहेगा या चाहेगी, तो मैं उसे रोकूंगा नहीं।"

वृद्धिचन्द जी को ऐसे धार्मिक निष्ठावान् पिता के दृढ़ सस्कार विरासत में मिले थे। बड़े होते-होते तो वे सस्कार अस्थियों में रम गए।

वृद्धिचन्द जी का बचपन शुरू हुआ। किशोर होते-होते सगाई कर दी गई। विवाह का दिन निकट आया। उन्होंने शादी से इन्कार कर दिया। पिता ने रोका नहीं। संयमीय जीवन की कठिनाइयों से अवगत कराया। संयम का सही स्वरूप परिचित कराया। वृद्धिचन्द जी ने संयमपथ सं० १९५६, आषाढ़ शुक्ला ९ को स्वीकार कर लिया।

इनके ताऊ (पिता के बड़े भाई) के पुत्र श्री नेमीचन्द जी[1] आचार्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा के आचार्य श्री पूनमचन्द जी म० के पास पहले से ही दीक्षित हो चुके थे। वृद्धिचन्द जी ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। दीक्षा-उत्सव का कुल खर्च घर की ओर से हुआ।

इन्हीं के साथ-ही-साथ बड़े भाई कंवरसेन जी भी दीक्षा लेना चाहते थे। वे विवाहित थे। पत्नी ने अनुमति नही दी। १२ वर्ष बीत गए। पत्नी चल बसी। कंवरसेन स्वतन्त्र हो गए। इन्होंने श्री वृद्धिचन्द जी म० को अपना गुरु बना लिया।

मुनि शिरोमणि श्री मायाराम जी म० घूमते-विचरते मेवाड़ (राजस्थान) जा निकले। वहाँ श्री नेमीचन्द जी म० आदि सत-समूह से साक्षात्कार, प्रेमालाप हुआ। साधु-विषयक आचार-वार्ता हुई। दोनों ओर प्रेम जागा। व्यवहार में स्नेह घुला।

मुनि वृद्धिचन्द जी ने श्री मायाराम जो म० को देखा। बहुत ही बारीकी से उनके मन ने उन्हें चिन्हा। उनके संयम, तप, आचार व ज्ञान में उनका मन बधा। मन-ही-मन वे सोचने लगे—"मैं इनके सान्निध्य में जीऊं। जीवन के बचे साँसों को इनके चरणों में अर्पित कर दूं। एक पलक कभी इन्हे अपनी आँखों से ओझल न होने दूं। श्री मायाराम जी म० की तप-सयम, आचार की गगा में एक लहर बन कर समा जाऊं।"

अहर्निश अतर्द्वंद्व चला। अंततः श्री मायाराम जी म० के शिष्यो के सामने उन्होंने अपने मन की बात कह दी। महाराज श्री के शिष्यों ने कहा—"अन्य मुनियों के शिष्यों को, वैरागियों को महाराज श्री अपने सान्निध्य में रखना पसंद नहीं करते।" मुनि वृद्धिचन्द जी के मन मे सतों के उत्तर से जो फांस लगी वह उन्हें और भी सालने लगी।

---

1. आचार्य श्री पूनमचन्द जी म० के तीन शिष्य थे— i श्री नेमीचन्द जी म०, ii श्री जेठमल जी म०, iii श्री ताराचन्द जी म०। वर्तमान में उपाध्याय प० श्री पुष्कर मुनि जी म०, श्री ताराचन्द जी म० के शिष्यरत्न हैं।

अन्ततः साहस की एक घड़ी आई और उन्होंने अपने गुरु श्री नेमीचन्द जी म० के सामने अपनी मनो-भावना व्यक्त कर दी। मुनि नेमीचन्द जी भी श्री मायाराम जी म० से प्रभावित थे। बोले—"वृद्धिचन्द ! मैंने तुम्हारा मन पढ़ लिया। पर सोच समझ लेना। तुम समझते हो, नेमीचन्द की अनुमति मिली कि मैं मुनि मायाराम जी के सान्निध्य में रहने लगू गा। लेकिन ये पंजाब की मुनि-परम्परा के मुनिराज है। उधर ही इनका विचरण होता है। भाषा, प्रांत, प्रदेश, रहन-सहन संस्कृति, परिचित लोग सब—रात में तैरते सपने की तरह छूट जाएंगा। एक बार अपने को फिर से माप लो और निर्णय कर लो। सब कुछ दूर हो जाएगा। स्वप्न, स्वप्न होता है। वह आंखों से देख लेने को कभी नही मिलता—इसी तरह यह कहा हुआ सब स्वप्न हो जाएगा।

—अगर पूरी तरह तैयार हो, तो मुझे इंच भर भी एतराज नही। अणुभर भी विरोध नही।"

मुनि वृद्धिचन्द जी ने फिर से कहा—"श्रद्धेय, जब घर को छोड़ दिया। कूख से जन्म देकर सुख पाने वाली मां को तज दिया। फिर भाषा, प्रांत, संस्कृति सखा और रहन-सहन को क्या देखना ? यह तो आँखों का सुख है। मुनि मायाराम मेरे मन का सुख है। मुझे केवल अनुमति का अवलबन चाहिए। मैं उनकी संयम-सरिता से—'पार उतरि जइहों'—पार उतर जाऊगा।

तब श्री नेमीचन्द जी म० व उनके सहयोगी संतो ने श्री माया-राम जी म० से निवेदन किया—"हम आप को सामूहिक-रूप से कुछ देना चाहते है—आपको स्वीकार करना होगा ?"

"ऐसी क्या वस्तु है ? जो भी देगे मुझे सहर्ष स्वीकार होगा। आपके मन में ऐसे पराएपन का भाव क्यो जागा ? बोलो बात क्या है ?"—महाराज श्री ने गम्भीर हो कर पूछा।

सबने सामूहिक रूप में अभिव्यक्ति की—"हम आपके और हमारे मिलन को अक्षर-अमर बनाना चाहते हैं।"

"रहेगा ही फिर बनाने जैसा क्या है ? आपके निर्मल स्नेह को बिसारूंगा नहीं। इतना कह सकता हूँ।"

श्री नेमीचन्द जी म०—"वह तो हम भी नहीं कर सकते। आपकी याद हृदय में अंकित है। वह अंकित ही रहेगी। परन्तु हम दृश्यमान प्रतीक भी इस मैत्री में साक्षी बनाना चाहते हैं।"

"वह प्रतीक क्या है ?"

सन्त—"हम आपको मुनि वृद्धिचन्द जी को भेंट-स्वरूप दे रहे हैं। आप स्वीकार करें।"

श्री मायाराम जी म०—"क्या यहां रहते वृद्धिचन्द मेरा नहीं है ? मैं आप सब को अपना मानता हूँ। आप अकेले वृद्धिचन्द की बात क्यों कर रहे हैं ?"

सन्त—"नहीं, आप इस भेंट को अवश्य स्वीकार करें—हमारी यह हार्दिक इच्छा है।"

श्री मायाराम जी म०—मुनिगण ! आप सुने। आप सब मेरे अपने हो। मैं सब को अपना मानता हूँ। परन्तु जहाँ तक किसी परम्परा के गुरु के शिष्य को साथ ले जाने वाली बात है, यह मुझे स्वीकार नही है। मैंने संघ में ऐसी कोई परम्परा क़ायम करना नहीं चाही या चाहता कि सन्त एक स्थान को छोड़े और दूसरी परम्परा में जाए। मैंने निर्देश दिया है—कभी किसी के सन्त और वैरागी व प्रतिबोधित शिष्य को अपने पास मत रखो। अतः मुझे यह बात कभी स्वीकार नहीं हो सकती। मैं तो एक ही बात मालूम करना चाहता हूँ, आखिर यहाँ क्या बात है ? यहाँ क्या कमी है ? आपकी परम्परा उज्ज्वल है। शुद्ध संयम-निष्ठ है। क्यों यहाँ से अलग होने की बात है ? और वृद्धिचन्द के उच्च संयम के भाव हैं, तो वह यहीं रहकर क्यों नही अपने संयम को प्रखर बनाए ? आगम हमारे सामने हैं। उन्हें पढ़ा जाए, और चाहे जैसा उज्ज्वल आचार पा लिया जाये।"

सन्तों ने फिर कहा—"यह तो ठीक है। हम भी जानते हैं, परन्तु यह स्थिति भिन्न हैं। हम आप को भेंट देते हैं। मुनि वृद्धि-चन्द रजामंद है, आप स्वीकार करें। यह भेंट हमारी और आपकी परम्परा में स्नेह-हेतु बनेगी।"

अन्ततः श्री मायाराम जी म० ने स्वीकृति दी। कहा—आप सब कहते है, तो ठीक है—मुनि वृद्धिचन्द मेरे पास रह लेगे।"

सभी सन्त और मुनि वृद्धिचन्द जी ने महाराज श्री के चरण गहे और कहा—"मुनि वृद्धिचन्द मात्र रह लेगे—इतने से काम नही चलेगा। आज से यह आपके शिष्यों में परिगणित होगा। आज के बाद वृद्धिचन्द आपका ही शिष्य कहलाएगा, शिष्यो में गिना जाएगा। यह स्वीकृति आप दे दें।"

श्री मायाराम जी म० को मानना पडा। अन्यत्र दीक्षित श्री वृद्धिचन्द जी म० उनके शिष्य कहलाए।

यहाँ यह प्रसंग भी अनोखा ही है कि श्री मायाराम जी म० के श्री नेमीचन्द जी म० से सभी साधु-समुचित समबन्ध थे। मधुरता तो इतनी कि आज भी उनकी परम्परा के सत इस गौरव-गरिमा महिमायुक्त घटना को स्मरण कर महाराज श्री को याद करते है।

श्री वृद्धिचन्द जी म० का साहस भी कम नही था। देश-प्रदेश, भाषा सब कुछ छोडकर श्री मायाराम जी म० के सयम को जी जान से अपनाया। जीवन को साझ तक उनकी परम्परा में ही रहे-सहे। इसी में उनके शिष्य बने और इस में शिष्य-परम्परा जन्मी।

श्री वृद्धिचन्द जी म० के अन्तर्जीवन की कुछ परिक्रमा करे। योगिराज श्री ने हमें बताया—वे अतिसरल पुरुष थे। वाचा उनकी मधु-पूरित थी। कैसा भी व्यक्ति हो, उसे सह लेना, उसके साथ निर्वाह कर लेना, उनकी विशेषता थी। स्वभाव से विनम्र थे। जीवन में अप्रमत्तता थी। हृदय करुणा-युक्त था। गुरुजनों के प्रति आज्ञा-निष्ठ मुनि श्री स्वाध्याय, ध्यान मे निमग्न रहा करते।

श्री वृद्धिचन्द जी म० के लिये हम कहें—वे एक श्रेष्ठ शिष्य थे तथा एक श्रेष्ठ गुरु भी! कैसे? मुनिमना श्री मायाराम जी म० के जीवन से वे जुडे। अन्य परम्परा में जन्म लेकर भी उनके शिष्य कहलाये। इससे उनके सेवा-निष्ठ, आस्थायुक्त 'शिष्यत्व' को कोई भी महान् कहे बिना न रह सकेगा, और उन्होंने पंजाबकेसरी श्री प्रेमचन्द जी म० जैसा तेजस्वी शिष्य बनाया, इस लिये उनमें समाया 'गुरुत्व' भी अप्रतिम था। वे जीवन में कितने गहरे उतरे थे। उनके

शान्त-प्रशान्त मानस में कितना, क्या उद्भासित होता था ? एक घटना स्वयं बोलती है—

एक बार श्री वृद्धिचन्द जी म० बिनौली (मेरठ, उ० प्र०) में विराजित थे। वहां एक श्रावक ला० महबूबसिंह जी बीमार चल रहे थे। उपचार होता रहा। किन्तु रोग बढ़ता गया। स्थिति यहाँ आ पहुंची—पारिवारिकों के साथ-साथ हकीम-वैद्य भी निराशा में डूबने लगे। श्री वृद्धिचन्द जी म० श्रावक को नित्य मंगलपाठ सुनाने जाते थे। जीवन से निराश बने श्रावक ने एक दिन कहा—गुरुदेव ! मुझे संथारा करा दीजिये, अब कोई आशा बची नही है। मुनि श्री ने सुना। गम्भीर हुए, कुछ क्षण मौन रहे, बोले—मैं अभी थोड़ी देर में स्थानक से वापिस लौट कर आऊंगा, तब कुछ कहूंगा। वे स्थानक मे लौटे। वहाँ उन्होने क्या सोचा, विचारा अथवा देखा—, हम नहीं कह सकते। वे श्रावक को दर्शन देने पुनः गये तथा उससे बोले—"निराश होने की कोई बात नही है। अभी समय दूर है।"

मुनि श्री के उस दिन के कथन के पश्चात्—वे श्रावक २५ वर्ष तक जीवित रहे। इतनी दीर्घ दृष्टि थी उनमें।

अब आगे की बात।

एक बार अतीत अकुलाया। श्री वृद्धिचन्द जी म० श्री माया-राम जी म० के बाद फिर राजस्थान गये। मेदपाट घूमे। अपनी सम्प्रदाय के मुनियों से मिले-भेट, मुलाक़ात की और फिर लौट आए—देसों में देस हरियाणा…… ।

१९ वर्ष के थे तब मुनि-व्रत ग्रहण किया। ४८ वर्ष तक मुनि रहे। ६७ वर्ष की अवस्था में जीद शहर के जैन स्थानक मे सं १९९४ श्रावक कृष्ण १२ को उनका समाधि पूर्वक स्वर्गवास हुआ।

इनके चार शिष्य हुए जिनका विवरण इस प्रकार है—

एक—**श्री कंवरसैन जी म०** : ये श्री वृद्धिचन्द जी म० के ज्येष्ठ भ्राता थे। यौवन के प्रारम्भिक क्षणों में गृही रहे। पश्चात् पत्नी का देहान्त हो जाने पर दीक्षा ग्रहण की। लगभग ३० वर्ष तक संयम पर्याय का पालन कर, मूनक (पंजाब) में, सं० १९९७, फाल्गुन मास में स्वर्गवासी हुए।

दो—**श्री मामचन्द जी म० :** ये गुर्जरवंशीय थे। इनका जन्म साढ़ोरा (पंजाव) में हुआ था। इनकी दीक्षा संवत् १९६७ आषाढ़ शुक्ला दसमी को सम्पन्न हुई। विशेष परिचय अनुपलब्ध है।

तीन—**पंजाब केसरी श्री प्रेमचन्द जी म० :** मुनि और सिंह ! सोचने पर साहस विचित्र-सा लगता है। किन्तु मुनि श्री प्रेमचन्द जी म० के निर्भीक व्यक्तित्व को सामने रखकर सोचा, विचारा जाये तो तनिक भी असंगत न लगेगा।

मुनि-प्रवर श्री प्रेमचन्द जी म० का जन्म नरुवाल (नाहन) पंजाब में पिता श्री गेंदामल जी के घर माता श्रीमती साहिब देवी जी की कुक्षी से हुआ था। तब सं० १९५७ था। १९ वर्ष की युवावस्था में गुरु श्री बृद्धिचन्द जी म० के चरणों में सं० १९७६ में दीक्षा ग्रहण की। इनके मुनि-जीवन के कुछ विशिष्ट गुणों का आलेख कर रहे हैं—

मुनि श्री आगमज्ञ, तार्किक व चर्चावादी सब कुछ थे। अनुशासन उन्हें प्रिय था। स्वयं भी अनुशासन की तीखी धार पर चलते तथा दूसरों को भी इसके लिये सम्प्रेरित करते थे।

वाणी के वे जादूगर थे। उनके प्रवचन सिद्धान्त-मण्डित होते थे। लेकिन विषय रुक्ष हो, ऐसा नहीं। प्रवचन-वेला में बात-बात पर हास्य का सतरंगी समा बाँध देना उनके लिये साधारण-सी बात थी—भाषण-शैली सरल, सरस पर ओजपूर्ण थी। कुछ लोगों के विचार से पुरातनवादी थी। लेकिन अन्ध पुरातनवादिता स्वयं उन्हें स्वीकार न थी। उनके प्रवचनो में विज्ञान-विषयक चर्चा भी चलती थी। विज्ञान और आगम का समन्वय कर वे सिद्धान्त को श्रोता के गले उतार देते थे।

उनका शारीरिक गठन व सौष्ठव ऐसा था कि वे बिना कहे और बिना बताये ही पजाब केसरी थे। उनका सुन्दर सुघड़ शरीर, लम्बा क़द, गौर वर्ण, विशाल भाल, उपनेत्रों से झाँकती तेजयुक्त आँख—यह सब उन्हें पंजाब केसरी कहने को विवश करता था।

उन्होंने पंजाब, हरियाणा, देहली, उ० प्र०, राजस्थान, म० प्र० और गुजरात तक का भ्रमण किया तथा जनता को शराब, माँस

आदि दुर्व्यसनों से मुक्त किया। पाखण्ड का पूरी शक्ति से, विरोध किया। इस प्रसंग में कितने ही स्थानों पर कट्टर पंथियों से पाखण्डियों से उन्होंने शास्त्रार्थ किये तथा उन्हें पराजित कर जिन-शासन के गौरव को बढ़ाया।

श्रमण-संघ के निर्माण से पूर्व पंजाब-मुनि-सम्प्रदाय में वे उपाध्याय थे। संगठन के पक्ष धर होने के कारण, श्रमणसंघ के निर्माण में पूर्ण योगदान दिया। इनके व्याख्यानों से प्रभावित होकर श्रमण-संघ में इन्हें प्रचार-मन्त्री का पद दिया गया।

पंजाब केसरी जी के प्रवचन 'प्रेमसुधा' नाम से कई भागों में प्रकाशित हुए हैं।

दिनांक ८-१-१९७४ को करोलबाग़ देहली में आप श्री का स्वर्गवास हुआ।[1]

चार : **श्री बारुमल जी म०** : ये श्री वृद्धिचन्द जी म० के अन्तिम शिष्य थे। यद्यपि इनको बहुत समय नहीं हुआ है, किन्तु वर्तमान में इनका परिचय उपलब्ध नहीं है।

—इन चार मुनियों में से केवल श्री प्रेमचन्द जी म० की शिष्यावली है। इनके पांच शिष्य हैं—

१—**श्री बनवारी लाल जी म०** : जन्म—आणदी नामक ग्राम (कांधला, उ० प्र०) में सं० १९६२ में हुआ। पिता श्री जयदयाल जी (सैनी) व माता श्रीमती नन्नो देवी जी। आपने श्री प्रेमचन्द जी म० से फ़ाल्गुन शुक्ल, सं० १९९० में खेवड़ा (हरियाणा) में जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की।

ये अपने मुनिवर्ग में सर्वाधिक उल्लेखनीय मुनिराज हैं। अनेक थोकड़े इन्हें कण्ठाग्र हैं। समाज में तत्त्वज्ञ मुनि के रूप में अभिहित किये जाते हैं।

---

१. विस्तृत परिचय हेतु देखें—मुनिश्री का मुद्रित जीवन परिचय—विहार और प्रचार।

इनके एक शिष्य—श्री पार्श्वमुनि जी हैं—

श्री पार्श्वमुनि जी म० : इनका जन्म पैनुला ग्राम (टीहरी, गढवाल) में हुआ। इनकी माता और पिता का नाम क्रमशः—नन्दा देवी व हिमानन्द जी (डंगवाल ब्राह्मण) है।

इनकी दीक्षा चाँदनीचौक, दिल्ली में सम्पन्न हुई थी। दीक्षा सवत् २०२६, भाद्र शुक्ल १०। ये स्वाध्यायशील, प्रवचनकार, सेवा-भावी मुनि है।

२—**श्री तुलसीराम जी म०** : ये पजाब केसरी श्री प्रेमचन्द जी म० के बडे भाई हैं। इनका जन्म, संवत् १९५४ में हुआ। फरीदकोट (पजाब) में इन्होने स० १९९५ श्रावण शुक्ला १३ को दीक्षा ग्रहण की।

ये स्नेहशील वयोवृद्ध मुनिराज है।

३—**श्री दयाचन्द जी म०** इनका जन्म पड़ामौली (सैनपुर, यू० पी०) में सवत् १९७८, आश्विन कृष्णा १५ को हुआ था। इनके पिता श्री नवलसिह जी (सैनी) व माता श्रीमती गेंदादेवी जी है।

जालन्धर छावनी मे इन्होंने सं० २०१५ मार्गशीर्ष तेरस को दीक्षा व्रत अगीकार किया। स्वाध्याय और उस का मनन इनकी रुचि का विषय है।

४—**श्री ओममुनि म०** : ये अध्ययनशील, सेवाव्रती मुनि है। इनकी दीक्षा सं० २०१६, माघ मास में फरीदकोट मे सम्पन्न हुई। पजाब प्रदेश इनका विचरण स्थल है।

५—**श्री जिनदास मुनि म०** : बड़ौदा ग्राम (जिला जीन्द) में सवत् १९६४ की कार्तिक शुक्ला पंचमी को इनका जन्म हुआ। इनके पिता श्री देवीचंद जैन व माता श्रीमती सोनाबाई थे। जीवन के पुर्वार्ध में गृही रहे। इन्होने स० २०२० मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा में मालेरकोटला में दीक्षा ली।

ये विनम्र, मिलनसार तथा सहृदय मुनि है।

9

सेवा-समर्पित

श्री मनोहरलाल जी म०

श्री मायाराम जी म० के पाँचवें शिष्य थे—श्री मनोहरलाल जी म० ! उनके परिचय मे पूर्व हम शास्ता भगवान् महावीर की एक आज्ञा का उल्लेख कर रहे हैं। महावीर की उस आज्ञा में ही खोये-समाये हैं—मुनि मनोहरलाल !

शास्ता भगवान् महावीर ने अपने धर्म-प्रवचन में कहा—"सर्व आचरणों में श्रेष्ठ आचरण है—सेवा ! इस सेवा से व्यक्ति तीर्थंकरत्व की उपलब्धियों का स्वामी बन जाता है। संघ का कोई भिक्षु यदि रोगी हो जाये और दूसरा भिक्षु तपोऽनुष्ठान में संलग्न हो, तो उसे तप छोड कर रोगी की सेवा मे चले जाना चाहिये।" महावीर के इस आदेश को हम सूक्ष्मता से आंके। हमें यह न समझना चाहिये, कि तप छोड़ने से अधर्म होगा, अपितु तप से भी अधिक उपलब्धि सेवा से हमें प्राप्त होगी। यदि हम ऐसा नही करते हैं, तो हमारा तप दूषित हो जायेगा।

श्री मनोहरलाल जी म० ने गुरु से जो प्राप्त किया था, उसके प्रति उनकी कृतज्ञता के नेत्र सदैव खुले रहते हैं। गुरु को नौका कहें या प्रकाश कहें ? शिष्य ने जो कुछ पाया है—वह गुरु से पाया है। अतः गुरु से प्राप्त उपलब्धि के तुल्य संसार में कुछ नहीं हो सकता। गुरु के इसी महत्त्व को जाना था—श्री मनोहरलाल जी म० ने।

उनके जीवन का आख्यान कहता है—वे चरित-नेता, महान् गुरु श्री मायाराम जी म० के लिये पूर्णतः समर्पित थे। उनका अपना कहने को कुछ न था। जो था—वह सब गुरु को अर्पित था। इस लिये वे अपने गुरु के साथ काया से छाया की तरह जुड़ गये थे।

महान् गुरु के आहार के अनन्तर ही वे आहार करते, गुरु के शयन के पश्चात् ही वे शयन करते। उनके गुरुराज जहाँ जाते, वे साथ-साथ उनकी परिचर्या-हेतु आसन लेकर पीछे-पीछे चलते। गुरु के बैठने पर वे करबद्ध उनकी सेवा में उपस्थित रह, आदेश माँगते—"इस तुच्छ शिष्य के लिये आप को क्या आज्ञा है!" ऐसा था—उनका सेवामय आचरण।

हमें कहना होगा—श्री मनोहरलाल जी म० ने अपने जीवन के बिन्दु को गुरु के विशाल, अगाध सिन्धु में विलीन कर स्वय को भी अतल सागर बना लिया था।

पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० कहा करते—श्री मनोहरलाल जी म० शालीनता और विनय के आदर्श थे। इनका जन्म रोहतक नगर के बाबरा मुहल्ले के सम्पन्न अग्रवाल परिवार में हुआ था। और परिचय उपलब्ध न हो सका।

६. श्री कन्हैयालाल जी म० : ये चरित-नेता के छठे शिष्य थे। इनका जन्म-स्थान देहली था। और परिचय अनुपलब्ध है।

५ और ६ की शिष्य परम्परा नही है।

10

गुरुवर्य श्री सुखीराम जी म०

श्रद्धाधार श्री मायाराम जी म० के अनुज एवं उनके सातवें व अन्तिम शिष्य—श्री सुखीराम जी म० !

तप,त्याग, तितिक्षा, क्षमा, धैर्य, करुणा, समता व संयम की जीवन्त प्रतिमा ! जितना भी कह लिया जाये, उनके विषय में वह स्वल्प है ।

उनके जीवन का इतिवृत्त, साधुता की उज्जवल चादर स्वयं बुनकर, दिखाता है, तो कैसे—

\+ + +

श्री मायाराम जी म० साधुत्व में रम चुके थे । वर्ष पर वर्ष व्यतीत होते जा रहे थे । एक दिन सुखीराम जी के मस्तिष्क में विचार आया—"आदरणीय भ्राता मायाराम साधु बन गये । एक के बाद एक गांव से अनेक साथी भी उनके सान्निध्य में पहुंचते जी रहे हैं । एक मैं हूँ, कि घर-गृहस्थी के उत्तरदायित्व में बंधा यहीं जी रहा हूँ ।" सुखीराम जी के हृदय में मुनित्व-प्राप्ति की तड़प थी किन्तु घर-परिवार की स्थिति कुछ ऐसी थी कि चाहते हुए भी वे मुनि-व्रत न ले पा रहे थे ।

एक बार सुखीराम जी श्री मायाराम जी म० की सेवा में उपस्थित हुए । साधु बनने का मन व्यक्त किया । घर-परिवार के बन्धन

भी सामने थे। श्री मायाराम जी म० ने सुखीराम जी से सब प्रश्न सुने। अन्त में समाधान देते हुए बोले—"सुखीराम ! क्या तुम ऐसा समझते हो—साधुता केवल एक विशेष प्रकार के वेष का नाम है। ऐसा न समझो। वह तो अन्तर की करवट है। अन्तर में साधुता आये, यही तो सच्ची साधुता है। ये बाह्य परिवेश तो उस अन्तर में जागी साधुता के संरक्षण-हेतु हैं। पहले तुम अन्तर से पूर्ण साधु हो जाओ। इस हेतु तुम विवेक, विचार, समत्व की साधना करो। ऐसा करते हुए जब लगे—अब मुनित्व का जन्म हो गया है, तब न बाहर में कुछ बन्धन रहेगा, न भीतर में।" सुखीराम जी ने सब एक-चित्त से सुना। वे घर लौट आये और श्री मायाराम जी म० द्वारा उपदिष्ट तत्त्व की साधना करने लगे।

उनके जीवन में समत्व कितना घटित हुआ, यह कुछ घटना प्रसंगों से आँक सकेंगे।

\+ + +

—सुखीराम खेत से घर लौट रहे थे। घर पर बैलो को लाना था। बैल तीन थे। बैलों को लाने वाले एक सुखीराम थे। बैल थे कि वे सुखीराम के संकेत पर न चल कर, मनमाने ढंग से चलते थे। एक को वे राह सुझाते घर की, तो दूसरा अपनी नई राह चलता। दूसरे को ठीक चलाते घर की ओर, तो तीसरा पगडंडी से हट कर, खड़े खेत में मुंह मारता।

—बैल घर की ओर आगे नहीं बढ़ रहे थे। वे मन-माने तरीके से चलते-चलते भी चरते-चरते चलना चाहते थे। अंधेरा घिरता चला आ रहा था। सर पर बोझ और तीन-तीन बैल। खिन्न और दु:खी-से सुखीराम को देख एक परिचित ने पूछा—

"क्या परेशानी है ?"

"परेशानी क्या है ? नाम तो मेरा 'सुखीराम' है, पर 'दुःखीराम' की ही तरह दुःखी हूँ। बैलों को घर लिए जा रहा हूँ। मगर बैल

मानते ही नहीं। फसल में मुंह मारते जाना, जैसे इनकी आदत ही हो गयी है।"

"तो क्या तुम्हारे पास चाबुक नही है ?"

सुखीराम जी ने कहा—मेरी यही एक विवशता है। मैं चाबुक नहीं मार सकता। अगर चाबुक ही मारना होता, तो ये आगे-आगे ही न चलते ? इसी विवशता के कांटे को सहज भाव से निकाल लेना चाहता हूँ।"

"हद है, तुम्हारे अज्ञान की ?"

सुखीराम जी ने भी यही सोचा—"हद है अज्ञान की।" संसार में सब कुछ उल्टा है। दुःखी जहाँ सुख खोजता है, वहाँ दुःख मिलता है। दुःख से दुःख, जन्म लेता है। दुःखी ने सुख चाहा, कि दुःख ही दुःख। दुःख है ही चाह का नाम। चाह मिटी, कि सुख उपजा। मायाराम जी भी यही कहते थे—जिसके पास दिखाई देने वाला सब कुछ है। उसके पास दिखाई न देने वाला कुछ नही है। जिसके पास दिखाई देने वाला कुछ नही है, उसके पास न दिखाई देने वाला सब कुछ है। चाह—न पकड़ में आ सकने वाली परछाईं है। परछाईं को पकडने के लिए लम्बे हाथ करोगे, पकड़ने लपकोगे, वह दूर-दूरतर होती चली जाएगी। पीठ फेरलो। दुःख की छाया मिट जाएगी।"

मौलिक भूल यही है। हम सुख के लिए प्रयत्न करने लगते है। सुख माँगे से कभी नहीं मिला है। सुख न माँगे से ही अंकुरित होता है।

—सुखीराम के यह सोचते, बैल कब चरते, मुंह मारते घर की ओर खिसक गए ? पता ही न चला।

\+ \+ \+

एक बार फिर सुखीराम जी पहुँचे—श्री मायाराम जी म० के पास। इस बार उन्होंने अनेक नियम-व्रत ग्रहण किये। जिनमें भगवान् महावीर द्वारा कथित श्रावकोचित बारह व्रत भी धारण

किये। प्रतिदिवस सामायिक, अष्टमी, चतुर्दशी को प्रौषधोपवास करने की प्रतिज्ञा की। रात्रि चौविहार तथा सम्पूर्ण हरी वनस्पति के प्रयोग का त्याग किया। इनमें प्रौषधोपवास का व्रत बड़ा कठिन था। हो कठिन, तो क्या! जब विचार कर लिया, व्रत ले ही लिया, तो पीछे कैसे मुडा जाए ?

एक बार उन्होंने प्रौषधव्रत किया। गर्मी का मौसम था। पानी भी नही लेना था—उन्हें प्यास लगी। लगती रहे। सुखीराम व्रत के गिरिशिखर मे कंसे नोचे उतरते ? परिचितों और घर के अन्य लोगों को पता लगा, सुखीराम मूच्छित हैं। भागे-भागे पहुँचे उनके पास। मूर्छा तब तक भंग हो चुकी थी। एक ने कहा—'गर्म पानी तो पी ही सकते हो ?

सुखीराम ने कहा—"प्रौषधोपवास सुख की सेज नहीं है। प्रतीज्ञा तो प्रतीज्ञा ही है। प्यास लगे तो लगे। कष्ट मिले तो मिले। परीक्षा और है ही किसका नाम ? यह तो सहिष्णुता और ग्रीष्म ऋतु के ताप की टक्कर है।

"प्रौषधव्रत साधुता का पूर्वाभ्यास है। प्रौषध में मनुष्य सक्षम, और सबल बनता है। संसार के जो रिश्ते-नाते मनुष्य के साथ जुड़े रहते है, उनसे टूटने का अभ्यास करना है। ससार से टूटने का, विमुख होने का अभ्यास है—प्रौषधव्रत का अभ्यास।

"प्रौपधव्रत छहकाय (छह-जीव-स्थान) की हिंसा से मुक्ति का व्रत है। यह मुनित्व प्रकट कर लेने की प्रथम सीढ़ी है। इस में अभ्यास करते-करते ठहराव आ जाए तो मुनित्व घट सकता है।

इस तरह का था, उनका प्रौषध व्रत। और इसी तरह का एक व्रत था 'दिवाभोजी' होने का। कृषि-कर्म करते हुए भी घर-गांव से दूर-खेतों से दिन ढले घर लौटना होता था—पर इनका नियम था 'भोजन करूंगा तो दिन में। सूर्य का अवसान हो जाता तो ये बिना भोजन के ही रह जाते थे।

\+ \+ \+

नम्बरदारी तो थी चहलवंश-परम्परा में परम्परा से ही। जोतराम, आदराम, मायाराम और अन्त में सुखीराम जी को इस पद का वहन करना पड़ा। सरकारी आदेशों का निशाना नम्बरदार को भी होना पडता था। सुखीराम जी के पास अधिकारी आते। उनके साथ इन्हें भी रहना पड़ता था। काम में देर होना तो स्वाभाविक ही था।

कहने को तब तक सुखीराम साधु तो नहीं बने थे, पर स्वीकृत व्रत को साधु की तरह पालन करते थे। दिन अस्त हो जाता तो, सुखीराम बिना भोजन के ही रह जाते।

जब अधिकारियों को यह समझ आया, कि सुखीराम साधक पुरुष है। दिन छिप जाने पर भोजन तक नही करता—तब उनके लिए विशेष व्यवस्था की गयी—'दिन ढलते ही सुखीराम को सरकारी कार्य से निवृत्त कर दिया जाता।'

—इस तरह सुखीराम जी, श्री मायाराम जी म० के पास आया-जाया करते थे। घर सभालते। और प्रतीक्षा करते, कि भतीजा बेगूराम घर-गृहस्थी को समझने लगे, खेती का काम देखने लगे तो मैं आदरणीय श्री मायाराम जी म० के चरणारविंद में पहुंचू।

बेगूराम युवा हुए। घर की जवाबदारी को समझने की प्रौढता उसमें प्रकट होती देख, सुखीराम जी एक दिन महाराज श्री के चरणारविंद में पहुंच गए।

\+ + +

सुखीराम जी ने महामना मुनिराज के चरण छूए तो निश्चिंतता की अनुभूति हुई। विराम की सांस लेकर बोले—"मैं शिष्य बनना चाहता हूँ। आप मुझे अनुगृहीत करें, क्योंकि 'परम' को गुरु के बिना पाया ही नहीं जा सकता। परमेश्वर और गुरु—दोनों सामने खड़े हों, तब शिष्य के सामने बडी विकट समस्या पैदा हो जाती है। शिष्य को सतोष और सुख का अनुभव होता कि गुरु ही महान् है, जिसने गोविन्द प्रभु को बता दिया। अतः आप ही मेरा मार्ग-दर्शन कर सकते

है। अब मेरे सामने ठहरने का अथवा रुके रहने का कोई विकल्प नही रहा। मैंने अपने को साफ तौर पर गुरुचरण की ओर अभिमुख कर लिया है ''

सुखीराम जी अपने मन का अन्तर सुख व्यक्त कर चुके तब मुनि मायाराम जी ने बड़े निस्पृह भाव से सवत् १९५९, पौष शुक्ला ९ को दीक्षा का अभिमन्त्र प्रदान किया।

श्री सुखीराम जी म० ने सन्यस्त जीवन प्रारम्भ किया। गुरु के पथ-निर्देशन मे पूर्ण समर्पित हो गये। उनके जीवन में लोकैषणा को खोजने पर भी स्थान न मिलता। सयम में वे कितने आस्थाशील देहभाव के प्रति कितने अनासक्त थे? पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने बताया—वे आहार-हेतु बैठते तो घी, दूध, मिष्टान्न आदि का सेवन तो दूर रहा, रोटी के ऊपर से घृत-लिप्त भाग को भी हटा कर साथी मुनियों को दे देते। स्वय नीरस भाग ग्रहण करते। आहार की उपेक्षा के कारण उनका शरीर दुर्बल तो अवश्य हो गया, लेकिन उनका अन्त तेज तप्त-सुवर्ण-सम प्रदीप्त हो उठा।

प्रतिष्ठा तो उन्होने न गृहस्थ-समाज मे चाही न मुनि-समाज से! उनका हृदय इतना निरभिमान था, कि कोई अवज्ञा का प्रसग उपस्थित भी हो जाता, तो उसे ममत्व-युक्त सहन कर लेते।

आहार-हेतु वे स्वय जाते थे। अज्ञात कुलों मे जाते। वहाँ कटु-कठोर वचन सुनने का अवसर उपस्थित होना स्वाभाविक था। ऐसे प्रसगो को वे शिव के विषपान की भाँति, पी कर अज्ञजनों को सम्बोधि-प्रदान करते।

एक बार वे पटियाला (पजाब) पहुचे। आहार का समय हुआ तो स्वयं आहार-हेतु गये। वहाँ गये, जहाँ जैन-मुनि कभी भिक्षार्थ नही जाते थे। एक घर में उन्होंने प्रवेश किया। उस घर की महिलाओं ने कभी जैन मुनियों को नही देखा था। उन्हे देख कर वे डर गयीं। उन्होंने नौकर को पुकारा, कहा—देख! घर में कौन आ गये? मार कर भगा दे। नौकर ने तत्काल लकड़ी उठायी और

मारने झपटा। उसने इतना भी समय नहीं दिया, कि श्री सुखीराम जी म० अपने जैन-मुनि होने का परिचय दे पाते और अपनी नियम-मर्यादा से अवगत करवाते। उसने तो लकड़ी उठाई और श्री सुखीराम जी म० पर बरसानी शुरु कर दी। उल्टी-सीधी जहाँ लग गयी, वहीं मारता चला गया। ऊपरी मंज़िल से उसने मारना शुरु किया था, नीचे तक मारता ही चला आया।

पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने हमें बताया कि नौकर ने उन पर इतनी लाठी बरसाई, कि वे बेहोश हो गए। साथ रहे मुनि उन्हे उठाकर जैन स्थानक में लाए। समाज को पता लगा। पूछा गया, घटना के बारे में। श्री सुखीराम जी म० ने साथी मुनियों से कहा—घटना के विषय में किसी से कुछ न कहना। महावीर तो जगल में तप कर रहे थे। उन्हे गवालों ने मारा, तो वे किसे कहने गए। फिर हम तो समाज में रहते हैं। हमारे साथ इस तरह की घटना घट जाये, तो कोई आश्चर्य नही।

रात के समय, श्री मायाराम जी म० का अनन्य चरणोपासक पटियाला-स्टेट का प्रसिडेन्ट सरदार गुरुमुखसिह[1] दर्शनार्थ आया। उसे घटना का पता चला तो बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने मारनेवाले का नाम व पता पूछा। श्री सुखीराम जी म० ने कहा—"मारने वाले का नाम बता कर हम उसे दडित करवाना नहीं चाहते। साधु के आचार का इस तरह की घटनाए अंग है। मुझे कष्ट इस बात का नही है, कि उसने लाठी बरसाई। मुझे आंतरिक पीड़ा यह अनुभव हो रही है कि जिस क्रूर परिणाम मे उसने लाठी बरसाई, उन क्षणों में कितने कितने जन्मों के लिए कर्मबंध किया होगा, उसने ?"

\+ \+ \+

क्षमा के वे साकार स्वरूप थे। विरोधी की तीव्र वाक-झझाओ को सहपाने में उनका हृदय हिमालय की सादृश्यता रखता था। कोई कितना ही कठोर उन्हें बोलता, अपशब्द कहता तब भी उनके मानस-समुद्र में कभी ज्वार उद्वेलित नहीं होता। प्रत्यक्षतः अनुभव

(१) देखें—विवेक की आखे, पृष्ठ ६४

करें। एक और घटना के द्वारा—

एक बार (सं० १९७१) श्री सुखीराम जी म० ने बामनौली (मेरठ, उ० प्र०) में चातुर्मास किया। प्रवचन दोपहर को होता था। सामिप्य पाने वाले लोग एवं श्रोता उनके तप-त्याग, तितिक्षा, क्षमा आदि गुणों को देखकर चित्रलिखित रह गये थे। जहाँ जब दो-चार व्यक्ति एकत्र होते, मुनि—चर्चा चलती, तो एक समवेत स्वर उभरता—ग़ज़ब के साधु हैं—श्री सुखीराम जी ! इन्हें क्रोध, अभिमान, छोटे-बड़े का भेद तो छू तक भी नहीं गया है। कुछ व्यक्ति एक दुकान पर बैठे यही यही चर्चा कर रहे थे। वहाँ एक संन्यासी भी आ बैठा। उसने यह सब सुना तो बोला—तुम लोग जैन हो, वे तुम्हारे गुरु हैं। भला, कौन ऐसा होगा जो अपने गुरु की प्रशंसा न करें ? वहाँ स्थित व्यक्तियों ने उस संन्यासी से कहा—बात यह नहीं है। सत्य तो सत्य है। उसमें अपना और पराया ही क्या ? तुम कहते हो—वे हमारे गुरु हैं, तो स्वयं तुम उनके समीप जाकर देखो ! प्रवचन सुनो ! हम जो कह रहे है, उसकी सत्यता का पता चल जायेगा।

एक दिन वह संन्यासी दिन के लगभग बारह बजे, जब श्री सुखी-राम जी म० व अन्य मुनि विश्राम कर रहे थे, उनके समीप पहुचा। वहाँ जा कर उसने जैन मुनियों की निंदा करनी प्रारम्भ की। श्री सुखीराम जी म० ने सहवासी मुनियों को सर्वथा मौन रहने का संकेत किया। संन्यासी मुनियों की निन्दा करता रहा। जब उसे उसका कोई उत्तर न मिला, तो उसने कठोर वचन कहने शुरु किये। फिर भी उत्तर न मिला तो गालियाँ देना शुरु कीं। बहुत देर तक वह यह सब करता रहा। अन्ततः उसे लज्जित होना पड़ा और श्री, सुखीराम जी म० के चरणों में गिर कर क्षमा माँगने लगा। महाराज श्री, उसे स्नेह-सिक्त शब्दों में सम्बोधित कर आश्वस्त करते हुए बोले—तुमने अनुचित ही क्या किया है ? तथ्य को परखने का तो सब को अधिकार है। तुम अपने मन में किसी तरह का बोझ न रखो।

संन्यासी प्रसन्नता-पूर्वक लौटा। उसने स्वयं लोगों को अपने द्वारा-कृत भूल को बताते हुए महाराज श्री की प्रशंसा की तथा कहा —"श्री सुखीराम जी म० ग़ज़ब के साधु हैं।"

\+ + +

श्री सुखीराम जी म० का मन साधुत्व की सरिता में किस प्रकार निमज्जित हो गया था, इसकी एक जीवन्त घटना इस प्रकार है—

श्री सुखीराम जी म० ने जीवन में संयम को भोगा। दुःख-सुख में समता से मैत्री बनाए रखी। जीवन का अन्तिम चरण आया। पूर्वकृत कर्म का परिणाम था, उनकी पसली में नासूर हो गया। नासूर भी एक नहीं तीन। चिकित्सक प्रत्येक दिन उपचार के लिये आता। तीनों घावों में तीन औषधि से भीगे वस्त्र ठूंसता। हर दिन की मरहम पट्टी के बाद, वह सोचा करता यह—'यह मानव है या देव। कितनी पीडा! कितने गहरे घाव!! पर इसके मुंह से उफ निकलना तो दूर चेहरे पर दुःख-दर्द की एक रेखा भी उघड़ी हुई नजर नहीं आती।'

एक दिन साथ के मुनियों ने डाक्टर से पूछा—"अब घाव कैसे है? और अभी ठीक होने में कितना समय लगेगा?"

डाक्टर भावविभोर होकर बोला—"नासूर इस आत्मवान् का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मुझे लगता है, यह मानव नहीं देवपुरुष है, साधु के वेष में। हम लोग नासूर की जगह को शून्य कर के मरहम पट्टी करते हैं।तब तो मरीज चीखने लगता है। परन्तु इस भिक्षु के मुख पर दर्द की एक शिकन भी दिखाई नहीं देती। सचमुच भारत सन्त-महात्माओं के इस प्रकार के तप-त्याग से धन्य है। भारत की पुण्यधरा इस प्रकार के साधुओं और कष्ट-सहिष्णुओं के कारण ही धन्य है। मैंने ऐसा साधु पुरुष कभी नहीं देखा है।

\+ + +

जब वे स्वस्थ हो चले तो मुनियों ने उनके प्रति समवेदना प्रकट करते हुए कहा—'आपने बहुत कष्ट सहा।' तभी महाराज श्री कहते—"साधुता सुख का बिछावन नहीं है। साधुता तो सूली की शय्या है। संयम अगर मन पर बस गया, तो सूली की शय्या फूलों की शय्या बन जाती है। संयम में साधु का मन नहाया

नहीं, तो साधुता काँटों की शय्या है। साधुता स्वीकार की है तो संयम के लिए जीना सीखो ! संयम जीवन है तो असंयम मृत्यु है। इन दो शब्दों का आरोह-अवरोह-रहित संगीत साधु को जिस दिन सुनाई देने लग जाएगा, समझ लो उसी दिन से साधुता का सच्चा सुख उसकी आत्मा में उतर आयेगा।"

गुरुवर्य श्री सुखीराम जी म० महामनीषी श्री मायाराम जी म० के अनुज स्वयं शिष्य दोनों एक साथ थे तथा पूरे जीवन भर वे उनके विचारों मे सदा ही आप्लवित होते रहे।

रोहतक शहर मे सं० १९७९, पौष मास मे उनका समाधि-पूर्वक स्वर्गवास हुआ। वहां उनका एक स्मारक भी निर्मित है। अनेक श्रद्धाशील पुरुष वहाँ जाकर अब भी तपः पूतः सयम जीवन का पुण्य स्मरण करते है।

तीन शिष्य आपके हुए—

१. प० श्री अमीलाल जी म०, २. पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म०, ३ तपस्वी श्री नेकचन्द जी म०।

शिष्य-परम्परा :

श्री सुखीराम जी म० के तीन शिष्य हुए। नाम परिचय क्रमशः अंकित किए जा रहे है :—

एक—श्री अमीलाल जी म० : ये सुखीराम जी के प्रथम शिष्य थे। इनका जन्म और जीवन, किशोरावस्था और जवानी, दीक्षा और साधना-परस्पर वृक्ष और लता की तरह लिपटे हुए है।

जन्म : नगूराँ ग्राम (जि० जींद, हरियाणा) में संवत् १९४२ को हुआ। पिता—चौ० बूटीराम जी के एकमात्र आत्मज ! कुलतः ये भी जाट-वंशीय थे।

विवाह तभी हो गया था, जब उन्होंने विवाह को एक खेल से आगे कुछ न जाना था। किशोर हुए। विवाह को समझा। विवाह का अर्थ तब इन्हें पता चला, कि जो 'सगिनी है—वह साथ-साथ जीने-मरने का व्रत लिए हुई, हमेशा के लिए बंधी रहेगी।'

—और तभी इन्हें एक अलौकिक स्वप्न-दर्शन हुआ—अभी अमृत कहीं और है। नगूरां में रहते-सहते, मैं वहाँ तक कभी न पहुँच पाऊंगा। परम, जगत्, जीव और 'अमी' की तलाश में द्विरागमन के ठीक चार दिन पहले निकल पड़े—घर और गाँव को तज कर। जब चल पडे तो फिर लौटकर या मुड़ कर इन्होने न घर की ओर झांका, न गांव की ओर उद्ग्रीव हुए।

उक्त चार तत्त्व की खोज में, प्यासे मृग की तरह, साधु-संन्यासियों की मृग-मरीचिका की ओर भागे-भागे फिरे। उमगे-उमगे दौड़ते रहे। जहाँ गए, वही प्रश्न रखे। समाधान न मिला तो नहीं मिला। उनके मस्तिष्क में प्रश्न-पर-प्रश्न उठते ही रहे। पर कोई समाधान देने वाला साधु-सन्यासी न मिला।

संयोग की बात !

श्री मायाराम जी म० मिले। श्री मायाराम जी म० ने 'परम', 'जगत' 'जीव', और 'अमी' के प्रश्नों का समाधान दिया। अमीलाल जी का मन शांत हुआ। दीक्षा की अभ्यर्थना की। सवत् १९६५, वैशाख शुक्ल १५ पटियाला में महामुनि-द्वारा दीक्षा ग्रहण की। इन्हें श्री सुखीराम जी म० का प्रथम शिष्य घोषित किया गया।

दीक्षोपरान्त ४-५ वर्ष तक आप श्री मायाराम जी म० की पुनीत सेवा में रहे। उनके सान्निध्य में अध्ययन किया। ३० जैनागमों की स्वाध्याय के अतिरिक्त शताधिक तत्त्व ज्ञानयुक्त 'स्तोक' (थोकड़े) व अनेक पद्य (ढालें) मुखस्थ कीं।

समाज में मधुर कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। इतनी दीर्घ कथायें इन्हें स्मरण थीं कि रात्रि में ज़बानी महीनों तक सुनाते रहते, किन्तु वे समाप्त न होती थीं।

एक मधुर संस्मरण है—

गुजरात प्रदेश के किसी जिज्ञासु के अन्तर में कोई प्रश्न पनप रहा था। उसने वह प्रश्न अनेकों मुनियों के सम्मुख रखा। समाधान

सुना। किन्तु उसका अन्तर सन्तुष्ट न हुआ। अन्ततः वह जिज्ञासु जैनागम रत्नाकर आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी म० के पास पहुंचा। उन्होंने उसका यथोचित समाधान दिया। इसी प्रसंग में आचार्य श्री ने उस को कहा—"यदि तुम्हें और कुछ पूछना हो तो श्री अमीलाल जी म० के पास चले जाओ।" जिज्ञासु सन्तुष्ट हो चुका था किन्तु आचार्य श्री के श्रीमुख से उनका नाम सुनकर वह श्री अमीलाल जी म० के दर्शन कर फिर अपने घर लौटा।

आयम्बिल तप इनकी साधना का विशेष अवलम्बन था। इसकी अनेक विधियां (लड़ियाँ) इन्होंने अपने जीवन में पूर्ण कीं। श्री बनवारी लाल जी म० (गणावच्छेदक) के स्वर्गस्थ हो जाने पर श्री मायाराम जी म० के मुनि-संघ के अधिष्ठाता बने। सभी मुनि इनकी आज्ञा में सुखपूर्वक विचरते थे। श्रमण-संघ के निर्माणावसर पर आप श्री बिना किसी आग्रह व पदेच्छा के सभी मुनियों सहित उसमें सम्मिलित हुए।

संघ में ये गम्भीर, दूरदर्शी, विचारवान्, मधुर-भाषी आदि गुण-युक्त आदर की दृष्टि से देखे गये।

अन्तिमावस्था में नेत्र-रोग से पीडित रहे। अधिक स्वाध्याय के कारण इनको नेत्र-ज्योति नष्ट हो गयी। इस अवस्था में भी अपने संयम के प्रति सदा सजग रहे। अपनी साधु-समुचित क्रियाओं में किंचित् भी व्यवधान न आने दिया। यहाँ तक कि स्थिर-वास भी स्वीकार न किया।

हरियाणा प्रान्तस्थ जींद नगर में सं० २०१२, श्रावण शुक्ल ५ को संयम का शुद्ध रीति से पालन करते हुए स्वर्गस्थ हुए।

इनके तीन शिष्य हुए—

१—श्री फूलचन्द जी म० :

इनका जन्म, खरेंटी (रोहतक, हरियाणा) में हुआ, पिता, ईसरीलाल जी, माता श्रीमती निम्बोदेवी जी। ये अविवाहित थे। युवा हुए तो सं० १९९२, रोहतक शहर में मुनि-दीक्षा ली।

ये सेवारत, शांत, हंसमुख-प्रकृति के संत पुरुष थे।

पुरखास ग्राम में, संवत् १९९७ पौष मास में स्वर्गवासी हो गए। उन्होंने मुनि-जीवन के केवल ५ वर्ष ही बिताए थे।

२—श्री रूपचन्द जी म० :

ये ऐर कुराना (जि० करनाल) में सं० १९५३ में जन्मे थे। जाति से अग्रवाल थे। अविवाहित रहे।

सं० २००१, चैत्र शुक्ल १३ को जींद नगर में जिन-दीक्षा-व्रत स्वीकार किया।

ये सेवाभावी, स्पष्टवादी और कर्मठ सन्त थे। नानाविध तप इन्होंने किये। स्वावलम्बन भी इनका विशिष्ट गुण था।

जींद नगर में ही सं० २०२६, कार्तिक कृष्ण १३ को संथारा-समाधि-युक्त स्वर्गवासी हुए।

३—श्री जुगमन्दर मुनि जी म० :

ग्राम बोटाना (सोनीपत, हरियाणा) में स० १९८६ में इनका जन्म हुआ। पिता—श्री मामराज जैन, माता—श्रीमती बसन्ती बाई थी। २२ वर्ष की युवावस्था में सं० २००८, मार्गशीर्ष शुक्ल १० को पुरखास ग्राम में मुनि-दीक्षा-व्रत धारण किया।

ये प्रकृति से सरल, सेवा-निष्ठ मुनि थे।

दिनांक ३०-८-१९७९ को शक्ति नगर, देहली में स्वर्गस्थ हुए।

(उपरोक्त मुनियों की शिष्य-परम्परा नहीं है)

एक और शताब्दी-पुरुष :

पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० !

महामनीषी मुनि मायाराम जी के तुरन्त बाद, हम एक दूसरे महिमामंडित शताब्दी-पुरुष का पुण्य स्मरण करने का लोभ सवरण नही कर पा रहे है—वे थे महामना श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ।

हम स्पष्टरूप से योग के बीज-पुरुष पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० को महामुनि श्री मायाराम जी म० का आज का सच्चा उत्तराधिकारी मुनि मानते हैं। इस निश्चल जीवन को हम देख, पढ़ और सुनने के बाद यह कहना चाहते हैं, कि योग का बीज-पुरुष, बीज की तरह जमीन से छिप तो गया किंतु गुणों की दृष्टि से अकुर की तरह जी गया। इसलिए ये पंक्तियाँ हमारे मानस में जूं-की-तूं अकुरित हो रही है—

बीज की तरह मिटो !

अकुर की तरह फूटो !!

वे अकुर की तरह उभरे थे, पर बीज की तरह पूरे जीवन यश और प्रतिष्ठा के महाकीच से बचे रहे। उनके निष्काम साधुत्व की चदरिया पर न यश-अभीप्सा का कोई छींटा दिखाई दिया और न नाम का मोह उनके साधना-पथ में व्याल बन कर आया !

यही कारण है, कि वे योग के सर्वोच्च शिखर पर आजीवन आसीन रहे। लेकिन 'मैं जाना जाऊं—लोग मुझे श्रद्धाहार अर्पित करे, इस कामना से प्रेरित होकर अपने आसन से जरा भी हिले-डुले नही। साधुता उनकी प्राण-शक्ति थी। योग उनके रोम-कूपों से प्रस्फुटित होता था।

दूसरे शब्दों में योगिराज जी के योग की चर्चा यूं भी की जा सकती है कि साधना उनके अणु-अणु में समा गई, तब उन्हें जो आल्हादानुभव हुआ उसी आनन्द को हमने 'योग' नाम दिया।

वे श्रद्धेय पुरुषों के स्नेह-भाजन थे। छोटों के वे श्रद्धाधार थे। साधुत्व उनके नेत्रों से झांकता था। करुणा से उनका तन और मन

भीगा रहता था। इस तरह पद-पद पर वे करुणा का अमृत-कलश थे। दुःखी का दुःख उनकी करुणा को विग ति करने के लिए पर्याप्त था। लेकिन उनकी योग-साधना मूक, उदासीन, गूंगी और अंधी नही थी। अर्थात् उनका करुणा से आर्द्र हृदय व्यक्ति की पीड़ा को देख, मूक नहीं रहता था। उनकी वाचा—ऐसे प्रसंगों पर गूंगी नहीं रहती थी। वे पीड़ित को देख, उसे अनदेखा नहीं करते थे। इस सारे संदर्भ को समझने के लिए छोटी-सी घटना का अवलोकन कर ले।

एक बार की बात। जैन स्थानक का एक समर्पित सेवक। त्यौहार का अवसर। स्थानक में योगिराज थे। सेवक से कहा—"भले आदमी त्यौहार का अवसर है। तू अपने बच्चों के पास क्यों नही जाता? स्थानक का काम तो होता ही रहेगा। जा अपने बच्चों के पास। त्यौहार-वार के दिन तो उनकी सुख-सुविधा का ख़याल कर।"

सेवक योगिराज के अपनत्व-भरे वचन सुन पिघल गया। आँसुओं को गले में निगल कर बोला—"गुरुदेव! मैं इतना अदना और ग़रीब आदमी हूँ, कि पत्नी और बच्चों के लिए त्यौहार के अवसर पर कुछ लेकर नही जा सकता। इससे अच्छा है—मै उनसे दूर ही बना रहूँ। आँखो देखे की लाज और तकलीफ़ कुछ अधिक ही दुःखदायक होती है।"

योगिराज ने उसकी मर्म-वेदना को समझा। तभी एक भक्त वहाँ दर्शन के लिए आया। महामना बोले—"इस भाई की पीडा को समझो। महावीर को वही व्यक्ति समझ सकता है, जो मानव की मनोवेदना को समझ लेता है।"

आगन्तुक दर्शनार्थी ने एकान्त में सेवक की पूरी व्यथा-कथा सुनी और उसकी आर्थिक समस्या का समाधान करते हुए बोला—"जाओ, पहले अपने घर जाओ! अपने बच्चों का त्यौहार पर मन रखो। उनकी ज़रूरतें हल करो।

सेवक घर गया—महामना को मन-मन में कहता गया—"साधु तो वही, जो आहत के मन की भाषा को पढ ले। योगिराज सच्चे अर्थों में योग के शैलशिखर पर बैठे साधुता के शिव-स्वरूप है।"

योगिराज के योगी और करुणार्द्र स्वरूप को हृदयस्थ करने के बाद हम गौरव-पूर्वक यह स्वीकार करते हैं, कि शताब्दी-पुरुष 'महाप्राण मुनि मायाराम' जी का जीवन-ग्रंकन कर पाने का पुण्य श्रेय श्री योगिराज जी म० को है। उन्हीं की कृपा से 'महाप्राण' का लेखन संभव हो पाया है। वे खुद तो बीज की तरह साधुत्व की वसुधा में छुप गए, परन्तु उन्होंने महाप्राण का लगभग पूरा-का-पूरा जीवन-वृत्त ही अपनी श्रुति और स्मृति की गहन गुहा से हम लोगों के लिए सुलभ कर दिया। अगर यह भी कहें, कि इस शती पर उन्होंने उपकार की दृष्टि से हमें यह सुलभ कर दिया, तो भी उक्ति का अतिक्रमण नहीं है।

इस प्रकार महाप्राण-युग के द्वितीय-शताब्दी-पुरुष की सश्रद्ध स्मरण एवं अनंत प्रणाम कर उनका निम्न परिचयांकन प्रस्तुत कर रहे हैं—

जन्म :

वीर-वसुन्धरा बड़ौदा ग्राम, हरियाणा में जनवन्द्य पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज का सवत् १९४७, भाद्रपद कृष्णा ९ को जन्म हुआ। श्री सुखदयाल जी का पितृत्व सन्तुष्ट हुआ। माता श्रीमती लाडो बाई की गोद पुत्र-रत्न से भरी। पुत्र-रहित कुल धन्य हुआ। इनका पूरा कुल-परिवार आनद में नहा उठा। लगा कि जाटवंश में खुशियों का चाँद घर के आँगन में उतर आया है। बालक की क्रिड़ाओं से माता लाडोबाई और पिता सुखदयाल के मन के कोने-कोने में वसंत मुस्कुरा उठा। बचपन चंचल बालक की तरह देखते-देखते अतीत में विलीन हो गया। अल्हड़ किशोर मन ने यौवन की अगवानी प्रारंभ की। कुछ मित्र मिल गए। ऐसे जो रामजीलाल के अद्वितीय पौरुष और साहस से परिचित थे —उन्होंने रामजीलाल को अपना प्रमुख मनोनीत कर लिया। पूरे गाँव में रामजीलाल के दल का वर्चस्व छा गया।

सुपथ और कुपथ के इस दुर्गम दुरूह संगम की दुर्बोध-वेला में, सुपथ का प्रेरक सूर्य बनकर महामना श्री मायाराम जी म० ने इनका जीवन-पथ आलोकित किया। परिणामतः उच्छृंखल मित्रमंडल का

परित्याग कर श्री मायाराम जी म० के आत्मपथ को स्वीकार करने का महाभिव्रत ग्रहण किया।

योगी का योगमन्त्र :

युवा चरित-नायक की इस निर्णय-वेला में पूतमना पूज्यपाद उत्कृष्ट चरित्र के मेरुमणि पूज्यपाद श्री मायाराम जी महराज ने उन्हें योगी बनने का बीज-मन्त्र दिया। यौवन की तमिस्रा में पूज्य गुरुदेव के अन्तस् में मुनि-जीवन बिताने की ज्योति प्रज्वलित हो गई। वे अहर्निश चिन्तन में निरत रहने लगे। माता और पिता के अनन्त वात्सल्य को उपेक्षित कर, उन्हें मुनि-दीक्षा लेनी थी।

माता की ममता उन्हें पद-पद पर मुनि-जीवन स्वीकृत करने मे रोकती-टोकती थी। पिता पितृत्व-हृदय में अनन्त प्यार छिपा, उन्हें समझाते—मुनि-जीवन दुधारी तलवार है। नादानी मत करो। परिजनों का भी साँझ-सवेरे यही स्वर सुनाई देता।

किन्तु पूज्य गुरुदेव की हृदय-अवनि में परम योगिराज श्री मायाराम जी महाराज का बीज-मन्त्र अङ्कुरित हो चुका था। वे संयम-जीवन के शिखर पर आरोहण करना चाहते थ।

पितृवंश के तीन भ्राताओं में एकमात्र पूज्य गुरुदेव ही पुत्र-रूप में जन्मे थे। सभी की आँखें इन्हों पर टिकी थीं। और पूज्य गुरुदेव थे, कि उनका ध्यान परमगुरु श्री मायाराम जी म० द्वारा प्रदत्त बीज-मन्त्र पर केन्द्रित था। अतः परिवार-जनों के निषेधों की दीवार तोड़ी, विधि का ममत्वजाल लाँघा। दो वर्ष बाद मुनि-दीक्षा लेने की स्वर्णिम निर्णय-वेला आयी।

विसङ्गति देखिये ! योगि-जीवन का बीजमन्त्र देने वाले महामुनि अनन्त समाधि में विलीन हो गये। अतः उन्हीं के लघु शिष्य श्री सुखीराम जी महाराज का आपने सदर बाजार, देहली में, संवत् १९७१, मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी की क्षेम-वेला में मुनि-दीक्षा ग्रहण कर शिष्यत्व स्वीकृत किया।

मुनित्व :

मुनि-जीवन स्वीकृत कर लेने से जीवन में पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं होती। मुनि-जीवन का परिवेष और परिधान तो पूर्णत्व प्राप्त करने के लिये साधक को पूरी तरह सन्नद्ध करता है। आज प्रायः यह मान लिया जाता है, मुनित्व का परिधान पहन लिया, अब पाने-जैसा कुछ रहा नहीं। किन्तु सत्य यह है, कि यहीं से पाने का प्रयत्न प्रारम्भ होता है।

पूज्य गुरुदेव ने मुनि-जीवन स्वीकृत करते समय चतुर्विध सङ्घ के समक्ष अपनी भीष्म प्रतिज्ञा दुहराते हुए कहा था—आज से मैं दृढ सङ्कल्पों के साथ मुनि-जीवन के कठोर साधना-पथ पर अवतीर्ण हुआ हूं और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जीवन की अन्तिम घड़ियों तक मै आत्मसाक्षी से गृहीत वीतराग-पथ पर प्रमाणिकता के साथ चलता रहूंगा। एक दिन जीवन की सांझ आ जायेगी, पर महान् साधना-क्रम निर्झर-गति से सतत प्रवाहित रहेगा।

शिष्यत्व :

जैनागमों में सुयोग्य शिष्य के लक्षणों का निर्देश करते हुए कहा गया है—"गुरु का प्रिय शिष्य वह है, जो विनयी, आराधक, जिज्ञासु और गुरु के संङ्केत-सूत्रों का चिन्तन कर अपने जीवन को उनकी व्याख्या बना लेता है।"

पूज्य गुरुदेव ने विनय को जीवन का मूल मन्त्र, गुरु-आज्ञा को धर्म की आधारशिला, जिज्ञासा को संयम की शिखा और गुरु के विधिनिषेध-परक सङ्केत-सूत्रों में अपना सारा चिन्तन केन्द्रित किया।

और इस तरह जैसे जैसे गुरु की सेवा की, वैसे ही उनमे ज्ञान की प्रज्योति का प्रकाश विस्तार पाने लगा। इस तरह गुरु को सुयोग्य शिष्य मिले और संसार-नदी को पार-करने के लिये जीवन के घाट पर पूज्य गुरुदेव को क्षमता-सम्पन्न गुरु-नौका मिली।

अध्ययनक्रम :

अपने आराध्य गुरुदेव के निर्देशन व पथ-प्रदर्शन में हमारी श्रद्धा के 'प्रदीप' ने जैनागमनों का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया। आगम आत्मोपलब्धि के मार्ग का निर्देशन करते हैं। आत्म-साक्षात्कार-हेतु आत्मा की व्याख्या करने वाले सिद्धसेन दिवाकर जैसे तार्किक चिन्तको और मनीषियों की महान् रचनाओं का परिशीलन उन्होंने जीवन के अन्त तक किया। स्वाध्याय और योगाभ्यास के समन्वय से आत्म-दर्शन के साध्य तक पहुंच कर उन्होंने स्वय को ही योग-दर्शन का एक प्रामाणिक अध्याय बना लिया।

उनका संलक्ष्य :

उनकी जीवन-साधना का सलक्ष्य था—आत्मोपलब्धि के अतिरिक्त ससार के समस्त परभाव से विमुक्त हो जाना।

मानव घर मे, परिजनो के द्वार से, अपने तन मे, राग की केन्द्रविन्दु नारी मे और सौन्दर्याधार काञ्चन मे सम्बन्ध-विच्छेद कर सकता है। इन मे ममत्व मिटा सकता है, परन्तु यश, सम्मान और प्रतिष्ठा मे ममत्व नही तोड़ सकता। इसे जैन परिभाषा मे 'एषणा' कहा जाता है। इसका घनत्व प्राय. मुनि-सूचक परिधान पहनने पर और भी घनीभूत हो सकता है। परन्तु योग-शिखा को निरन्तर प्रज्वलित रखने वाले श्री योगिराज इसके सुस्पष्ट अपवाद थे।

उनका विमल मन, मङ्गल आचरण, साधना, मुनि-समाज और गृहस्थ-वर्ग के प्रति उनके सर्वाङ्गीण विकास की भावना—सभी कुछ सुन्दर था।

स्वाध्याय-योगाभ्यास, प्रवचन करना, लोकोपकारक अन्य कार्य—ये सब उनकी आत्मा की प्रक्रिया थे। पर इन का केन्द्र-बिन्दु था—एषणा-मुक्ति !

उनके योग-तृप्त मन को आत्मविकत्थन जरा भी रुचिकर नहीं था। उनके संलक्ष्य के अमर विश्वास की अभिव्यक्ति कलाकार

कवि के इन शब्दों में अभिव्यक्त की जा सकती है—

केवल यश से कर्म नहीं मापा जाता है,
मेरा मन तो एक माप का ही ज्ञाता है।
कौन कोष संस्कृति का कितना भर पाता है ?
सागर-तल के सदृश कर्म के प्रति आस्था है।

उनके जीवन को गहराई से मापने की कोशिश करने पर हमें यह कसौटी सहज ही उपलब्ध होती है—वे मन के पूर्ण साधु थे। वे जो कहते, करते या करना चाहते थे, उन सब का हार्द है—स्वान्तः सुखाय।

उनके हृदयकमल की किसी पुष्प-पांखुड़ी पर यह कामना प्रवेश नही कर पाई थी, कि लोग मेरा यशोगान करें। मेरी ख्याति इस पार से उठ कर क्षितिज के उस पार पहुँचे। अन्तर्मन की दिव्य ध्वनि को कवि के इन शब्दों से हम पकड़ सकते हैं—

तोड चलो चट्टान, कगारों को भी ढहने दो,
यहीं मत रहने दो !
श्वांसों पर विश्वास चला है, कर्मों पर इतिहास चला है,
छाया पर आभास चला है, संयम पर संन्यास चला है,
सुनो पुकार लक्ष्य की, जग जो कहता कहने दो !
यही मत रहने दो !!

योग :

योग और सन्त !
सन्त और योग !

दोनों पुष्प और सुरभि की तरह परस्पर गुम्फित हैं। न योग से सन्त-जीवन को अलग किया जा सकता है और न सन्त-जीवन से योग को। सत्य कहना चाहें, तो यूं कह सकते हैं, कि सन्त-जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती योग के बिना।

योग-साधना द्वारा योगी जिस आनन्द की अनुभूति करता है,

यद्यपि वह स्वयं ही उसके आनन्द का आस्वाद जानता है, परन्तु सामान्यतः यौगिक प्रक्रियाओं में आत्मानुभूति और आत्मा के स्वरूप का चिन्तन प्रमुख है।

योग का अर्थ है, जोड़ना। साधक चित्त की समस्तवृत्तियों को समेट कर आत्मा में केन्द्रित करता है। इस लिये मन और आत्मा का एकत्व योग है। जैन-साधना में इसी मन और आत्मा के सम्बन्ध को समाधि कहते है। यह समाधि-साधना, समूचे जैन समाज में साधक जीवन के कुशल-क्षेम-पृछा तक घुल गई है। साधक तो योग के माध्यम से सदैव कुशल ही होता है। इसी लिये उपासक उससे योग-साधना की कुशलता पूछना है और कहता है—गुरुदेव ! आप समाधि में कुशल तो है?"

मनोऽनुशासन में योग की परिभाषा का रेखाङ्कन करते हुए कहा है—साधक का समाधिस्थ होना, अर्थात् आत्मा की सहज अवस्था में अवस्थित होना है।

परम आराध्य पूज्य गुरुदेव केवल योगी ही नहीं, वे योगिराज थे। उन्होंने जीवन-शक्ति का ऊर्ध्वीकरण किया हुआ था। मुनि-समाज और गृहस्थ-समाज उन्हे 'योगिराज' के नाम से अभिहित करता था। वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक योग-साधना में ही भीगे-डूबे रहे और गृहीन संयम-जीवन के महान् आदर्शों द्वारा पूरे समाज को साधना का मार्ग-दर्शन करते रहे।

सङ्घ-नायक :

गृही जीवन का मार्ग हो या साधक-जीवन-रथ, नायक या नियन्ता की सङ्घ-सचालन में अनिवार्य आवश्यकता है। लोक-वन्द्य श्री मायाराम जी महाराज के समस्त साधुओं और गृहस्थ-समाज ने सन् १९६४ में हरियाणा के प्रसिद्ध नगर जींद में पूज्य गुरुदेव को अपना धर्म-नायक मान कर निश्चिन्तता का अनुभव किया। परन्तु योग-साधना के पथ पर चट्टान की तरह अग्रसरित होने वाले महान्

गुरुदेव के मन पर इन पदों का क्या महत्त्व था ? मुनिजनों ने एक स्वर से उन्हें अपना सङ्घ-नायक बनाया। उनका कुशल नेतृत्व पाकर मुनिसमाज ने गौरव का अनुभव किया।

ओज और तेज के इस विलक्षण सम्मिश्रण के अधिपति योगिराज को पाकर मुनि-समाज का मन क्यों न मोद से भर जाता ?

वात्सल्यवश गुरु, शिष्य के और माता-पिता पुत्र के असाधुतापूर्ण कार्य को देखकर भी मन को खिन्न नहीं करते। पुत्र या शिष्य को स्नेह और प्यार से समझा कर जीवन-साधना का पथ आलोकित कर देते हैं।

सङ्घ-नायक गुरुदेव के कुशल नेतृत्व को पाकर मुनि-समाज तो हर्षित था ही, गृहस्थ वर्ग भी प्रमुदित था। बड़े और छोटे की भेद-रेखा उनके अन्तम् में न थी। वे एक ही रेखा को मानते थे। सयम-जीवन की साधना विमल मन से हो और विमल मन होगा ब्रह्मचार्य की विधिवत् साधना से। इस साधना के बाद योग-साधना करो, जीवन में ओज भी आयेगा और तेज भी प्रकट होगा। स्वयं को आलोक मिलेगा और दूसरों का पथ भी आलोकित कर पाओगे।

बस, यही उनके नेतृत्व का सन्देश था और इसी नेतृत्व के स्नेह के तारों में वे छोटे बड़े का भेद भुला कर सङ्घस्थ मुनि-समुदाय को बांधते रहे।

जीवनोत्सर्ग :

जीवन है, तो मृत्यु है। मृत्यु है, तो जीवन है।

यह बोध है। इस बोध से शून्य जीवन को हम मृत्यु कहते हैं। इस बोध का होना अमरत्व है। जिसे इसकी बोधि है, वह सत्य का देवता है। यह सत्य ही जीवन की अनन्त शक्ति है। इसे संजीवनी कहें तो भी उपयुक्त है। इसे पाकर मरणधर्मा मनुष्य भी जीवित हो उठता है। जो सत्य का परित्याग कर देता है, वही मरता है। यही मृत्यु की परिभाषा है।

धर्म-धरा भारत के ऋषि-मुनियों ने सत्य-प्राप्ति के लिये ही **'असतो मा सद् गमय, मृत्यो र्माऽमृतं गमय'** के प्रेरणामन्त्र दिये हैं।

देवता के अमृत और योगी के अमृत में अवनि-अम्बर का अन्तर है। देवता का अमृत पात्राधारित है; योगी का अमृत आत्माधारित है।

पूज्य गुरुदेव ने आत्मा के अमृत की ही जीवन भर खोज कर उस की अनुभूति की थी। इसी अनुभूति की परम लयावस्था को लोक-भाषा में हम देहोत्सर्ग कह सकते हैं। सत्य यह है, कि वे अमर-पथ की अनन्त राह पर मरण-धर्मा देह का परित्याग कर चले गये।

योग की साधना ही सार है। शेष सब कुछ तो इन्द्र-धनुष की रेखाओं की तरह बनता, मिटता और नष्ट होता रहता है। संसार में सब कुछ आ रहा है, जा रहा है—दूर भाग रहा है।

महापुरुषों का जीवन नष्ट नहीं होता, शरीर नष्ट होता है। वे सम्पूर्ण जीवन में साधना करते-करते जब देखते हैं, कि यह शरीर आत्म-साधना में बाधक है, तो उसका परित्याग कर देते हैं।

अमीनगर की मिट्टी :

पूज्य गुरुदेव का अन्तिम वर्षावास अमीनगर (मेरठ, उ. प्र) में था। वर्षावासकाल में स्वस्थता और अस्वस्थता के अनेक दैनिक चक्र चले।

साधु-जीवन की सभी आवश्यक क्रियायें, जो देहोत्सर्ग के समय की जानी चाहियें, वे सभी सम्यग्रूप से कर चुके थे।

मुनिजन और गृहस्थ उनके दर्शन कर कुशल पूछने के स्थान पर म्लान हो जाते। उन्हें म्लान देख, गुरुदेव ने एक सन्देश दिया—जीवन को खुली पुस्तक की तरह रखो। छल की कालिमा से मुक्त रहो। मन और आत्मा दोनों में सरलता होगी, तो जीवन कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी मुस्कराता रहेगा।

वे यह कहना चाहते थे, कि मैंने जिस प्रकार अपना जीवन एक खुली पुस्तक की तरह जी कर इस विश्व के प्रवाह पर अङ्कित किया है, तुम भी वैसा ही जीवन जीना सीखो।

कवि के शब्दों में हम पूज्य गुरुदेव के इन भावों को प्रकट करते हुए कह सकते हैं—

हम अपना जीवन अङ्कित कर,
फेंक चुके हैं राजमार्ग पर।
जिसका जी चाहे सो पढ़ ले,
पथ पर आते-जाते !
हम कब अपनी बात छिपाते !

अमींनगर की मिट्टी में संवत् २०२४ आश्विन कृष्ण ५ को उनके भौतिक जीवन का अन्त हुआ।

पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, देहली और आस-पास के श्रद्धालु जन बड़ी संख्या में अमींनगर पहुंचे। जय-घोष करती हुई आपार जनता के साथ शोभा-यात्रा निकली। अन्तिम दृश्य बड़ा दर्शनीय था। शोभा-यात्रा, श्रद्धालु जन-समुद्र के साथ वहां पहुंची, जहाँ मनुष्य अपना निशान मिटा कर हमेशा के लिये इस दुनिया से चल देता है। परन्तु हमारे श्रद्धार्ह गुरुदेव वहाँ आकर अपना निशान शाश्वत अक्षरों में अङ्कित कर गये।

हम श्रद्धावनत हैं, उस महा-पुरुष योगिराज पूज्य गुरुदेव के प्रति ! उनकी यशस्वी उज्जवल साधना के चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाते हुए—

सन्त वही जो इस संसृति में,
होकर विराग से अतिरञ्जित।
आसक्ति से ऊपर उठता,
पङ्कजसम रे ! पङ्कविवर्जित।

पूज्य गुरु महाराज के चार शिष्य हुए। परिचय क्रमशः —

१. विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० :

श्रद्धेय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का जन्म— बाबरा मोहल्ला, रोहतक शहर (हरियाणा) में सं० १६७० श्रावण कृष्णा ३० को हुआ। पिता श्री दौलतराम जी बंसल एवं माता पूज्या श्रीमती पिस्तो देवी जी थीं। पिता दौलतराम जी का स्वप्न इन्हें विद्वान् सुपुत्र बनाना था। परिणामतः इनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था की। युवा होने पर महायोगी परम श्रद्धेय श्री रामजीलाल जी म० का इन्हें अनुग्रह-पूर्ण सान्निध्य प्राप्त हुआ। प्राप्त शिक्षा और परम गुरु योगिराज श्री के अलौकिक, आकर्षक व्यक्तित्व ने इन्हें मुनि-जीवन की प्रेरणा दी।

सं० १६६५ चैत्र शुक्ला १३ (महावीर जयन्ती) के दिन इन्होंने मुनि-दीक्षा का वीरव्रत नालागढ (जि० शिमला) में गुरु-शिरोमणि योगिराज श्री का शिष्यत्व स्वीकृत किया।

दीक्षोपरान्त गुरुदेव श्री ने व्याकरण, न्याय, दर्शन एव आगम का सागोपाग अध्ययन, चिंतन, मनन किया। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अग्रेजी, उर्दू, गुजराती आदि विविधानेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। परम विचारक एवं चिन्तक गुरुदेव ने संस्कृत एव हिन्दी में विद्वत्ता पूर्ण स्फुट रचनाये की हैं। परम चिन्मय ज्योति प्रभु की स्तुतियां और समाज-अभ्युदय-मूलक 'चिन्तन-कण' इनके वेजोड़ व अनूठे सुभाषित रत्न हैं।

प्रकृति के अनन्त वैभव में मानव के अनन्त गुणों का सामीप्य इन के चिन्तन का केन्द्रीय विचार है। प्रकृति का स्वच्छ, सात्त्विक, पवित्र वातावरण इनके जीवन की एक-मात्र स्पृहा भी है। तो गुरुदेव के प्रकृति-चिन्तन का यह सत्य वस्तुतः मानव के व्यक्तिगत, सामाजिक व धार्मिक जीवन जीने के लिये, मोहग्रस्त मनुष्य के जीवन-पथ की प्रदीप्त ज्योति-शिखा है।

व्यक्तिरूप से आप सौम्य हैं, समष्टि के लिए दिव्य। इनकी साधना सत्य के लिये, चिन्तन व्यक्ति-व्यक्ति के लिये, जागरण, चेतना, परिस्फुरणा और आत्म-शक्ति की प्राप्ति का मूल उद्गम है।

पूज्य गुरुदेव के चरणों में मैंने (लेखक) दीक्षाभिव्रत स्वीकार किया है।

(i) **लेखक** : स्वयं के लिये कुछ कहना वस्तुतः कठिन होता है। पाठक इससे सुपरिचित ही होंगे ? फिर भी परम्परा निर्वाह-हेतु—

इस देह का जन्म १२-८-५१ को ग्राम रिढाना (हरियाणा) में हुआ। पितृत्व—श्री रामस्वरूप जी वर्मा, मातृत्व—श्रीमती महादेवी ने प्रदान किया। दिनांक १६-२-६४ को जीन्द नगर (हरियाणा) में पूज्य गुरुवर्य योगिराज श्री रामजीलाल जी म० की कृपा से गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का शिष्यत्व स्वीकृत किया।

२. **श्री रणसिंह जी म०** : पूज्य गुरुदेव के ये दूसरे शिष्य हैं। इनका जन्म बड़ौदा ग्राम में मार्गशीर्ष शुक्ल २, सं० १९६४ को हुआ। पिता—चौ० हेतराम जी व माता श्रीमती रेशमांदेवी जी थीं। इन्होंने फरीदकोट (पंजाब) में वैशाख शुक्ल ७ स० १९९६ में दीक्षा-अभिव्रत स्वीकार किया।

इनकी तत्वचर्चा, आगम एवं तप में विशेष अभिरुचि है। इन के दो शिष्य हैं—

(i) **श्री विजय मुनि जी म०** : इनका जन्म स० २००३ भाद्रपद कृष्ण ५ को बडौदा ग्राम में हुआ। पिता—चौ० जागरसिंह जी तथा माता—श्रीमती छोटो देवी जी हैं। इनकी दीक्षा मूनक (पजाब) में स० २०२४ में सम्पन्न हुई। ये मेधावी, प्रवचनकार मुनि हैं।

(ii) **श्री सुमति मुनि जी म०** : इनके पिता—चौ० भलेराम जी, माता—श्रीमती फूलवती जी तथा जन्म स्थान—कसाण (जि० कुरु-क्षेत्र) है। इन्होंने गन्नौर मण्डी में दिनांक ५-१२-७३ को दीक्षा ग्रहण की। ये सेवाभावी, स्वाध्याय-प्रिय मुनि हैं।

३. **श्री शिवचन्द जी म०** : ये पूज्य गुरुमहाराज के तीसरे शिष्य हैं। इनका जन्म सं० १९७१ चैत्र कृष्णा ६ को बड़ौदा ग्राम में, पिता चौ० शादीराम जी व माता श्रीमती साहिब कुंवर के घर हुआ था।

इन्होंने सं० १९९६, वैशाख शुक्ल ७ को फरीदकोट (पंजाब) में

दीक्षा-अभिव्रत ग्रहण किया। ये सरल-स्वभावी, मुनिराज है। त्रिविध तप: क्रम भी इन्होंने सम्पन्न किये हैं।

४. पूज्य गुरु महाराज के अन्तिम व चतुर्थ शिष्य—**श्री शिखरचन्द जी म० थे।**

इनका जन्म नगूरां ग्राम (हरियाणा) में, पंडित श्री माल्हाराम जी के घर हुआ था। पूर्ण युवावस्था में माछीवाडा (पंजाब) में सं० १९९६ पौष मास में संयम व्रत स्वीकार किया।

ये विनयशील, वैरागी चित्त वाले मुनि थे। इनका अल्पायु में ही सं० २००३ श्रावण मास, अमृतसर नगर में स्वर्गवास हो गया।

तीन : तपस्वी श्री नेकचन्द जी म० : श्री सुखीराम जी म० के ये अन्तिम शिष्य थे। इनका जन्म राठधना (जि० सोनीपत) में स० १९५६ को प्रजापत-वश में हुआ था।

सं० १९७६ में काहनी ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। ये तपस्वी मुनिराज थे। बड़ों के प्रति विनयशील, स्वाध्याय-प्रिय, मधुरभाषी, अल्प वस्त्र-पात्र रखना, ये इनके विशिष्ट गुण थे।

मूनक (जि० संगरूर) में २७-५-६९ को संथारा-समाधि-पूर्वक स्वर्गवासी हुए।

11

तपः केसरी

श्री केसरीसिंह जी म०

महामुनि श्री मायाराम जी म० को पढ़ते और सुनते हुए तपस्वी श्री केसरीसिंह जी म० का नाम, पाठकों के लिए अपरिचित नहीं रह गया है। ये महामुनि के अन्तेवासी थे। परामर्श-दाता थे। मित्र थे। हर क़दम पर सहयोगी थे। इससे बड़ी बात उनमें थी। वह यह कि वे स्वयं उत्कृष्ट तपस्वी थे।

वे विलक्षण बुद्धि के धनी थे। तपस्वी थे। तेजस्वी थे। पर आवेश, आक्रोश से सर्वथा मुक्त थे। तपस्वी श्री के जीवन में तो आश्चर्य ही था कि दीर्घ तपस्वी होने पर भी क्रोध उनके जीवन में कहीं लेशमात्र भी दिखाई नहीं देता था। आज भी साधु-समाज के सामने उनका जीवन एक खुली पुस्तक की तरह सुपाठ्य है। ढूंढे से भी उनमें क्रोध व अहंकार की रेखा तक नहीं मिलेगी।

महामना की जीवन-साधना और उनके व्यक्तित्व ने उन्हें अमृतपुत्र या एक आदर्श तप.केसरी बना दिया था। संक्षेप में यूं कहना चाहिए, तपस्वी केसरीसिंह जी म० महाप्राण मुनि मायाराम जी के हर घटनाप्रसंगों से जुड़े और सटे हुए हैं। शायद ही कोई ऐसा घटित हुआ हो, जहां तपस्वी जी अपने विनोदी स्वभाव से झांकते हुए न दीख पड़ते हों।

इनके जन्म, क्षेत्र, माता-पिता आदि का बाह्य स्वरूप-परिचय

जान लेने के बाद घटना प्रसंगों का उल्लेख करना भी अनिवार्य लग रहा है। साथ-ही-साथ यह जानना और देखना भी कितना श्रुति-सुखद है, कि श्री मायाराम जी म० के वे जन्मकर्म के साथी रहे हैं।

परिचय रेखा :

बड़ौदा इनकी जन्म स्थली है। चहलगोत्र था। माता श्रीमती हरदेवी जी। पिता चौ० श्री भोलाराम जी। जन्म संवत् १९१७, श्रावण शुक्ल सप्तमी। नाम रखा गया—केसरीसिंह। लाड़प्यार में बचपन बीता। किशोर हुए तो मायाराम जी से विचार की मैत्री हुई[1]। यह मैत्री चूंकि विचार-पूर्वक थी अतः दीक्षोपरान्त यह स्वरूप आचार में परिवर्तित हो गया।

श्री मायाराम जी म० ने दीक्षा ली। तीन वर्ष बीते थे कि इन्होंने भी संवत् १९३७, मार्गशीर्ष दसवीं को अमृतसर नगर में आचार्य श्री अमर सिंह जी म० के सान्निध्य और श्री मायाराम जी म० की साक्षी से दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री की प्रेरणा से व श्री मायाराम जी म० की अनुमति से श्री खूबचन्द जी म० का शिष्यत्व स्वीकृत किया।[2]

श्री खूबचन्द जी म० जब तक जीवित रहे तब तक तन-मन से उनकी सेवा-भक्ति की। फिर श्री मायाराम जी म० के जीवन से ये छाया की तरह जुड गए। सेवाव्रत उन्होंने श्री मायाराम जी म० के लिए ग्रहण किया अपने लिए तपस्या का पथ स्वीकृत किया।

तपस्या का कुन्दन :

तप तो बहुत मुनि करते हैं और करते ही रहेंगे। क्योंकि यह आत्मशुद्धि का परम पथ है, किन्तु श्री केसरीसिंह जी म० की तपस्या अनुपम है। जरा आंकड़ों पर ध्यान दीजिए—

गर्म जल के आधार पर ४१ दिन, ५३ दिन, ६१ दिन तक निरन्तर तप करते रहे। इसमें भी उल्लेखनीय तप व्रत उनका यह

(१) देखें पृष्ठ—४३
(२) देखिये पृष्ठ—५१

था, कि उन्होंने २१ वर्ष तक एकान्तर (एक दिन उपवास, एक दिन भोजन) तप करते रहे। कहना चाहिए आधे से अधिक जीवन उन्होंने तप करते बिता दिया।

तप करके पड़े रहने वाले तपस्वी तो आज भी विद्यमान हैं। किंतु तपः केसरी की विशेषता यह थी कि एकांतर तप का क्रम हो, या ६१ दिन तप करने के बाद भोजन लेना हो, उपाश्रय में बैठकर आहार-ग्रहण करने में उनकी कभी आस्था नहीं रही। भोजन लेने के दिन ये खुद घर-घर जाकर निर्दोष भोजन की गवेषणा करते थे। जैनो के घर से भोजन ले लेने में उन्हें कभी अच्छा नहीं लगा। अज्ञात, अजैन लोगो के घर से अभिग्रह-विधि से आहार प्राप्त करना ही उन्हें भाता था।

जब भी उनका मन होता ५, ८, ११, २१ दिन की तपस्या कर लिया करते। कहना चाहिए तपस्या को आँच मान, कर्म को ईंधन मानकर जलाते रहते और आत्मा के स्वर्ण को कुंदन बनाते रहते।

एक ओर उनका आध्यात्मिक चिंतन इतना शुद्ध आत्मिक था परन्तु व्यवहार-जगत् मे ये परम विनोदी थे। बात-बात में हास्य विनोद की पुष्पवृष्टि से वातावरण को सुरभित किए रहते थे।

एक ओर वे वचन-सिद्ध संत थे, तो दूसरी ओर करुणा की प्रतिमा भी। इस तरह वे नाना-विध गुणागार थे। उनके पूरे जीवन को ध्यान में रखकर एक पूरी पुस्तक का स्वतन्त्र-लेखन करना जरुरी है। यहाँ संक्षिप्त घटना प्रसगों का उल्लेख कर रहा हूँ।

सर्पराज और तपस्विराज :

मुनि ईर्ष्या-समिति से चले, भूमण्डल में विचरते प्राणी, संत-चरण से पीड़ित न हों—इस विचार से मुनि, पुरुष-प्रमाण छाया, जितनी भूमि पर दृष्टि रखकर चलते है। तो ऐसे ही चलते-विचरते हुए श्री केसरीसिंह जी म० काहनी ग्राम (रोहतक) पहुंचे थे। वहाँ ठहरे। शौचार्थ एक दिन बाहर जा रहे थे। रास्ते में मुसलमानों का एक जमघट लाठी लिए खड़ा था। पकड़ो, मारो का मुखवाद कर रहा था। तपस्वी जी ने देखा—एक काला सांप निकल आया है।

उसी को मारने के लिए यह भीड़ लाठी ले कर उसको घेरे हुए हैं। तभी तपस्वी जी म० ने करुणा-प्रेरित मन से, पर अनुशासन के स्वर में भीड़ को ललकारा। बोले—

ठहरो ! क्या कर रहे हो ! ! क्यों मारते हो इसे ! !

मारें नहीं तो करें ? ये काट खायेगा किसी को ! मुसलमान बोले।

कहीं सर्प काटता है ? तुम इसे तंग जो कर रहे हो, इसलिये काटता है। इसे दुःखी मत करो, यह कुछ नहीं कहता। तपस्वी जी के ऊँचे स्वर में ये शब्द थे। सुनकर मुसलमानों ने कहा—"यदि यह कुछ नहीं कहता, तो इसे अपने साथ ले जाओ न ?"

अच्छा, दूर हटो ! यह कह कर तपस्वी जी आगे बढ़े।

सचमुच भयभ्रान्त सर्प फन उठाए खड़ा था। तपस्वी जी ने कहा—"मित्र ! तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। आओ मैं तुम्हे ले चलता हूँ।" उन्होंने हाथ बढ़ाकर झोली फैला दी। सर्प झोली में चुप सिकुड़कर बैठ गया। तपस्वी जी ने झोली उठाई और चल पड़े। खड़े हुए लोगों से तपस्वी जी ने कहा—"भारत की संस्कृति सत-संस्कृति है। सर्प उसकी प्राणशक्ति है। तुम लोग व्यर्थ ही इससे डरते हो। इसे कुचल कर या मार कर तुम्हें कभी सुख नहीं मिल सकता। इसको कुचलने का अर्थ होगा, साधु के प्राणों का कुचलना।" वे उसे झोली में लेकर जगल की ओर चल दिये। सभी मुसलमान बन्धुओं की लाठियाँ कंधों से नीचे उतर आईं। वे सोचते रह गए, कमाल का फ़क़ीर (साधु) है। सर्प ने इसे तो कुछ भी नहीं कहा। कहना कैसे ? सर्प साधु की उर्ध्वरेता-साधना का पवित्र प्रतीक[1] है।

तपस्वी जी ने जंगल में जाकर सर्प को मुक्त कर दिया।

कच्चा आटा :

तपस्विराज सरल इतने थे—कि एक बार भिक्षार्थ एक घर में

1. देखें—कुंडलिनी का प्रतीक सर्प, पृष्ठ···79

गए। उस समय घर में केवल एक वृद्धा थी। सब्ज़ी अभी पकी नहीं थी। आटा परांत में रखा था। आटा भी मांडना बाक़ी था। तपस्वी जी खाली लौटने लगे। संत को घर से खाली हाथ लौटता देख, बुढ़िया की आँखें भर आईं। उन्होंने उसकी बूढ़ी आँखों में आँसू देखे। और मोती-से बड़े-बड़े आंसुओं में उसके मन का चित्र देखा, तो उनका भी करुणा से मन भर आया। बोले—"तुम साधु को खाली लौटता देख आँखें भर लाई हो? तुम्हारे मन की पीड़ा मैं मिटा देता हूँ। सब्ज़ी अभी बनी नहीं है। रोटी के लिए आटा गूंदा नहीं गया है। तो मुझे कच्चा आटा ही दे दो।

वृद्धा ने सचमुच उन्हें सूखा आटा दे दिया। स्वाद-विजेता तपस्वी जी लौट चले। मुनि-जन जब भोजनस्थल पर आए और उन्होंने सूखे आटे का पात्र श्री मायाराम जी म० के सम्मुख रखा तो अन्य साधुओं के आश्चर्य का पार न रहा। श्री मायाराम जी म० ने पूछा, तो तपस्वी जी ने वृद्धा की मनःस्थिति समझाई। महाराज श्री, तपस्वी जी की बात सुन कर, उन के सोचने के ढंग को देख, बड़े प्रमुदित हुए। सब साधुओं से कहा—"सभी साधु थोड़ा-थोड़ा आटा ले लो। तपस्वी जी का प्रसाद है।" सबने श्री मायाराम जी म० के आदेश को उमंगित मन से स्वीकार किया।

कैसा लगा होगा, तपस्वी जी का प्रसाद अपक्व कच्चा आटा ?

वचन के धनी :

रस-सिद्ध वक्ता और वचनसिद्ध तपस्वी ! दोनों में से किसी को भी पता नहीं होता, कि जनता उनका आदर क्यों करती है। क्यों सुनना पसन्द करती है।

तपस्विसम्राट् वचन सिद्ध मुनि थे। वे स्वयं नहीं जानते थे, कि उनके मुख से कही गई वाचा वैसी-की-वैसी चित्र की तरह अंकित होकर साकार हो जाती है। एक बार वे भिक्षाटन के लिए गए। एक घर की दहलीज़ में सद्यो-विवाहिता एक लड़की सीने, पिरोने का काम कर रही थी। उसमें वह पूरी तरह डूबी हुई थी। इतने में तपस्वि-सम्राट् उस घर पहुंचे।

उन का द्वार से प्रवेश करना था, कि अन्धेरा होने से

लडकी का मोती पिरोना रुक गया। वह बोली—"अंधा तो नही है, घर में घुसा चला आ रहा है ?" उन्होंने देखा—लड़की की भोजन देने में आस्था नहीं है। लौट चले। इधर उन्होने पीठ फेरी कि लडकी चीख पडी—"हाय मां ! यह क्या हुआ ? मैं अभी तो अच्छी भली मोती पिरो रही थी। अब दिखाई ही नही देता !"

लडकी के माता-पिता चिंता में पड़ गए। आखिर यह हुआ क्या ? लडकी से बार-बार पूछ-परछ की गई। पता लगा, भिक्षार्थ आए महातपस्वी को लडकी ने "अंधा तो नही है। घर में घुसा चला आ रहा है, कहा था।

माता-पिता तपस्वी जी के पास पहुँचे। क्षमा माँगी। घर चलने की प्रार्थना की। तपस्वी श्री तभी साथ-साथ चल दिये। घर पर देखा, लड़की रो रही थी। उन्होंने स्नेह-सिक्त वाणी में कहा—भोली ! क्यों रोती है ? देख ऊपर को ! उन्होने मंगल-पाठ सुनाया, कि लडकी तभी ठीक हो गयी। सब अग-जग उसे दीखने लगा।

तो ऐसे थे तपस्वी श्री केसरीसिंह जी महाराज। तप से आत्मा को सुवासित करने वाले तपस्वि-सम्राट् ने पंजाब-प्रांतस्थ सामाना शहर में, संवत् १९९०, श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन समाधि-पूर्वक स्वर्ग-गमन किया।

शिष्य :

श्री रामनाथ जी म० : ये श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० के अनुज थे। इनकी महाराज श्री में अनन्य आस्था थी। वे इनके सान्निध्य में आए। श्री मायाराम जी म० का तपस्वी जी से मन से स्नेह था। अत: अपने अनुज को अपना शिष्य न बनाकर तपस्वी जी का ही शिष्य बनाने की उद्घोषणा की।

इनका जन्म संवत् १९१७, श्रावण कृष्ण पचमी—ग्राम बड़ौदा में हुआ था। इनकी दीक्षा संवत् १९५४, श्रावण कृष्णा १२ को देहली में हुई। ये प्रकृति से शान्त, मृदुभाषी एवं स्वाध्याय और चिंतन-मनन में निमग्न रहते थे। जैन संघ, रोहतक की विनतिपर आप श्री कई वर्ष तक स्थिरवासी रहे। अपनी स्वच्छ साधुता की सुगन्ध से रोहतक की पुण्य-भूमि को सुवासित करते रहे। इन की निर्मल साधुता से यहाँ की जनता अतिप्रभावित थी।

रोहतक, बाबरा मोहल्ला के जैन स्थानक में संवत् १९९५, आश्विन कृष्णा दशमी को इन्होंने स्वर्गारोहण किया।

इनके एक-मात्र शिष्य श्री जसराम जी म० थे।

श्री जसराम जी म० : मुनि श्री मायाराम जी म० प्रत्येक होने वाले सत्य को पूरी तरह जान-परख लेते, तब निर्णय देते थे। प्रसंग आया श्री जसराम जो की दीक्षा का। यद्यपि जसराम जी के मन में वैराग्योदय भी श्री मायाराम जी म० के प्रवचनों से हुआ था; किन्तु शिष्यत्व स्वीकृत करने लगे तो मायाराम जी म० ने श्री रामनाथ जी म० का इन्हें शिष्य बनाया।

इन्हें कसूहन ग्राम में वैराग्य जन्मा था। इन्होंने संवत् १९५९ आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन में करनाल जिलान्तर्गत कैथल शहर में मुनि-जीवन की दीक्षा ली।

इनका जन्म ग्राम घोघड़ियाँ (निकट बड़ौदा ग्राम, जि० जोन्द) में हुआ था। इनके पिता का नाम—चौधरी हरिचन्द था।

ये प्रकृति के सरल, दयालु, सेवाभावी मुनिराज थे। इनका स्वर्गवास ग्रामपुर खास में, संवत् १९९७ में हुआ था।

आगे इनकी शिष्य-परम्परा नहीं हैं।

12

संयम के अक्षय-निधि

श्री अखेराम जी म०

हजारों वर्षों से हम सुनते और पढते आए हैं, कीलित होने की कथाएं। हमने सुना—हाथ कीलित कर दिए गए, पाओं कीलित कर दिये गये और मन कीलित कर दिया गया।

—हाथ-पाओं कीलित होते है तब बेचारा मनुष्य वही बंधा रहता है, कही आ जा नही सकता, किन्तु विचारो से स्वतन्त्र रहता है।

—मन कीलित होता है, तब मनुष्य शारीरिक दृष्टि से तो स्वतन्त्र रहता है, पर उसका कोई विचार स्वतत्र नही रह पाता ! वह बंध जाता है।

इसे आध्यात्मिक परिवेश में समझे—मोह के मन्त्र से हर व्यक्ति कीलित है। कीलित हुआ व्यक्ति, नारी में, पुत्र में, परिवार में, घर में, धन में, प्रांत में, प्रदेश और क्षेत्र में—इस तरह व्यक्ति, व्यक्ति में और स्थानों में तथा जड़ वस्तु के साथ बंधा पड़ा-पड़ा कराहता रहता है।

मोह से कीलित व्यक्ति का उत्कीलन कर देना तथा उसे अध्यात्म की आभा मण्डित कर देना, यह हर किसी के लिये शक्य नही है। प्रस्तुत में आप ऐसा ही पढ़ेंगे—

\+ \+ \+

चारित्र-चूडामणि श्री मायाराम जी म० की भेंट—जब वे केवल मायाराम थे—अपने बचपन क साथी अखेराम से हुई, तो उन्होंने कहा—"मैं तुम सब के साथ हूँ। मेरी मैत्री सब के लिए है—सब के साथ है। मैं तुम सबका हूँ। पर तुम सब मेरे हो जाओ—यही मेरी दृष्टि में अमर मैत्री है। बार-बार स्वार्थ की चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाने वाली मैत्री को मैं मैत्री नहीं मानता। मुझ से मैत्री करने का अर्थ है, मेरे संग, मेरे साथ सिल जाना[1]।"

अखेराम ने तभी तपाक से कहा—"मायाराम ! तुमने साथियों के मस्तिष्क में विचारों का दीप जोडा है और उस में चिंतन का तेल भरा है, साथियों का वह प्रकाश मेरी आंखों में समा चुका है।"

प्रकाश में सुगंध नहीं होती रूप होता है, किन्तु जवाहरलाल, केसरीसिंह, रामनाथ आदि साथियों के विचार-दीप में प्रकाश है। जोवन में गति है. संयमीय स्थिरता है और साथ में सुगंध भी है। मैं भी तुम्हारे हाथों मस्तिष्क के विराने में प्रकाश का दीया जुड़वाना चाहता हूं। विश्वास करो, मैं तुम्हारे संग सिल जाऊंगा। साथ हो जाऊंगा। साथ निभाऊंगा। दीपक जोड़ दो मस्तिष्क में। प्रकाश की एक किरण पहुंच जाने दो। मिट जाने वाली पीछे न छूट जाने वाली, मेरी मैत्री तुम से होगी, अमर होगी, अजय होगी।"

मायाराम जी जिस के मस्तिष्क में विचारमत्र का बीज बोते, वह बिरवा बने बिना न रहता। उनके बीज बखेरने का ढंग अपना अलग था।

उन्होंने अखेराम से कहा—"अखेराम ! तुम दूसरे साथियों की तरह साथ न दे पाओगे, वे अथक राही हैं। तुम थके और अशक्त साथी साबित हो जाओगे। अच्छा है, तुम अपना घर संसार पालो, घर संसार बसा लो। तुम गांव में एक ऐसे भी मेरे पीछे साथी रहना-जिससे कि पीछे तुम स्वयं कह सको, 'मायाराम और उसके साथी जा सकते थे। वे गए, हम विश्राम के बाद एक-एक क़दम रख कर धीरे-धीरे पीछे से मंज़िल पार करने वाले हैं।"

---

1. देखें— पृष्ठ 43

"दूसरी बात यह भी है, कि तुम मुनित्व की राह पर नहीं चल पाओगे। बुरा तो लग रहा होगा ? पर बात तो ऐसी है, कि तुम्हें मैं बार-बार यही कह रहा हूँ—तुम्हारे लिये मुनित्व की पारा-वाररहित राह पर चलना कठिन है। तुम विवाहित हो चुके हो। तुम्हारे माता-पिता, स्वजन-परिजनों से मिलकर तुम्हें कीलित कर दिया है। तुम्हारे हाथ की हथेली विवाह की कील से कीलित कर दी गई है। इसलिए मैं कहता हूँ, तुम नही चल पाओगे। तुम मेरे उन साथियों मे रहो कि कालान्तर मे तुम स्वयं ही यह कह सको—मायाराम और उनके साथियों का रास्ता तो आदर्श था, पर विवाह की कील में बिंधा मैं उन के साथ न चल पाया।"

अखेराम ने मायाराम जी की बात सुनी। उसी क्षण जैसे उन्होंने विवाह की कील की दुखन की परवाह किए बगैर पूरे वेग से उसे एक ही झटके में उखाड फेंका। उन्होंने कहा—"विवाह, मैत्री में और संयम में बाधक कैसे हो सकता है ? मैं जब अजान-अबोध आठ वर्ष का था, तब मेरे हाथ में एक लकडी का हाथ थमा कर कहा था, तुम्हारा विवाह हो गया। तब मैंने विवाह शब्द को 'सुना' था आज विवाह को 'समझा' है। विवाह सयम व मैत्री का बधन है। जब मैंने समझ लिया कि यह बधन है, तो वह बन्धन कैसे बन जाएगा ? न समझने की स्थिति में ही तो बंधन, बधन है। बधन जब समझ में आ गया—तब वह बंधन कैसे बना रहेगा ?

मायाराम जी जिस ढग मे अखेराम में संयम का दीपक जोड़ना चाहते थे, वह जुड चुका था।

\+ \+ \+

काल-पुरुष, समय के ग्रास-पर-ग्रास निगलता जा रहा था। मायाराम समय के ग्रासों को देख रहे थे। जैसे-जैसे काल-पुरुष दोनों हाथों से, समय को फांकता जाता था, वैसे-वैसे मायाराम निरतर आगे-से-आगे तीव्र वेग से बढ़ रहे थे। अब चरित-नेता मात्र माया-राम नहीं रह गए थे, वे मुनि मायाराम हो चुके थे।

अखेराम के मस्तिष्क में जलाया दीप विपदाओं की भीड़ में,

सकट की लहरों में बाधाओं के झझावातों को झेलकर अक्षय सघर्ष-कथा को रच रहा था। अखेराम मुनि-जीवन के इतिहास का कैसे अमर नायक बन गये ?—यही सब हमें जानना, समझना है।

चलें आगे।

अखेराम का सघर्ष अक्षय है। चरित-नेता के विचारों के संरक्षण में अकेले इस जीवट के व्यक्ति ने जो सहा, जो झेला, लगता है उसकी मुनि-जीवन से तुलना करने पर, मुनि-जीवन में जो झेला जाता है, सहा जाता है, उसकी पात्रता बनाए रखने में अखेराम का व्यक्तित्व अजेय, अक्षय और अमर बन गया।

चरित-नायक श्री मायाराम जी म० में समाज आस्थावान् हो चुका था। उन्हे समस्त मुनि-समाज महामुनि कहने लगा था। तभी एक दिन अखेराम आए, उन के पास। कहा—

"मैं आ चुका हूँ। मै आप के संग सिल जाने को, कभी न टूट सके वह सबंध जोड़ने को, आप के सयम की चादर के धागे-धागे से बध जाने को, कण-कण में समा जाने को—बड़ौदा से बहुत दूर आ चुका हूँ। हृदय की हर धड़कन आपके साथ धड़केगी। अब दोबारा मैं बडौदा कभी न जाऊंगा। नही जाऊगा।

चरित-नायक स्थितप्रज्ञ हो चुके थे। उन्होंने अखेराम के मन को पढ़ा। आंखों मे झांका। स्थिति को न जाने किस कोण से देखा। बोले—

"अखेराम ! तुम्हारी मैत्री सचमुच सुगंध-भरी है। तुम्हारा निश्चय पारगामी है। मुझे यह सब अच्छा लगा। पर सत्य के दर्शन, अन्तश्चक्षुओं मे होगे। बस जान-समझ लो। तुम्हारा मन सयम से सिल जाएगा।

"तुम उत्सुक होकर आए हो। समर्पित होना चाहते हो, किन्तु निमिष-भर ठहरो और समझ लो। तुम्हारे सुगध भरे संकल्प की सतह के नीचे मोह की गध है, बस ! मात्र उसे निकाल फैको।"

"सुनो, जो तुम यह कह रहे हो, कि मुझे अपना शिष्य बना

लो। मैं तुम्हारे आचार की चादर के धागे-धागे से बंध जाना चाहता हूं। इसी भाव को तिरोहित कर दो।"

"मायाराम से तुम्हें मोह हो गया है—यह ठीक नहीं है। इसलिए इस समय चले जाओ। तुम्हारा मुनित्व मुझ से दूर रहकर ही मोह की गंध से मुक्त हो पाएगा।"

अखेराम को चरित-नेता की कठोर बातें सुन कर ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ। महामुनि कह रहे थे, और अखेराम हर शब्द को हृदय की अवनि में समाते चले गए।

अखेराम, उस महापुरुष के प्रति अथाह अनंत श्रद्धा लिए तुरंत चल पड़े—अमोह अवस्था की खोज में किसी भी मुनि की तलाश में। श्रुत-परंपरा के इतिहास-कार (पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म०) कहते हैं—उस महापुरुष की आचार-संहिता में जी रहे 'अज्ञात' मुनि के पास नाभा (पंजाब) वे पहुंच गए। कुछ दिन बीते थे, कि मुनित्व की चादर ओढ़ने से पहले ही उनके संघर्ष की कथा-कहानी शुरू हो गई।

\+ \+ \+

बडौदा और उनकी ससुराल में संदेश पहुंचा—'अखेराम दीक्षा ले रहा है।'

अखेराम जी का एक साला थानेदार था, और एक मामा था मिलिटरी ऑफ़िसर। वे दोनों नाभा पहुँचे। अखेराम की बांह थाम कर रहा—"अखेराम! हमारे आगे-आगे और अभी बड़ौदा की राह हो ले।" अखेराम ध्यानस्थ वीतराग-प्रतिमा की तरह नाभा में स्थित हो गए। प्रतिमा बोले, तो अखेराम बोले। मामा और साला थक हार गए। उनका बस अखेराम पर चलता नज़र न आया। वे नाभा-नरेश हीरासिंह के पास गए। नाभा नरेश पर सेना में ऑफ़िसर होने के नाते मामा को पूरा अभिमान था और मै थानेदारी करता हूँ—यह साले को अभिमान था।

उन्होंने नरेश हीरासिंह से कहा—

"महीप! अखेराम मेरा भानजा है।

"महीप ! वह मेरा जीजा है।

राजा—तो ?

"उसे साधुओं ने उल्टी राह लगा दिया है। हमारी इच्छा नहीं है, कि वह जैनत्व में दीक्षित हो जाए। साधु हैं कि उसे गूंगा बहरा बना दिया हैं। वह घर चलने को तैयार ही नही होता। बस यह कह कर पत्थर बन गया, कि 'मैं साधु बनूंगा'।"

नरेश सुनकर सन्न हो गये। बोले—"अभी बुलवाता हूं।" ताक़त के ज़ोर से अखेराम को नाभा की कचहरी में बुलाया गया। राजा ने आदेश के स्वर में कहा—"अखेराम, घर को समझो। मामा को समझो। साले की बात पर कान दो। आने वाली पत्नी के मन को समझो। लौट जाओ अपने माता-पिता के पास। साधुता चौथेपन की चीज हैं। किसी साधु ने तुम्हें बहका दिया है ?"

"साधुता चौथेपन की बात है ? आप को यह किसने भ्रान्त कर दिया ? माता-पिता का मैंने सदा आदर किया है। अब भी करता हूँ। सभी को करना चाहिए। साले और मामा—इनके संबंध से मैंने कभी इंकार नही किया। पत्नी को आज तक मैंने आंखों से नही देखा। न उसने मेरा साधु-मन पढ़ा, न उसके मन से मेरी मुलाक़ात हुई। आप कहते हैं—घर को समझ।

मैंने घर को समझ लिया है। यह पूरा विश्व मेरा घर है। इसमें निवास करने वाले समस्त जीव मेरे बन्धु-बान्धव, माता-पिता और कौटुम्बिक एवं परिजन है। बताओ, अब कही जगह है जाने की ?"

नरेश ने कहा—"अखेराम ! तू कल जन्मा था। आज यह सधुक्कड़ी बोल रहा है। यह सब नहीं चलेगी। सीधे-सीधे घर जा, नही तो जेल के सीख़चों में जकड़वा दूंगा।"

अखेराम ने अजेय-स्वर में कहा—"मैं वैसे तो घर की परिभाषा आप को समझाता। पर विवाद क्यों बढ़ाया जाय ? मैं एक दूसरा ही सवाल रखता हूं। आप ही मुझे समझा दें। जेल में तीन तरह के अपराध करने वाले व्यक्ति जाते हैं। वे तीन अपराध है—धन, स्त्री,

भूमि ! इन्हीं तीन अपराधों के लिये जेल बनी हैं । मैं इन तीनों का परित्याग कर रहा हूँ । मेरी राह इन तीनों से भिन्न है । मुझे आप बतायें—धन, स्त्री, भूमि के त्यागी व्यक्ति को किसी राजा ने इतिहास की किसी तवारीख में जेल भेजा हो ! उक्त कारणों के बिना जेल के सोखचों में ठूंसा हो ? यदि ऐसा पहले कभी हुआ हो, तो मुझे भी आप सहर्ष जेल भेज सकते हैं ।''

अखेराम की अजेय भाषा में सीधी और सपाट सचाई सुनी नरेश ने । वह मन-ही-मन सोचने लगे—अखेराम का मन साधुता की जड़ों तक पहुंच चुका है । अब न इसे घर में बांधा जा सकता है और न ममता के रक्ताभ रंग में रंगा जा सकता है । नाभा-नरेश ने अखेराम के मामा और साले, दोनों से कहा—''तुम नहीं चाहते कि अखेराम साधु बने, पर मैं चाहता हूँ । तुम इसकी साधुता की राह से हट जाओ । इसने मुझे ही नहीं, पूरी शासन-पद्धति को चुनौती की सूली पर टांग दिया है । चुनौती की सूली से मेरे दिमाग़ की धरती तक कहीं भी 'धन-स्त्री-भूमि' से रहित कोई व्यक्ति अपराध की ज़ंजीरों में बंधा हुआ मुझे नहीं दिखाई देता ।''

''अत: तुम बिना मन ही सही, पर इसे इजाज़त दे दो । यह साधुता के लिए जन्मा है । गृहस्थी बसाना इसके मन से कोसों दूर की वीरान धरती है । तुम में से कोई इसे बांध न पाएगा । यह जिस पथ पर चलकर साधना के फूल उगाना चाहता है, वहां तुम्हारे मन-चीते सुखद कल्पनाओं के बीज न उग पाएंगे । वे जलकर राख हो जाएंगे ।''

''हमें यह सब मान्य है । विवाहिता भी इस की बाधा नहीं बन पाएगी । पर धरती पर इसे उतारने[1] वाली मां श्रीमती धन-कुंवर जी की ममता का और असहाय बने पिता चौ० बखतौर सिंह का क्या होगा ? उनकी सेवा और उनके संरक्षण का क्या होगा ?''

नरेश—''उनके लिए इसका भाई है । तुम हो । मैं हूँ, मर यह जग के लिए है । जग इसके लिए है । तथापि यह सत्य है, कि यह

1. जन्म—फाल्गुन शुक्ल १४, सं० १६१६

मात्र तुम्हारा होकर नहीं रह सकता। यह—सारे जगत् को बड़ौदा मान सकता है, पर बड़ौदा जाकर नहीं बस सकता।"

\+ + +

नाभा-नरेश, अखेराम की दीक्षा के मंगल-प्रसंग पर उपस्थित हुए। उन्होंने जैनों से कहा—"अखेराम को बड़ौदा में बाँधे रखने से सचमुच हम लोग अपराधी हो जाते। जिसका जन्म ही आत्म-साधना के लिए हुआ हो, उसको इस खुशी से वंचित रखकर हम लोग बड़ी भूल करते। दीक्षा का खर्च मैं वहन करता हूं। इसके परिवार के संरक्षण का दायित्व मैं लेता हूं।" अखेराम इस तरह नाभा नगर में दीक्षित हुए।

आयु के थोड़े से ही तारों से बंधा था, मुनि अखेराम जी का साधु-जीवन। थोड़े समय में ही वे वह पा गये, जिसे बहुत से लम्बे जीवन में भी नही पाया जा सकता।

जितना उन्हें जीना था, नियति में जो घटना था, वह सब घटा। पर थोड़े से जीवन में वे उस महापुरुष श्री मायाराम जी म० से एक बार फिर उमंगित मन से, पर अमोह-भाव से मिले। जब मुनिमना से वे मिले, और उन्होंने उनके बारे में जो कहा, बस वही अखेराम का अक्षय यश है।

"अखेराम, अखेराम पहले हैं, मुनि बाद में। इनका पूरा जीवन मुनित्व को पा लेने के लिए संघर्ष करते बीता। कहना चाहिए, मुनि-जीवन जीने की प्यास इनमें इतनी पराकाष्ठा की थी कि सयम के सरोवर तक पहुंचते-पहुंचते ही इनमें पूर्णता का कमल खिल उठा था। जब ये मुनि बने तो सभी मुनियों ने इनके अक्षय संघर्ष से सयम की सुगंध पाई।" यही कारण है, कि उनके अजेय, अमिट व्यक्तित्व की रेखाएं आज तक निनादित हो रही हैं।

मुनि अखेराम जी शरीर-सम्पदा से अत्यधिक सुन्दर थे। एक दिन श्री मायाराम जी म० ने उनके शारीरिक सौन्दर्य को ध्यान में रख कर साथी मुनियों से यह कहा था—"मुनि अखेराम सयम की सुरभि है। सौन्दर्य के इस पुष्प को कही बाहर अथवा कभी भिक्षा के लिए अकेले मत भेजना।"

श्री मायाराम जी म० के कहने के बाद, कुछ कहना तो शेष नहीं रहता है। पर मुनि अखेराम के बारे में हम जो कह पा रहे हैं, वह इसलिए, कि मुनि का चरित्र-गीत, जीवन का गीत है। संयम अखंड-पूजा-भाव है। संयमी अपने लिए नहीं जीता। वह समाज के लिए जीता है। राष्ट्र के लिए जागता है। उसका जागरण हो समाज को जगाता है, राष्ट्र को स्फूर्ति देता है।

\+ \+ \+

सखेद आश्चर्य है, जिस अखेराम ने निस्पृह भाव से अपने संयम-पथ-नायक श्री मायाराम जी म० के कथन को स्वीकृत कर 'अनाम मुनि' से दीक्षा ला, स्वल्प समय में ही भूतल से काफ़ूर की तरह लुप्त हा गये। उन मुनि अखेराम को बड़ौदा-वासी किस तरह श्रद्धा से आज भी नमन करते हैं और जो नरेश के शब्दों में जग के लिए जन्मा था, उनके दीक्षागुरु स्वर्गवास-स्थान, निश्चित आयु आदि के आंकड़े भी हम लोग सुरक्षित न रख पाए......।

आज बड़ौदा-स्थित उनके गांव का घर-परिवार और पूरा गांव उनका पुण्य स्मरण कर फूला नहीं समा रहा है। उस मुनि को हमने कितना याद रखा है? सयम-पथ-नेता की दाक्षा-शताब्दी के प्रसग में जब यह उज्ज्वल संयमरत्न हमारी स्मृति में आया, तो बरबस उसकी अक्षय कीर्ति और सयम के प्रति उनकी अपूर्व निष्ठा को देख, हमारा मस्तक श्रद्धानवत हुए बिना नही रहा।

संत-परम्परा :

संत-परम्परा, अर्थात्—सत्य-परम्परा !

संतत्व भाव है, शब्द नहीं। इस सुगंध को न समय मिटा सकता है और न सम्प्रदायें अपने घेरों में आबद्ध रख पाती है। संत के सद्गुणों की बयार कभी रुकी या ठहरी है, आज तक किसी घेरे मे? आपने सुना, कि हवा को किसी ने बाधा हो? संत-परम्परा भी बधन-मुक्त स्वस्थ सुगंध है। विचार-दरिद्रता, कुठा, विद्वेष, अहमन्यता और कलुषता के कीटाणुओं से दूर, परमस्वस्थ मानवता को जन्म देना उसका काम है।

उपर्युक्त संत-परम्परा यद्यपि एक सम्प्रदायगत सत-परम्परा के

मुनियों का आलेख अवश्य है। लेकिन सच तो है ही यह, कि वह सम्प्रदाय में होकर, रह कर भी सम्प्रदायातीत संतत्व का अखंड स्रोत है। इस स्रोत को कहीं ठहराया नहीं जा सकता। स्रोत तो बस स्रोत है। बहना ही उसका जीवन है। वह पृथ्वी पर बहता है तो जन-जन को आत्मसुख से समृद्ध करता है। उसकी समृद्धि व्यक्ति विशेष के लिए नहीं होती। सदा काल सबके लिए समान होती है। यह बात स्रोत की है। अब वायु को लीजिए।

वायु अनदेखा जीवन-तत्व है। संत, परंपरातः वायु मे समाई सुगध है। सुगंध दिखाई तो नहीं देती पर उसकी जीवन-शक्ति सभी को स्वीकार है। संत के मंगल आचरण से वातावरण सुवासित होता है और वह वातावरण व्यक्ति की आत्म-चेतना को जगाने में सहायक होता है।

संतत्व, जो भाव है, उसे 'परंपरा' नाम क्यों दिया गया ? सूर्य-किरणें या विद्युत्-ऊर्जा अखंड होती है ! सत भी अखंड ऊर्जा है। वहां परम्परा जैसा कुछ नही है; किन्तु हमारी समझ इतनी छोटी है, कि उसे परपरा नाम देकर समझ लेना भी हमारे हित में है।

अस्तु ! उपर्युक्त मुनि-परम्परा का इतिहास हमारे सम्मुख है। इसमें श्री मायाराम जी म० की परम्परा के स्वर्गस्थ एव वर्तमान सभी मुनियों का आलेख किया गया है। इतना सब कहने के अनन्तर भी हम कहने को विवश है, कि मुनिराजों के ऊर्जस्वल जीवन का यह संक्षिप्त परिचय है।

इसी सब को चीत कर महामना चारित्र-चूडामणि श्री मायाराम जी म० को सादर सश्रद्ध भावार्घ समर्पित है।



श्रद्धाबिन्दु

मुनि-महिमा

जयति जय मुनिवर मायाराम !
धन्य हुआ तुमको उपजा कर सुभग 'बड़ौदा' ग्राम ॥

'जोतराम' 'शोभा' जी दोनों थे कितने बड़-भागी,
जिनकी सुखद गोद में खेला तुम-सा सन्त विरागी,
सयम, नियम, साधना से की संचित शक्ति-विलक्षण,
परस पूत चरणो को पावन हुए धरा के रज-कण,
तुम-सा पाकर शिष्य हुए गौरवमय गुरु 'हरनाम' ॥१॥
जयति जय मुनिवर मायाराम !

तज संसृति के भोग, योग से तुमने चित्त रमाया,
तप की ज्वाला से जीवन को कुन्दन-सा चमकाया,
रही अलौकिक प्रतिभा, तिस पर निधि विद्या की पाई,
सूक्ति हुई चरितार्थ स्वर्ण में जैसे सुरभि समाई,
कर दिखलाये जग मे तुम ने सभी निराले काम ॥२॥
जयति जय मुनिवर मायाराम !

मधुर मृदुल भाषा में करते थे मधु रस का वर्षण,
बरबस लेता खीच सभी को वाणी का आकर्षण,
आँखों में था दिव्य तेज कर दिखलाता अनहोना,
लोहा भी सम्पर्क तुम्हारा पाकर होता सोना,
बढे ध्येय के पथ पर निर्भय होकर तुम अविराम ॥३॥
जयति जय मुनिवर मायाराम !

गुरु-सेवा रत रहे निरन्तर, सुख न स्वयं हित चाहा,
कठिन परीक्षा में पड़ कर भी, अपना धर्म निबाहा,
पथ-पथ में तुमने विवेक के शत-शत दीप जलाये,
रहे सदा गतिमान, नहीं पल भर को भी रुक पाये,
चलते-चलते सत्य-मार्ग पर, चले गये सुरधाम ।।४।।
जयति जय मुनिवर मायाराम !

महावीर प्रसाद 'मधुप'
भिवानी (हरियाणा)

श्री मा या रा म जी महाराज

श्री सदैव चरणों की दासी । संयमी उपकारी विश्वासी ।।
माता वत् समझीं सब नारी । थे विशुद्ध बाल ब्रह्मचारी ।।
यावत् जीवन समता साधी । पर हित-पर-सुख के आराधी ।।
रागद्वेष से विलग सदा ही । मान प्रतिष्ठा कभी न चाही ।।
महामना निर्लोभ अमानी । पर-पीडा अपनी कर जानी ।।
जीवन परहित सदा बिताया । सत्य ज्ञान का दीप जलाया ।।
मनस्वी, त्यागी, सद्गुण-ग्राही । निज सुविधा सपने ना चाही ।।
हार, शील को नित ही जाना । गुरुजन की रज शीश चढाना ।।
राव-रंक थे एक समाना । माटी-स्वर्ण एक कर जाना ।।
जग से मान कभी ना चाहा । आत्म-भाव-मार्ग अवगाहा ।।

रघुवीरप्रसाद 'सरल', भिवानी ।

मुनिराजों ने कहा था

श्री मायाराम जी महाराज ने अपने महान् सयम की, समस्त साधु-समाज पर अमिट छाप अंकित की।

—श्री अमोलक ऋषि जी म०

"श्री मायाराम जी महाराज का पवित्र संयम समस्त संघ के लिए प्रेरणा का स्रोत है।"

—आचार्य श्री काशीराम जी म०

"मैं श्री मायाराम जी महाराज पर क्या कहूं—वे बेमिसाल संयमी थे।"

—आचार्य श्री आत्माराम जी म०

"इसमें कोई सन्देह नही है कि श्री मायाराम जी महाराज के शुद्ध संयम ने श्रमण-संस्कृति के गौरव को बढाया है।"

शतावधानी श्री रत्नचन्द जी म०

"मैं श्री मायाराम जी महाराज को गणधर मानता हूँ।"

श्री लालचन्द जी म० (आगरे वाले)

"श्री मायाराम जी महाराज सूर्य के समान तेजस्वी व चन्द्रमा के समान शीतल थे।"

—व्या० वा० श्री मदनलाल जी म०

"मैं श्री मायाराम जी महाराज को भगवान् महावीर के युगावतारी महापुरुष मानता हूँ।"

—योगिराज श्री रामजीलाल जी म०

"श्री मायाराम जी महाराज के प्रचण्ड संयम से हमारा मस्तक ऊंचा है।"

—पं० कें०श्री प्रेमचन्द जी म०

श्रमण-संस्कृति के श्रृंगार

जिनेश्वर देव के मार्ग में जाति को महत्त्व न देकर कार्य को महत्व दिया है। इतिहास इस बात का साक्षी है। महायोगी श्री मायाराम जी म० भले ही जन्मजात जैन नहीं थे, फिर भी श्रमण-संस्कृति के वे श्रृंगार बने।

भारत में हरियाणा समृद्धिशाली प्रांत है। जनता, सरल-सुलभ एवं धर्म-निष्ठ है। इस प्रांत में बड़ौदा नामक एक गाँव है। मैं वहाँ जाकर आया हूं। इस गाँव की यह विशेषता है—"कि सभी जाट जैन धर्मानुयायी हैं।" इस गाँव ने एक नही, अपितु १४ जगमगाते रत्नों को विशाल हृदय से समाज को समर्पित किया है—उनमें हमारे सर्व-शिरोमणि श्री मायाराम जी म० सा० है। समय-समय पर हमारे संतों ने मुमुक्षु संसार को जगाया है। हिंसा, अत्याचार एवं दुर्व्यसनों में फंसे हुए आत्माओं को उभारा है। हिन्दी के कवि ने भी कहा है—

काम-क्रोध के बादल चढ़े, बरसन लगे अगार,
इस जुग साधु न हों तो, जल मरता-संसार।

महान् योगि-मुनि श्री मायाराम जी म० बहुत संयम-निष्ठ, शुद्ध चरित्र-पालक और कठोर साधक थे। उनके महान् उपदेशों ने अनेक व्यक्ति 'पतित-पावन' बनाये। उनका जीवन स्फटिक मणि के समान उज्ज्वल था।

उनके जीवन से अनेक मुमुक्षुओं को प्रेरणा मिलेगी, यही मेरी शुभ कामना है।

—आचार्य-सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म०

संयम की गौरव गाथा **

भगवान् महावीर के शासन में आज तक अगणित साधु-मुनि और आचार्य हुए हैं। उन में एक हैं—स्वनामधन्य श्री मायाराम जी महाराज। मुनि श्री के साक्षात् दर्शन का सुयोग तो प्राप्त नही हुआ पर परम्परा से उनकी गुण-गाथा सुनने का हमें भी अवसर मिला और मुनि श्री के उत्तराधिकारी महामहिम योगिराज

श्री रामजीलाल जी महाराज तथा व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज आदि सन्त जनों के समागम से यह सहज मन को विश्वास हुआ कि इन संस्कृति-प्रिय सन्तों के गुरुदेव वास्तव में ज्ञान और क्रिया में रमण करने वाले होंगे ? स्वर्गीय श्री मायाराम जी महाराज की शांति, सरलता, मृदुता और संयम की गौरव गाथा मरुधरा की भूमि पर भी सुनाई दे रही है। स्व० आचार्य श्री विनयचन्द जी महाराज की सेवा में आपने जोधपुर नगर में वर्षावास किया था। कहा जाता है कि आपकी सरलता-सरसता एवं विनय-शीलता और आचार्य श्री की वात्सल्यता को देखकर दर्शक यही ख़याल करते कि ये सब एक ही गुरु के शिष्य है। दोनों परम्पराओं का प्राचीन सम्बन्ध चातुर्मास से परिपुष्ट हुआ, जिसकी मधुर स्मृतियाँ आज भी हमारे मन-मस्तिष्क में जमी हुई हैं। वर्तमान में भी उनके मुनि श्रमण-संस्कृति के संरक्षण में प्रयत्नशील हैं। यह स्व० मुनि श्री के संस्कारों का ही परिणाम है। आज श्री मायाराम जी महाराज शरीर से हमारे सम्मुख नहीं है फिर भी उनकी गुण-गरिमा जन-जन के मन को आल्हादित कर रही है।

—आचार्य श्री हस्तीमल जी म०

**

शतकोटि वन्दन

श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा उपदिष्ट साधुना की साक्षात् सजीव प्रतिमा ! निश्छल, अमल, निर्मल पावन अन्तर्मन ! दंभ की या दिखावे की कहीं कोई दुरभिसन्धि नहीं। जीवन के कण-कण में प्रद्योतित ज्योतिर्मय तप और त्याग। संक्षेप में यह शब्द-चित्र है—चरित्र-चूड़ामणि पूज्यपाद श्री मायाराम जी महाराज का।

परमवीतराग भगवान् महावीर के श्रमण-संघ का वह क्षण कितना महामहिम मंगलमय रहा होगा, जब श्री कृष्ण के अमर गीताज्ञान से अनुगुंजित हरियाणा प्रदेश के इस तरुण ने आर्हती मुनि-दीक्षा ग्रहण की। जैन श्रमण-संघ को इस महान् साधक से जो गरिमा प्राप्त हुई, उससे जैन इतिहास धन्य है।

सर्वश्री मायाराम जी महाराज के तपःपूत साधुत्व का सौरभ

पंजाब, हरियाणा दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक ही परिसीमित न रहा। सुदूर राजस्थान आदि प्रदेशों में भी उनका वह सौरभ फैला, कि हर सहृदय उनके दर्शन एवं उनकी सुधामधुर जीवन-स्पर्शी वाणी श्रवण कर मंत्रमुग्ध होता गया।

यह धर्म-दिवाकर तन की ज्योति से भले ही अस्त हो गया है। किन्तु पवित्र जीवन की अमर-ज्योति से वह आज भी भक्तों के हृदयाकाश में प्रकाशमान है। महान् आत्माओं के जीवन की दिव्यता कुछ ऐसी दिव्यता है, जो उनके दिवंगत होने पर भी धरती के वासियों के अन्तर्मन में प्रेरणा की दिव्य ज्योति जागती रहती है, युग से युगान्तर की ओर।

आज हम स्वर्गीय मुनि श्री के उदात्त जीवन की पावनगाथा सुनकर आनन्द-विभोर होते है। क्या ही अच्छा होता—हम उनके जीवन-काल में जन्म लेते, उनके पुनीत श्रीचरणों में बैठते, उनके पुण्य दर्शन से लाभान्वित होते!

मुनिवर! संयम-पथ पर अग्रसर होते तेरे उन अपराजित पावन चरणों में शत-कोटि वन्दन! शत-कोटि अभिनन्दन!

—उपाध्याय श्री अमर मुनि जी म०

संयम-साधना के धनी

**

स्वर्गीय श्रद्धेय श्री मायाराम जी महाराज अपने तत्कालीन समय में महामना रहे। उन्होंने सामान्य जन-जाति-पाँति के भेद को स्वीकार न करके भगवान् महावीर के सिद्धांतो का प्रचार-प्रसार किया और जीवन की मर्यादाओं को विशेष महत्ता प्रदान की। आपके सान्निध्य में हर वर्ग उपस्थित होता था और वह भी निःसकोचरूप से अपने समाधान को पाकर उल्लसित हृदय से जाता था। जीवन की गाँठों को खोलने की कला आप में अजब-गजब की थी। जो सचोट बात आप अपने मुंह से कह देते, वह सुनने वाले के जीवन की गहराइयों तक उतर जाती थी। उस गहराई के बीच से एक ऐसी ज्योति प्रतिभासित होती थी, जो जीवन को मंगलमय शिखर की ओर उठा देती थी।

वे जिन-शासन के सच्चे पथिक थे। वे ज्ञान-दर्शन-चरित्र की उपासना एवं आराधना में स्वयं आगे बढे और राह में मिलते गए अन्य पथिकों को भी अपने साथ जोडते चले गए। उन्होंने वास्तविकरूप से पथ-प्रदर्शक का काम किया। जो जीवन से हार गए थे, जिन्हें अपनी मंजिल का पता नही था, जिनकी दिशाये भटक गई थीं, उन सभी को सुख के द्वार से अवगत कराया। जिस सत्य को वे भूल बैठे थे, उसको उद्‌घाटित किया।

विश्व-मगल के प्रतीक महान् योगी, मनस्वी, जनवंद्य, महामुनि श्रद्धेय श्री मायाराम जी महाराज ने पंजाब, हरियाणा, देहली, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि के विभिन्न क्षेत्रों में जिन-वाणी का उद्‌घोष किया था। वे आगम-ज्ञान के धनी थे। व्याख्यान-शैली जादुई थी। वे संयम-साधना के साथ-साथ अनुशासन की गरिमा को विशेषरूप से प्रस्तुत करते थे। उनकी प्रेरणा से आज भी श्रमण-संस्कृति एवं संयम—साधना का उज्जवलतम गौरव अमिट-रूप से प्रकाशमान है। आज उन्ही के विचार-चितन की समाज में आवश्यकता है।

ऐसे पूज्य मुनिवर को मेरी ओर से सादर भावांजलि प्रस्तुत है!

—उपाध्याय मालवरत्न ज्योर्विद
पं० रत्न श्री कस्तूरचन्द जी म०

**

स्वर्ण-शृंखला की एक कड़ी

भारतवर्ष सदा से सन्त-जनों की समुत्पत्ति का केन्द्र-स्थल रहा है। समय-समय पर यहां पर अनेक सन्त-जन हुए और उन्होने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर यत्र-तत्र-सर्वत्र विश्वशांति, विश्व प्रेम, समता, क्षमता व समन्वय का संदेश देकर स्वयं को अनन्त में सम्मिलित कर दिया।

परम श्रद्धेय महामहिम पूज्य मुनिराज श्री मायाराम जी महाराज भी विशिष्ट सन्तों कीं स्वर्ण-शृंखला की एक कड़ी थे। उनको हुए लगभग एक शताब्दी ने अपनी पूर्णता प्राप्त कर ली है। परन्तु फिर भी उनकी गुण-गौरव गाथायें आज भी समाज

में सर्वत्र गाई जा रहीं हैं। यह उनके यशस्वी जीवन की महत्ता का परिचायक है।

यद्यपि पूज्य श्री मायाराम जी महाराज का जन्म हरियाणा प्रान्त में हुआ था, परन्तु उनका वर्चस्व सर्वतोमुखी था।

उनके चरित्रमय जीवन के श्रीचरणों में मेरी शतशः श्रद्धांजलि समर्पित है।

—युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म०

**

संयम और तप के प्रतीक

इस धरती का परम सौभाग्य है, कि यह समय-समय पर ऐसे महापुरुषों के चरण-स्पर्श से पावन बनती रहती है जो अपने आदर्श लक्ष्य की ओर अविराम गति से बढ़ते रहे। जिनके गम्भीर सागरोपम जीवन में मान और अपमान, विष और अमृत, हानि और लाभ आदि द्वन्द्व सर्वथा विलीन हो जाते हैं, जो शूलों पर चल कर जन-जन के लिये फूल बखेरते रहते हैं। वे जिधर चलते हैं, उधर ही संयमादर्शों का अमृत बांटने चलते हैं।

आज मे लगभग १२३ वर्ष पूर्व अर्थात् सं० १६११ आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन 'धर्म-क्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध कुरु जांगल (आधुनिक हरियाणा) के एक ग्राम बडौदा में ऐसे ही महापुरुष ने जन्म लिया था जिसके द्वारा संयमादर्श की पीयूष-धारा आज भी अविरल-रूप मे प्रवाहित हो रही है।

यह संयोग की विचित्र बात ही है कि उन्होंने संसार को जैनत्व की दिव्य-ज्योति प्रदान करनी थी अत: उनका व्यक्तित्व "जोतराम" की जीवन ज्योति का प्रकाश लेकर धरती पर आया और उन्होंने जैन-संस्कृति को संयम एव तप से 'शोभावती' बनाना था, अत: शोभावती जैसी श्रद्धेय माता की कुक्षि से जन्म लिया था।

बचपन में ही उनके "तप और तेज के प्रतीक आदर्श संयमी व्यक्तित्व" को मुनि श्री गगाराम जी महाराज और श्री रतिराम जी महाराज की दिव्य ज्योतिष्मती दृष्टि ने पहचान लिया था, क्या अन्धकार में कभी सूर्य भी छिपा रह सकता है ? तो मिट्टी की काया में महापुरुषों का महान् व्यक्तित्व भला कैसे छिप सकता था।

इतिहास न जाने क्यों इस सत्य को बार-बार दोहराता है कि जिस महान् आदर्श व्यक्तित्व की भूमि पर महापुरुषत्व का अक्षय वट उत्पन्न होना होता है उस व्यक्तित्व पर माता-पिता के स्नेह और दुलार की छाया अल्प काल तक ही रहती है। यह ऐतिहासिक तथ्य उनके अमर व्यक्तित्व में भी दृष्टिगोचर होता है। माता-पिता ही नहीं अपने बड़े भाई आदराम जो को भी उन्होंने अपने सामने चिता पर सोते हुए देखा।

उनका मन 'उदास' नहीं उदासीन हो गया, ज्ञान में लीन हो गया, उनका मोह कर्म क्षीण हो गया और तब उनका मन संयम-सागर का मीन हो गया।

'माया' विजयी 'राम'—मुनिश्रेष्ठ श्री हरनामदास जी महाराज की चरण-शरण ग्रहण कर अब 'माया' ही नहीं, मान, क्रोध और लाभ पर भी विजयी होने के लिये चल पड़े—संयम-सुमेरु के शिखरों की ओर। संवत् १९३४ के माघ मास की शीतल हवाओं के साथ शुक्ल ध्यान की ओर बढ़ने के लिये शुक्ल पक्ष की षष्ठीके दिन उदित होते हुए सूर्य ने देखा—एक नव दीक्षित ऐमे मुनि को जो नया होते हुए भी प्राचीन की गरिमा मे युक्त था।

सन्त पुरुष ससार के किसी भी कोने में बैठ कर आत्म-कल्याण तो कर सकते है किन्तु उनका हृदय 'सर्व जन-हिताय' की भावना मे प्रेरित होकर "चरैवेति चरैवेति" का मन्त्र रटते हुए विचरते हैं निराबाध गति से। श्री मायाराम जी महाराज का सर्वजन-हितकारी विचरण आरम्भ हो गया।

सं० २०३४ के वर्ष ने स्मरण कराया कि उस महापुरुष के दीक्षा-दिवस ने १०० वर्ष पार कर लिये हैं, अतः कृतज्ञ समाज ने उस महापुरुष की दीक्षा शताब्दो मनाकर उनके चरणों में श्रद्धापुष्प अर्पित करने का पावन निश्चय किया। उत्तम है यह निश्चय निश्चित ही।

इससे मेरा हृदय सन्तुष्ट हुआ और मैंने अनेक बार उस पुण्य-चरित उज्ज्वल संयमी योगनिष्ठ महामुनि का पुण्य स्मरण कर अपने को कृत-कृत्य किया। मेरी कृत-कृत्यता उनके चरणों में अपने श्रद्धा-पुष्प अर्पित करती है।

—पंजाब-प्रवर्तक उपाध्याय 'श्रमण'
श्री फूलचन्द जी म०

मुनि-परम्परा के गौरव

श्री मायाराम जी महाराज के व्यक्तित्व व उनके संयम के विषय में क्या कहा जाये ? आप और हम उनकी महानता के अनेकों प्रसंग उनके प्रत्यक्ष-दर्शियों से सुन रहे हैं। इस विषय में अब कुछ अंकित भी हो रहा है।

श्री मायाराम जी महाराज का पंजाब, हरियाणा, देहली आदि के क्षेत्रों पर तो प्रभाव फैला ही था, किन्तु राजस्थान में भी उनका बहुत प्रभाव था। इधर का मुनि-समाज व श्रावक-समाज उन्हें विस्मृत न कर सकेगा। करे भी कैसे ? कुछ प्रसंग तो ऐतिहासिक कड़ियाँ बनकर इतिहास-शृंखला में जुड़ चुके हैं।

राजस्थान के महान् आचार्यरत्न श्री खूबचन्द जी महाराज के तो सम्यक्त्व-गुरु श्री मायाराम जी महाराज ही थे।

इधर के मुनिराजों से उनके कितने स्नेह-सम्बन्ध थे ? जब श्री मायाराम जी महाराज राजस्थान पधारे थे, तब सुप्रसिद्ध आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज ने अपने प्रिय भावी दीक्षित शिष्य श्री छोटेलाल जी को उन्हें शिष्य के रूप में भेंट किया था। यह बहुत बड़ी घटना है। उनकी कीर्ति बड़े गुरुओं से समय-समय पर सुनने को मिली है। इस लिये मैं कह सकता हूँ—वे मुनि-परम्परा के गौरव थे। महापुरुष तो चला जाता है, परन्तु अपनी सौरभ, यश के रूप में विश्व में छोड़ जाता है।

मैं उनके उज्जवल संयमी जीवन को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—पं० रत्न प्रवर्तक श्री हीरालाल जी म० :

**

श्रद्धा के पुष्प

श्री मायाराम जी महाराज सच्चे मुनि थे। किसी साधक के लिए सच्चे मुनि से बढ़कर और कोई विशेषण नहीं हो सकता। आदि-काल से मानव जिस श्रमण-परम्परा की बड़ी श्रद्धा, भावना से पूजा, उपासना करता आ रहा है, उस श्रमण-परम्परा में श्री मायाराम जी महाराज दीक्षित हुए। दीक्षित होकर उन्होने श्रमण-परम्परा को चार चाँद लगाये, उसके गौरव को और बढ़ाया। उन्होंने

संयम की एक ऐसी ज्योति जगाई, जिसके आलोक में अनेक साधकों ने अपना जीवन ज्योतिर्मय बनाकर सफल कर लिया। वे जहां भी जिस दिशा में गये वहीं संयम के ज्योतिकण बखेरते चले गये। उनके पवित्र चरणों में राजा और महाराजा भी आये। और तो क्या! उनकी विशुद्ध संयम साधना के आगे बड़े-बड़े चोर-डाकू यहाँ तक की खूंखार जगली शेर भी नतमस्तक हो झुक गये।

श्रद्धेय महाराज श्री की संयम-साधना जहाँ इतनी निराली थी, वहाँ उनका स्वर भी बहुत मधुर था। उनकी वाणी में तो ऐसा जादू भरा था, कि जो सुन लेता मन्त्रमुग्ध हो जाता था। आपके स्वर-माधुर्य से प्रभावित होकर राजस्थान के महान् आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज ने रतलाम शहर में आप श्री को 'पंजाब की कोयल' की उपाधि से सुशोभित किया था।

आज हम उस महापुरुष के विशुद्ध, उज्जवल संयम की गगा की धारा के समान निर्मल था, याद करके श्रद्धा से भर जाते हैं।

मैं उनके पावन चरणों में कोटि-कोटि श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—श्री टेकचन्द जी म०

श्रुत व चारित्र के अमर साधक **

श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा कथित श्रुत-धर्म और चरित्र-धम के अमर साधक श्री मायाराम जी महाराज की ओजस्वी वाणी में ऐसा चमत्कार था कि जिसने उसे सुनकर एक बार हृदय-मन्दिर में स्थापित कर लिया फिर वह वाणी उसके हृदय की अमिट वज्र-रेखा आजीवन ही बनी रही। वह उनकी शिक्षाओं को अपने हृदय में संजो कर उन पर आचरण करता ही रहा।

एक मधुर संस्मरण है—महाराज श्री एक बार पंजाब में जालिंधर के आस-पास जो० टी० रोड पर विहार कर रहे थे। शाम का समय हो गया। सूर्यास्त होने को था। आस-पास बस्ती, गाँव आदि भी नहीं था। परन्तु वहाँ ब्रिटिश-फौज पड़ाव डाले पड़ी थी। महाराज श्री ने सेना-नायक से बात की तथा उसको अपनी साधु मर्यादा से परिचित कराया—कि "हम रात में नहीं चलते। यहाँ

आस-पास कोई मकान, झोंपड़ी आदि भी नहीं है, जहाँ हम रात को ठहर सकें। अतः आप हमें तम्बू में रात बिताने के लिए स्थान दे दें।"

सेनापति महाराज की बातचीत से प्रभावित हुआ। उसने एक स्थान ठहरने को दे दिया। महाराज श्री ने प्रतिक्रमण के बाद अपनी धर्म-क्रियाएं पूर्ण कर देखा, कि स्वयं सेनापति और कई वरिष्ठ सैनिक अफसर वहाँ आ बैठे हैं तथा कुछ जिज्ञासायें लिए हुए है। महाराज श्री ने उन्हें सम्बोधित कर धर्म-कथा प्रारम्भ की। वह धर्म-कथा क्या सुनाई ? बस यही समझिए कि उन सभी अफसरों की मन, बुद्धि, चेतना को अपने धर्म-प्रेम के पाश मे ही बाँध लिया। जनरल ने पूछा कि आप कहाँ जाएंगे। महाराज श्री ने कहा—हम रावलपिंडी जायेंगे।

यह सुनते ही जनरल गद्गद् प्रसन्न होकर बोला—हमारा बिग्रेड भी रावलपिंडी जा रहा है। आप हमारे साथ ही चल। हर रोज़ ही ऐसी धर्म-वाणी सुना करेंगे। हम आपकी भोजन-पानी आदि की सभी सेवा करेंगे। आपको कोई कष्ट न होने देंगे। महाराज श्री ने उनकी विनती स्वीकार कर ली और सेना के साथ ही रावलपिंडी पहुंचे। रास्ते मे जहाँ जैनों के क्षेत्र आते, सेना भी वहाँ दो-चार दिनों तक पडाव डाले रहती। जिस दिन महाराज श्री विहार करते, सेना भी उसी दिन कूच कर देती। इस तरह उनकी धर्म-वाणी मे प्रभावित होकर एक महान् साम्राज्य की सेना भी उनकी भक्त बन गयी। यह एक आश्चर्य-जनक यात्रा थी। एक और पूर्ण अहिंसक जैन मुनि दूसरी ओर सशस्त्र सैनिक। किन्तु वे तो महाराज श्री के पूर्ण विनीत शिष्य बने हुए उनकी धर्म-वाणी के नित्य के श्रोतागण थे। यह उनका एक महान् चमत्कार था। दिन-रात तलवार से खिलवाड़ करने वाले योद्धागण भी धर्म-वृत्ति वाले बने।

श्रुत-ज्ञान के प्रगाढ़ अध्ययन चिंतन मनन से ही वाणी को ऐसी शक्ति मिलती है। तो ऐसा था—उनका श्रुत-धर्म।

चारित्र-धर्म : श्री मायाराम जी म० पंजाब सम्प्रदाय के शिरोमणि मुनिराज थे। ज्ञान से हृदय प्रकाशित था, किन्तु उसमें अभिमान

को कालिमा नहीं थी। साधु की समाचारी की आराधना का पूर्ण प्रयत्न था, किन्तु दूसरे मुनियों की निंदा करने का दोषरूप अजीर्ण नहीं था। प्रत्येक साथी मुनि के कार्य पर निगाह रखते थे कि कहीं वह कोई भूल न कर बैठे, किन्तु उसे अपमानित करने की भावना कभी नहीं थी। एकमात्र यही भावना थी, कि मेरे साथी मुनि सर्वप्रकार से सुयोग्य हों, विनीत हों। अपने कर्त्तव्य-पथ पर सुचारू रूप से चलने वाले हों। प्रत्येक साधु को उनकी यही शिक्षा थी कि आहार-पानी आदि सन्त-सेवा के कार्य पूर्ण करके शास्त्र-स्वाध्याय करो। एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय नहीं बैठो, शास्त्राध्ययन करते रहो। पूज्य गुरु-जनों के प्रति श्री मायाराम जी म० का व्यवहार पूर्ण विनितता का व्यवहार था। सब प्रकार से उनका आदर सम्मान करते थे और अपने साथियों से करवाते थे। विनय ही धर्म का मूल है—यह वाक्य उनके हृदय में पूर्णतया बसा हुआ था।

पंजाब-संघ के तत्कालीन आचार्य पूज्य श्री सोहनलाल जी म० उनको अपना दायाँ हाथ मानते थे और गच्छ के कार्यों में उनकी मंत्रणा लेना आवश्यक समझते थे। जहाँ-जहाँ श्री मायाराम जी म० विचरण करने गये वहां २ के जन-समुदाय उनको सदा ही आदर सम्मान से स्मरण करते हैं। यह सारी महिमा हमसे कहाँ लिखी जा सकती है। अन्त में यही शास्त्र-वाक्य दे कर समाप्त करता हूँ कि भगवान् महावीर की वाणी हो कह रही है कि 'देवावि त नमसंति जस्स धम्मे सया मणो'। अर्थात् जिस व्यक्ति का मन सदा ही धर्म-साधना में लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते है। भावितात्मा, विद्या और आचरण से सम्पन्न महामुनि को देवता अपने पुण्य की वृद्धि करने के लिए अंग-प्रत्यंग झुकाकर बार बार नमस्कार करते हैं। यह प्रभाव धर्म-साधना का है।

भगवान् महावीर के इस श्रुत-धर्म और चरित्र-धर्म के धारण करने से अनन्त-अपार संसार सागर को तिरा जाता है। इस परम पावन वाक्य को जीवन में प्रमुखता देकर और उस पर आचरण करके आप तिरे और अनेक को तारकर अपनी कीर्ति को अमर बनाने वाले श्री श्री १००८ श्री मायाराम जी म० को अनत वंदन।

—स्व० पं० र० श्री फूलचन्द जी म० 'पंजाबी' (मेरठ)

महान् संयमी

महापुरुषों की स्मृति के लिए कुछ कार्य करना, उनके प्रति कृतज्ञता एवं विनय-भक्ति का द्योतक है। वीतराग धर्म तो विनय-मूलक ही है, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु, विनय से रत्न-त्रयरूप वीतराग-धर्म की सम्यग् आराधना कर सकता है।

महापुरुषों के पुनीत स्मरण से मन ही नहीं जीवन भी पवित्र हो जाता है। महामुनीश्वर श्री श्री १००८ श्री मायाराम जी महाराज अपने समय के महान् संयम-साधक थे। आपके संयम-जीवन में आगमोक्त निर्ग्रन्थ के उग्रविहारी, रुक्ष-भिक्षाचारी, दृढ़ संयम, चट्टान के समान अकंप श्रद्धा आदि विशेषण स्पष्ट घटित होते थे। प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में भी आप उन दिनों अग्रगण्य थे। आपने अपनी पतित-पावनी वाणी के द्वारा हजारों-लाखों पतनोन्मुख नर-नारियों को मुक्ति का राजमार्ग बतलाया। आपमें साधु जीवन की आधार भूत तीनों चीजों—श्रद्धा, परुपणा, फरसना का अनुपम साम्य था। मैने पूज्य गुरुदेव पंजाब केसरी श्री श्री १००८ श्री प्रेमचन्द जी महाराज की श्रीमुख से सुना कि चरित्र-चूडामणि श्री मायारामजी महाराज के प्रखर संयम-साधना से गृहस्थ-समाज ही प्रभावित नहीं था, अपितु साधुवर्ग और तत्कालीन पंजाब प्रान्त के आचार्य श्री श्री १००८ श्री सोहनलाल जी महाराज आपके अमृतसर शहर पधारने से पूर्व अपने सब साधुओं को सावधान कर देते थे, कि "श्री मायाराम जी महाराज पधारने वाले हैं। सभी साधु अपने वस्त्र-पात्र, क्रिया आदि का उचित ध्यान रखें।" उन दिनों आपकी वह उत्कट संयम-साधना मुक्तिपथिकों के लिए मार्गदर्शिका बन गई थी। आपकी संयम-श्रेष्ठता का वर्चस्व पंजाब में ही नहीं, अपितु मारवाड़, मेवाड़, गुजरात आदि प्रान्तों में भी था। आज भी यदि आपके गच्छ का कोई साधु कहीं विचरने जाता है तो उसे विशेष क्रिया-पात्र समझा जाता है। यह सब आपके संयम-पूत जीवन की महिमा है।

ऐसे महान् संयमी के पाद-पद्मों में, मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—श्री बनवारी लाल जी म०

श्रमण-संस्कृति के उन्नायक

श्रमण-संस्कृति के आद्य संस्थापक भगवान् ऋषभदेव थे। अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह इनके मुख्य सिद्धांत हैं। इस श्रमण-संस्कृति के उन्नायक अनेक महापुरुष हुए है, जिन्होंने इस पतित-पावन संस्कृति को अपने आदर्श-जीवन से सुरक्षित, संवर्द्धित एवं पोषित किया। इन्ही महापुरुषों में घोर सयमी, परम तेजस्वी, ओजस्वी एवं यशस्वी महान् मुनि श्री मायाराम जी महाराज का नाम वर्तमान में बडे गौरव से लिया जाता है। इस परमपावन आत्मा ने उत्कृष्ट त्याग एवं सयम से श्रमण-सस्कृति को चार चाँद लगाकर खूब ही बढ़ाया। वे अपने समय के बेजोड संत थे। कथनी, करनी में उनके कोई अन्तर नही था। जीवन की प्रयोगशाला में ढला हुआ सत्य ही उनकी वाणी पर आता था। "मनस्येकं, वचस्येकं, कर्मण्येकं महात्मनाम्" की वे साकार प्रतिमा थे। आचार उनका शुद्ध था। विचार उनके पवित्र थे। वाणी निरवद्य थी। पापी से पापी आत्मा भी उनकी पावन वाणी का श्रवण कर धर्मात्माओं की अग्रिम पंक्ति में आ लगे। यह था उनकी वाणी का जादू। गगा की भाँति निर्मल उनका जीवन था। वे अपने समय के सर्वोत्कृष्ट सयमी साधक थे।

भारत-भूमि पर जिस ओर भी उनके चरण पडे, वह भूमि पवित्र हो गई। उनकी अमृतमयी वाणी का पान जिसने भी किया, वही आत्म-धन से सुसमृद्ध हो गया। महामनीषी मुनि श्री मायाराम जी महाराज को मैंने प्रत्यक्ष तो नही देखा, किन्तु मैं मानता हूँ, कि वे अपने समय के महामुनि थे। उनके सम्बन्ध में प्रचलित लोक-वाणी असत्य नही हो सकती। वह वस्तुतः ही महान् थे। उनका नाम श्रमण-परम्परा के उन्नायकों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। क्योंकि उन्होने अपने संयम से श्रमण-संस्कृति का गौरव बढ़ाया था।

ऐसे श्रमण शिरोमणि महापुरुष को मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित है।

—पं० श्री हेमचन्द्र जी म०
(शक्ति नगर, देहली)

श्रद्धा-सुमन

आराध्य देव, वैराग्य-मूर्ति, दृढ-संयमी, पंजाब की कोयल चरित्र-चूड़ामणि पूज्यपाद श्री मायाराम जी म० ऐसे अनुपम पुष्प थे कि उनकी सुगन्ध से, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, देहली और सुदूर दक्षिण भारत आज तक सुगन्धित है।

वे भारतीय गगन-मण्डल के आदित्य थे। जिस प्रकार सूर्य पूर्व मे उदित होकर भी सर्व दिशाओं को आलोकित करता है, उसी प्रकार चारित्र-चूडामणि परम श्रद्धेय महाराज श्री ने प्राणिमात्र को प्रभावित किया।

महाराज श्री ने स्वयं को सयम की कसौटी पर कस कर अपने को शुद्ध कुन्दन बना लिया था। अत. उनके महान् व्यक्तित्व को कभी भुलाया नही जा सकता है? महापुरुषों को भुला कर कोई भी समाज उन्नत नही हो सकता।

उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना हमारा कर्तव्य है, धर्म है तथा पराङ्मुखता अधर्म व कृतघ्नता है। महाराज श्री के अनेकों और महान् उपकारो को हम विस्मृत नही कर सकते।

उन के पदचिह्न हमारे पथ-प्रदर्शक है। उन का उत्कृष्ट संयमी जीवन व उन का साहित्य हमारा भावी कार्यक्रम है। उनकी स्मृति हमारे लिये प्रेरणा-स्रोत है। इसी श्रद्धामयी भावना से उन महान् पवित्र दिव्यात्मा के पुनीत चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित है।

—**श्री नेमचन्द जी म० (पंजाबी)**

**

न हर समुद्र से मोती सदा निकलते हैं,
न हर मज़ार पे यादों के दीप जलते है।
वसन्त जिन के महकने से धन्य हो जाये,
वे फूल बाग में सदियों के बाद खिलते हैं।

—**उदयभानु 'हंस'**

ब्रह्मचर्य की अखण्ड ज्योति

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कहानी तो प्रायः सुनते-सुनाते ही रहते हैं, परन्तु उनको हुए लाखों वर्ष गुजर गए हैं। बड़ौदा की धरती को पावन बनाने वाले आज के 'राम' की 'माया' की कहानियाँ भी अयोध्या के राम से कम विलक्षण नहीं हैं। नमूने के तौर पर एक प्रसंग प्रस्तुत करता हूँ—

सुना जाता है, कि जाट-जाति की परम्परा में स्त्री के पति की मृत्यु के बाद उसका देवर दूसरा पति समझा जाता है। परम श्रद्धेय श्री मायाराम जी महाराज के युवा जीवन में भी यह प्रसग उपस्थित हुआ। उनके बड़े भाई का असमय में ही स्वर्गवास हो गया था।

जातीय परम्परा के अनुसार चहल वंशियों ने युवक मायाराम जी का विवाह उनकी भाभी से करवाना चाहा। मायाराम जी ने यह सुना तो तत्काल-विनम्र शब्दों में आग्रही बन्धुजनों से इसके लिये स्पष्ट इकार कर दिया।

इतना ही नहीं—ब्रह्मचर्य की अखण्ड-ज्योति श्री मायाराम जी ने एक दिन अपनी भाभी को मातृ-शक्ति के रूप में निहारते हुए उसके चरण-स्पर्श किए और कहा—

"माता! मैं तो प्रत्येक नारी को मातृ-शक्ति के रूप मे ही देखता हूँ। दुनिया की नजरों में तुम मेरी भाभी हो, परन्तु मेरे नयनों ने तो तुम्हारे में सदा अपनी माता का रूप ही देखा है। अतः अम्बे! पुत्र के सामने माता को अपना मातृत्व सदा सुरक्षित रखना चाहिये।"

इस प्रसंग से मुझे तो लगता है, कि बड़ौदा के राम की माया ने अयोध्या के राम की माया को पुनर्जीवित कर दिया है। अयोध्या के राम की माया ने तो लंका-पति रावण की बहिन शूर्पणखा को ठुकरा दिया था, परन्तु बड़ौदा के राम की माया को अपनी भाभी में भी उसके सोये हुए मातृत्व को सदा के लिए जागृत कर दिया। सम्भव है आज इसी के लिये हजारों नहीं लाखों कण्ठों से यही स्वर निकल रहा है—ब्रह्मचर्य की अखण्ड-ज्योति पूज्यपाद श्री मायाराम जी महाराज अमर रहें!

—प्रसिद्ध वक्ता श्री ज्ञानमुनि जी म०

साधना की जीवन्त मूर्ति

संयम-निष्ठ, साधना की जीवन्त मूर्ति श्री मायाराम जी म० का ज्योतिस्वरूप-जीवन २० वीं शती के सामने है। महापुरुष का जीवन,निर्माण का सन्देश-वाहक होता है। पतितोद्धारक, अज्ञानवान् को ज्ञानवान् बनाने वाले महापुरुष का जीवन आत्मोत्थान के लिये लिये सदा-सदा स्मरणीय होता है। श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० ने हरियाणा प्रदेश में जन्म लिया था किन्तु वे किसी विशेष प्रान्त-प्रदेश से नही बंधे। उन्होंने अपना सन्देश प्रत्येक नगर-ग्राम तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि हरियाणा प्राँत से सुदूर स्थित उदयपुर की गणिकाओं ने उनकी शास्त्रीय सगीत ध्वनि से आकर्षित हो कर व्यसनों को तिलाञ्जली दे दी थी। उनकी त्याग-वृत्ति, उपदेश की शैली भव्याकर्षक थी, जो आगतुक को प्रथम दर्शन में ही मोहित कर लेती थी। आज एक त्यागी दूसरे त्यागी के भाव-दीक्षित को अपनी ओर आर्कषित करने के लिये नाना प्रयत्न करते हैं। प्रलोभन देते है, किंतु विरल घटनाएं ऐसी होती हैं कि एक सम्प्रदाय के अनुयायी मुनि ने अपना भावदीक्षित शिष्य सहर्ष दूसरे को सौप दिया हो। अपने मेदपाट (मेवाड़) प्रदेश की विहार यात्रा के समय महान् आचार्य श्री उदयसागर जी म० ने व श्री नेमीचन्द जी ने अपने शिष्य आप श्री को भेंट में दिये थे। यह एक ऐतिहासिक घटना है।

तो श्री मायाराम जी म० निकट अतीत के एक ऐसे महापुरुष थे जिनके जीवन से आने वाली अनेक शताब्दिया आलोक प्राप्त करेंगी। उनका उज्ज्वल सयमयश कभी काल की लहरों से मिट न सकेगा। वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। ऐसे महामानव चरित्रचूड़ामणि श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० के पावन चरणो में अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पित करता हूँ।

—श्री भगवती मुनि जी म० 'निर्मल'

प्रेरक संस्मरण

परमपूज्य, प्रातः स्मरणीय, धर्म-दिवाकर, तप-सयम-सुमेरु मुनि शिरोमणि श्री मायाराम जी म० का जीवन-वृत्त हमें अद्भुत प्रेरणा देता है। उनके प्रेरणा-प्रद जीवन के कुछ सस्मरण प्रस्तुत है—

एक घटना उनके बड़ौदा चातुर्मास की है। चौ० मोखराम (मोखा) नामक एक भाई अपनी गायों का दूध निकाल रहा था। महाराज श्री बाहर से घूमकर आ रहे थे। सन्तों को देखकर वह बोला—गुरु महाराज ! दूध की कृपा करो। महाराज श्री ने उत्तर दिया—"भाई ! तुम्हारा दूध लेना शास्त्र की दृष्टि से तो कल्पता है, पर व्यवहार में नही। क्योंकि लोगों को सन्देह होगा कि—महाराज जी गायों का दूध निकलवाकर लाया करते थे। मैं तुम्हारा दूध यहा नही ले सकता। इससे आगे के लिए एक रास्ता बन जाएगा।" ऐसी उनकी दीर्घ दृष्टि थी।

उनमें विनय अतीव निराली थी। वे इतने ऊंचे विनय मे ही उठे थे। एक घटना है—श्री मायाराम जी महाराज अम्बाला होते हुए अमृतसर पधारे। वहाँ पर विराजित आचार्य श्री मोहनलाल जी म० को जब श्री मायाराम जी म० वन्दना करने लगे तो आचार्य श्री ने ध्यान नही दिया। महाराज श्री ने पुनः ऐसा किया, किन्तु आचार्य श्री ने फिर भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि वे कुछ रुष्ट थे। लेकिन श्रद्धेय महाराज श्री के आदर सम्मान पूर्ण व्यवहार में कोई अन्तर नही आया। अन्ततः आचार्य श्री को प्रसन्न होना पडा। स्नेहपूर्ण शब्दो मे उन्होंने कहा—मायाराम ! तुम जीत गये ! कवि ने मधुर शब्दों में कहा है—

> प्यार इन्सान को इन्सान बना देता है,
> उम्र की राह को आसान बना देता है।
> दिल में मुहब्बत है तो खौफ़ो-खतर क्या,
> प्यार पत्थर को भगवान् बना देता है ॥

श्री मायाराम जी महाराज ने आचार्य श्री से पूछा—आप श्री किस बात से रूठ गए थे ! पूज्य महाराज जी बोले—आपने

अम्बाला में श्री लालचन्द जी महाराज और श्री रामस्वरूप जी महाराज से वन्दन-व्यवहार किया। उन सन्तों से हमारा सम्बन्ध विच्छेद है। यह सुनकर श्रद्धेय महाराज श्री ने कहा—मैं तो सभी पूज्य मुनिराजों को आदर की दृष्टि से देखता हूँ। सभी के लिये मेरे मन में सम्मान है। मतभेद हो जाते हैं, पर मेरी दृष्टि तो मुनित्व पर है। मुनित्व मेरे लिये सदैव आदरणीय है। अत मैं ने उनसे वन्दन-व्यवहार किया।

एक बार श्री मायाराम जी महाराज पंजाब में विचरण कर रहे थे। एक श्रावक महाराज श्री की पुरानी चादर देखकर, बोला—गुरु महाराज! आप श्री की चादर देख कर मुझे संकोच आता है। आप हमारे गुरु और आप की चादर ऐसी? कई व्यक्ति मुझे लज्जित करने का प्रयत्न करते है। महाराज श्री ने उत्तर दिया—"साधु की शोभा सयम से होती है, न कि वस्त्रों से। जैन-साधु की या जैन समाज की सच्ची शोभा तो त्याग और सयम है। अगर मेरे संयम मे कोई दोष होता तब तो अपमान की बात थी और तुम को शर्म आती। साधु की शोभा सयम से है, वस्त्रो से नही। अगर चरित्र ठीक न हो और वस्त्र उज्ज्वल हो तो क्या मूल्य है? कितना स्पष्ट उत्तर था।

श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० का सयममय जीवन तो समुद्र की भाँति पारावार-रहित है। उनके जीवन का हर क्षण स्वय मे अनूठी विशेषता छिपाए हुये है। उनका हर कदम हमारे लिये एक प्रेरक सस्मरण है। इस पुण्य वेला में, मै उन्हे सश्रद्ध अर्चना-पुष्प अर्पित करता हूँ।

—श्री विजय मुनि जी म० 'स्नेही'

**

प्राण-प्रखर व्यक्तित्व को

ज्योतिर्धर युग-विभूति मुनि-श्रेष्ठ श्री मायाराम जी म० ने स्थानकवासी समाज के सांप्रदायिक परिवेश मे रहकर भी जिनवाणी की उदार सम्पदा से सर्जन-जीवन के भटकते पथ को विभूषित किया। उनका अधिकाशत: विचरण क्षेत्र पजाब भले ही रहा हो; किन्तु उनका प्रभाव अन्य क्षेत्र की सीमा लाँघ गया था। यह उनकी लोकप्रियता का स्पष्ट चमत्कार कहा जा सकता है। उनकी बोध-शैली इतनी सचोट थी, कि श्रोता के हृदय मे एकदम सीधी

उतर जाती थी, कि वह जीवन-पर्यन्त श्रद्धाभिभूत हो जाता था।

वे भले ही उन्नीसवी शती के सन्त रहे हों, किन्तु ऐसे सन्त देश-कालावधि की सीमाओं से परे होते हैं। उनका तन-मन-जीवन 'स्वात: सुखाय' के साथ ही "सर्वजन हिताय" की कल्याणकारिणी भावना से जुड़ा रहता है। उनकी दृष्टि 'आत्मौपम्येन सर्वत्र' की आकांक्षा से परिपूर्ण होती है। वर्तमान में हो नहीं, भविष्य के आंगन में भी महामना पूज्य श्री मायाराम जी म० की विरासतों की फ़सल लहलहाती रहेगी।

भगवान् महावीर की उज्जवलतम परम्परा के पोषकमुनि-प्रवर श्री मायाराम जी म० के प्राण-प्रखर-व्यक्तित्व को सादर भवांजलि समर्पित है।

—मधुर वक्ता श्री मूलचन्द जी म०

**

दैदिप्यमान श्रमण रत्न

विश्व उसी का सान्निध्य-ऋणी रहता है, उसी के सम्मुख प्रणत होता है, जो कि साधना के सिर-मौर होते हैं। जिन्हें लघु सीमाएं कभी स्वीकार नहो होती हैं, जो सीमातीत होते है।

...ऐसे ही अपने समय के एक युगधर मुनि-पुगव चारित्रात्मा श्री मायाराम जी म० हो गए है। जिनकी साधना की सुगन्ध आज तक महक रही है। युग-युगों तक महकती रहेगी। समय के प्राण भी उनके प्रवाह से अनुप्राणित रहे हैं। उनकी गरिमा की गमक समग्र वातावरण पर छाई हुई है। वे वस्तुत: दिव्य व्यक्तित्व के विमल-मानस सन्त-प्रवर थे। संयम-सौंदर्य के प्रतीक थे।

उनका व्यवहारिक स्वरूप कसौटी-सिद्ध था। उनके आध्यात्मिक रंग के सम्मुख सभी कुछ फीके थे। उनका वैयक्तिक विकास वर्तमान के वातावरण को आप्लावित कर रहा है। उन्होने झंझावातों से घिरे जीवन को मुक्त कर के वरदान की सुखदा को धरती पर अवतीर्ण कर दिया था। उन्होंने बिखरे-उखड़े जन-मन को एक आश्वस्त दिशा-बोध के सदर्शन कराए। वे अपने सानी के आप ही थे। उनकी गरिमा अद्वितीय थी।

उन जिनशासन के संयमी सेनानी, महामना श्रमणरत्न श्री मायाराम जी म० को असीम श्रद्धा-भार्वाचन के कुसुम प्रस्तुत हैं।

—श्री अजित मुनि जी म० 'निर्मल'

सचमुच स्व० महामना श्री मायाराम जी म० सा० उच्च कोटी के साधक थे। शास्ता थे। ज्ञान और ध्यान, शांति और क्रांति, दृढ़ता और सरलता की सजीव मूर्ति थे।

—सुप्रसिद्ध पं० श्री सौभाग्यमल जी महाराज

सन्त-शिरोमणि चारित्र-चूड़ामणि श्री मायाराम जी म० का व्यक्तित्व वास्तव में दिव्य एवं भव्य था। उनका व्यक्तित्व भावी साधकों के लिये दीपस्तम्भ के समान है।

—प्रखर वक्ता श्री अशोक मुनि जी महाराज

जिन-शासन को चमत्कृत करने में श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० का अपूर्व योगदान रहा है। आप श्री का संयम-निष्ठ-जीवन समाज के लिये प्रेरणा-स्रोत है।

उनके श्री चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना समाज का परम कर्तव्य है।

पं० श्री नेमीचन्द जी म०

मैंने स्व० पूज्य गुरुदेव श्री छगनलाल जी म० से श्रद्धेय श्री मायाराम जी म० के त्याग-वैराग्य के विषय में सुना। उनके संयम तप-त्याग की सुगन्ध ने समस्त समाज को सुवासित किया था। पूज्य श्री को तो नहीं, परन्तु उनकी जन्मभूमि बड़ौदा ग्राम को देखने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है।

—मुनि श्री रोशनलाल जी म० 'सिद्धान्त शास्त्री'

कुण्डली की रेखाओं में

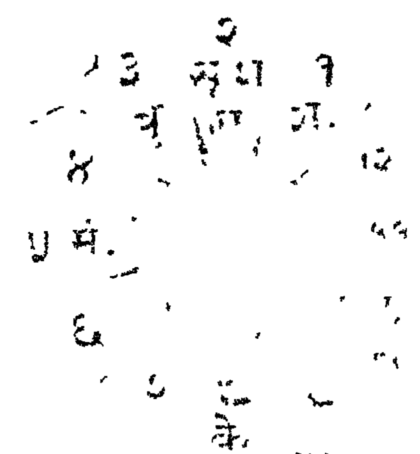
श्री मायाराम जी म०

सत्यद्रष्टा, वीतरागी एवं महिमा-मंडित मुनि श्री मायाराम जी महाराज १९वीं शताब्दी के उन महापुरुषों में अग्रणी थे, जिन्होंने अपना जीवन मानवमात्र को उन्नति के लिए समर्पित कर दिया। उन्होंने जनता को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन जीने की दृष्टि प्रदान की और लोगों को आह्वान किया—ऊँच-नीच, जातिवाद एवं वर्ग-भेद को भुलाकर आपस में समत्व एवं बन्धुत्व की भावना से व्यवहार करें। शाश्वत सुख के लिए सत्य, संयम एवं अपरिग्रह का आचरण करें। उनका कहना था—कि इच्छाओं के पीछे भागना दुखों का मूल कारण है। हमारा जीवन जितना संयमित होगा, आवश्यकताएँ जितनी कम होंगी, हम उतने ही सुखी होंगे।

इस प्रकार का क्रान्तिकारी दर्शन देने वाले उस महापुरुष ने ५८ वर्ष तक निरन्तर मानवमात्र के कल्याण हेतु अनेक-विध कार्य किये।

आइए! कुछ क्षणों के लिए इस महामना की जन्म-कुण्डली, दीक्षा-कुण्डली एवं निर्वाण-कुण्डली पर दृष्टिपात करें, तथा यह विचार करें कि इनमें वे कौन-कौन सी विशेषताएँ थी, जिनसे वे मोहग्रस्त मानवों को यथार्थ दिशा-बोध देने वाले प्रकाश-स्तम्भ बन पाए।

इनका जन्म आषाढ़ बदि २ सं० १९११ सोमवार तदनुसार दि: १२ जून सन् १८५४ ई० को प्रात: उत्तराषाढ नक्षत्र के द्वितीय चरण, सूर्योदयादिष्टकाल घट्यादय: ००/००, वृषभ लग्न, बड़ौदा ग्राम (हरियाणा) में हुआ। तत्कालीन ग्रहस्थिति के अनुसार उनकी जन्म-कुण्डली इस प्रकार है—



फलित ज्योतिष-शास्त्र की मान्यताओं के अनुसार जन्मकालिक ग्रहों से बने योगानुयोगों पर विचार करने से जो परिज्ञात होता है, उसे क्रमशः देखें—

प्रारम्भिक जीवन :

जातक का शरीर अत्यन्त भव्य, सुडौल तथा मानोन्मान-युक्त होना चाहिये। शरीर का वर्ण गौर हो। क्योंकि लग्न में तेजस्वी ग्रह सूर्य तथा सुन्दर आभावान् ग्रह शनि एव तद्-गुणवत् राहु का योग है। इन पर चन्द्र से युक्त गुरु की दृष्टि है। लग्नेश शुक्र स्वयं सौन्दर्य का स्वामी हो कर हर्षित अवस्था में है। इन सब योगों के प्रभाव-वश शरीर का सुन्दर होना बडा सहज है।

ग्रह-स्थिति देखने पर स्पष्ट परिलक्षित होता है, कि बचपन में ही इन्हें माता-पिता के दुलार से वंचित होना पड़े। ज्येष्ठ भ्राता पर रहा अरिष्ट भी कुण्डली में स्पष्ट है। क्योंकि पृथकता-जन्य स्वभाव का प्रतिनिधि व्ययेश मंगल है। यह मातृ-स्थान (चतुर्थ भाव) मे स्थित है। इससे माता का वियोग तथा मगल की ही पितृ-स्थान (दशम भाव) पर शत्रु दृष्टि है, जो पिता का वियोग देती है। इसके साथ पितृ-कारक ग्रह सूर्य का शनि व राहु से पीडित होना, अष्टमेश से दृष्ट होना तथा मातृ-कारक ग्रह चन्द्रमा की अष्टमेश से युति, माता-पिता के वियोग के सूचक हैं।

एकादश भाव पर भी व्ययेश मंगल की दृष्टि का होना व अन्य किसी शुभ दृष्टि का न होना ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु की सूचना देता है।

शिक्षा :

प्रारम्भिक शिक्षा का चतुर्थ से, माध्यमिक शिक्षा का पंचम से तथा उच्च शिक्षा का विचार दशम भाव से किया जाता है। व्ययेश की चतुर्थ भाव में स्थिति, यह योग बाल्यावस्था में शिक्षा का बाधक है। इसके अनन्तर पंचम भाव पर गुरु की पूर्ण दृष्टि तथा मन के प्रतिनिधि चन्द्रमा की युति ऊँची शिक्षा का योग बनाते हैं।

एक विलक्षण बात यह है—उन्हें शिक्षा देने वाला कोई सामान्य व्यक्ति नहीं होना चाहिये; क्योंकि अष्टम भाव का स्वामी गुरु है। वह नवम भाव (धर्म) में स्थित होकर पंचम भाव को देखता है। अतः इनका शिक्षक कोई सिद्ध पुरुष, योग-सम्पन्न व्यक्ति होना चाहिये।

मुनि-जीवन :

सूर्य (आत्मा) का, शनि मोक्ष का तथा गुरु धर्म एवं दर्शन का प्रतिनिधि ग्रह है। चन्द्रमा मन का प्रतिनिधित्व करता है और मंगल दृढ संकल्प-शक्ति का। इनकी कुण्डली में आत्मकारक तथा मोक्षकारक ग्रहों का योग, मन के प्रतिनिधि का धर्म के प्रतिनिधि से योग तथा चतुर्थ स्थान में दृढसंकल्प-शक्ति-दायक मंगल की स्थिति ये सब इस प्रकार के योग हैं, जिन्होंने इनके जीवन को त्याग, वैराग्य एवं तपोमय बनाने में अहं भूमिका अदा की। इनकी कुण्डली में लग्नेश शुक्र तथा शनि का निर्बल होना ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार संन्यासी योग बनाता है।[1] इस योग के प्रभाव-वश ही इन्होंने गृहस्थ-सुख का त्याग कर विशुद्ध ब्रह्मचारी एवं तपोमय मुनि-जीवन यापन करने का संकल्प ग्रहण किया।

विलक्षण पाण्डित्य :

पाण्डित्य का विचार मुख्यतः पंचम भाव से किया जाता है।

---

1. लग्नपमन्दौ बलहीनौ सन्यासी। —जातक तत्त्व

इनकी कुण्डली में पंचम स्थान का स्वामी बुध स्वराशि में द्वितीय स्थान में बलवान् हो कर बैठा है।[2] मन के प्रतिनिधि ग्रह सूर्य का धर्म के प्रतिनिधि ग्रह शनि के साथ सम्बन्ध है, क्योंकि यह नवम स्थान का स्वामी है। अत: इन योगों के प्रभाव से उन्हें सभी विद्याओं में विशेषकर आगम एवं दर्शन-शास्त्र में अगाध ज्ञान व पाण्डित्य प्राप्त हुआ।

ओजस्वी तथा प्रभावशाली वक्ता :

ज्योतिष-शास्त्र में वक्तृत्व-कला का प्रतिनिधि ग्रह बुध तथा भाव द्वितीय भाव होता है। इनकी कुण्डली में द्वितीय भाव में उसका स्वामी ग्रह बुध बैठा है, जो स्वयं कारक होने के साथ पंचम (विचार) स्थान का भी प्रतिनिधि ग्रह है। अत: इस योग के प्रभाव-वश व्यक्ति को प्रभावशाली वक्ता होना ही चाहिए।[3]

एक महान् दार्शनिक :

नवम स्थान में स्थित गुरु व्यक्ति को दार्शनिक बनता है।[4] मुमुक्षा एवं वैराग्य का प्रतिनिधि ग्रह शनि जब भी मन के प्रतिनिधि ग्रह चतुर्थेश से सम्बन्ध करता है, तो व्यक्ति जन्म से वीतरागी एव मोक्षमार्ग पर अग्रसर हो जाता है। इनकी कुण्डली में नवमस्थ गुरु तथा शनि सूर्य के योग का जो चमत्कार है, उसे बचपन से ही इनको क्रिया-कलापों को प्रभावित किया।

महान् धर्म-प्रचारक :

धर्म का प्रतिनिधि नवमेश एवं गुरु होता है। तथा धार्मिक यात्राओं का नवम से और प्रचार-प्रसार का विचार दशम स्थान से

---

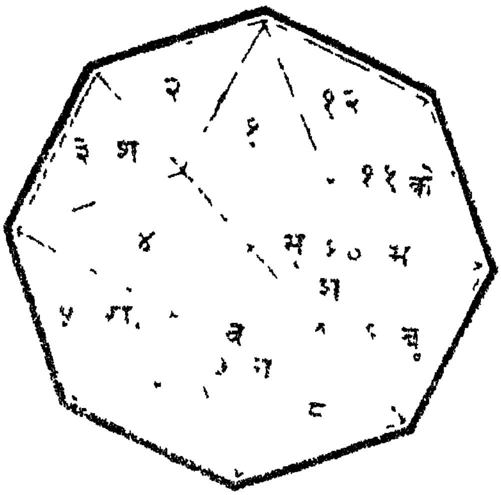
2. रविलुप्तकर: सौम्य: स्वस्थो मूलत्रिकोणग: ।
सर्वविद्याधिको राजा नेतरेषां खचारिणाम् ।
—जातक पारिजात अ० ७ श्लो० ४१

3. वागीशे स्वगृहे सौम्ये स्वोच्चे वा शुभवीक्षिते ।
पारावतांशके वाऽपि वाग्मी पटुतरो भवेत् ।।
—जातक पारिजात

4. केन्द्र-कोणे जीवे वेदान्तज्ञ: ।
—जातकतत्त्व-पंचमविवेक सू० ५७

होता है। अब आप इनकी दीक्षा-कुण्डली पर दृष्टिपात कीजिए।

इन्होंने माघ शुक्ल ६ सं० १९३४ को पटियाला नगर (पंजाब) में मुनि-दीक्षा ग्रहण की। तदनुसार दीक्षांक निम्न है—



इसमें नवमेश गुरु का चतुर्थेश चन्द्रमा के साथ योग है, दशम मे उच्चराशि-गत मगल पचमेश सूर्य के साथ बैठा है तथा इनके साथ शुक्र का योग है, जो पूर्वोक्त योग-कारक राशि का स्वामी है। यही नही गुरु-चन्द्र का योग एक प्रकार का राजयोग है। इन योगो के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाये तो हम कह सकते हैं, कि इन्होंने धर्म-प्रचार का अद्वितीय कार्य किया। इनके धर्म-प्रचार के कार्यक्रम को प्रभावोत्पादक बनाने में दशमस्थ ग्रहों का प्रभाव रहा तथा स्थान-स्थान पर सम्मान, श्रद्धा एव यश दिलाने में चन्द्रमा और गुरु के राजयोग[5] ने चमत्कार दिखलाया।

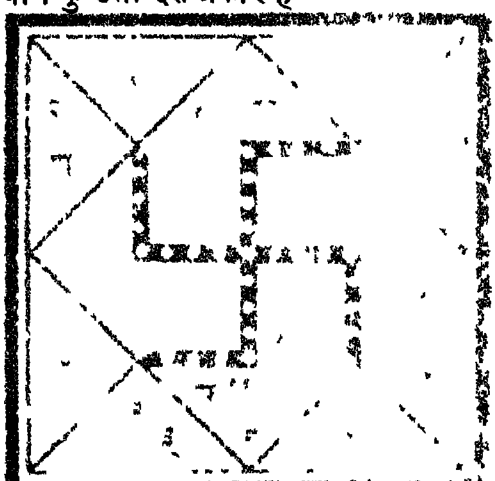
धार्मिक जगत् के राजा :

सामान्यतया राजा वह होता है, जिसके आदेश का सभी लोग

5. केन्द्रस्थिते देवगुरौ शशांकाद्योगस्तदाहु गजकेसरीति।
गजकेसरि संजातस्तेजस्वी धन-धान्यवान्।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो भवेत्।।
—जातक पारिजात अ० ७ श्लो० ११६-१७

पालन करते हैं । किन्तु जिसके आदेश एवं उपदेशों का पालन लोग श्रद्धा एव विनम्रता से करें वह राजा से भी बढकर होता है । यह विलक्षणता कुछ-एक लोगों को ही प्राप्त होती है । महाराज श्री को यह विलक्षणता सहज ही में मिल गयी थी । इसका कारण है इनकी कुण्डली में गजकेसरी योग[6], शनि सूर्य का राजयोग[7], नीचभग राजयोग[8], उभयचरीयोग[9] तथा पारिजात योग[10] होना । राजयोगों की दृष्टि से महाराज श्री की कुण्डली बडी विलक्षण है, जिसमें एक-दो ही नही अपितु मेरी दृष्टि से ५ राजयोग हैं। यही कारण है, कि वे जनता के हृदय-सम्राट् बन गये ।

वह दिव्य ज्योति जिसका आविर्भाव स० १९११ मे हुआ था, तिरोभाव भाद्रपद शुदि ११ स० १९६९ तदनुसार दि० २१ सितम्बर १९१२ ई० को साय ७/१८ बजे हुआ। तत्कालीन ग्रहस्थिति के अनुसार उनकी निर्वाण-कुण्डली इस प्रकार है—



6. केन्द्रस्थिते देवगुरौ शशांकाद्योगस्तदाहु गज-केसरीति ।
7. केन्द्र-त्रिकोणे नेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम् ।
सम्बन्धमात्राद् बलिनौ भवेता योग-कारकौ ।। —लघुपाराशरी
8. नीचं गतो जन्मनि यो ग्रह स्यात्तद् राशि-नाथोऽपि तदुच्च-नाथः
स चन्द्र-लग्नाद्यदि केन्द्रवर्ती राजा भवेद् निश्चितश्चक्रवर्ती । —पारिजात
9. सौम्यान्वितोभयचरि प्रभवा नरेन्द्र—
स्तत्तुल्य-वित्तसुख-शीलदयानुरक्ता: ।
10. विलग्ननाथ-स्थित-राशिनाथस्थानेश्वरो वाऽपि तदंशनाथ: ।
केन्द्रत्रिकोणोपगतो यदि स्यात्स्वतुङ्गगो वा यदि पारिजात: ।।

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार अष्टम स्थान मोक्ष का, नवमस्थान मोक्ष के साधन धर्म का तथा बारहवां स्थान मृत्यु के बाद की गति का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक विलक्षणता है, कि महाराज श्री की निर्वाण-कुण्डली में अष्टमेश एवं नवमेश (शुक्र तथा मंगल) का योग है। साथ ही शनि की १२वें स्थान पर दृष्टि और गुरु की ६वें स्थान में स्थिति है। ये सब योग एक दिव्य भाव की सृष्टि करते हैं, जिसे परम निर्वाण या मोक्ष कहा जा सकता है।

इस प्रकार इस युगपुरुष की जन्मकुण्डली, दीक्षाकुण्डली एवं निर्वाणकुण्डली इन तीनों को एक साथ देखकर हम सहजरूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह महापुरुष जन-कल्याण के लिए ही आविर्भूत हुआ था, तथा जीवनभर लोगों को सुखमय जीवन जीने की कला प्रतिपादित करता रहा और स्वयं अखण्ड आनन्द या शाश्वत सुख में विलीन हो गया। प्रसंग-वश मुझे उनके दिव्यचरित्र के कुछ अंशों पर विचार करने का अवसर मिला। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है—इन्हीं शब्दों के साथ मैं उस महामना क प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूं।

—शुकदेव चतुर्वेदी
ज्योतिषाचार्य, एम. ए.
अध्यक्ष-ज्योतिष विभाग
श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली

श्री श्रमण मायाराम जी

जैन-जग की जान थे श्री श्रमण मायाराम जी,
साधकों की शान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

विक्रमी उगनीस सौ ग्यारह "बड़ौदा" गाँव में,
आ गये बन भानु थे श्री श्रमण मायाराम जी।

खिल उठी 'शोभावती' थी, खिल उठे 'जोतराम',
लग रहे कुल-शान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

हर्ष से ली धार दीक्षा पा सुगुरु 'हरनामदास',
बन गये विद्वान् थे श्री श्रमण मायाराम जी।

दर्शनों से दर्शकों का, नाच उठता रोम-रोम,
इस क़दर गुणवान् थे श्री श्रमण मायाराम जी।

दाग़ कोई भी लगे न त्याग में-वैराग में,
खूब रखते ध्यान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

दंभ से, निन्दा, कलह से, पिशुनता के पाप से,
जन्म से अनजान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

पाप के पाखंड के आगे कभी भी न झुके,
बहुत ही बलवान् थे श्री श्रमण मायाराम जी।

दूर माया मोह से थे, दूर दुनिया-द्रोह से,
दूर रखते मान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

फटक पाता पास उनके, न कभी था झूठ छल,
सरलता की खान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

सप्त व्यसनों से हटा, संसार को सत्पथ दिखा,
कर रहे कल्याण थे श्री श्रमण मायाराम जी।

बन गये लाखों अहिंसक, आपके उपदेश से,
परम प्रतिभावान् थे श्री श्रमण मायाराम जी।

एक कम सत्तर 'भिवानी' में हुए वैकुंठ-वास,
ले गये सम्मान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

क्या करें गुणगान "चन्दन" पार आ सकता नहीं,
दिव्य इक इन्सान थे श्री श्रमण मायाराम जी।

—कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी म०

जय युग-पुरुष

ज्ञान-दर्शन-चरित्र से, जीवन था अभिराम !
परम श्रेष्ठ ! जनवंद्य जय, मुनिवर मायाराम !!

मंगलमय ! महिमानिलय ! महाश्रमण ! गुण-धाम !
परम श्रेष्ठ ! जनवंद्य जय, मुनिवर मायाराम !!

अपराजित व्यक्तित्व जय !, जय-जय पूरण-काम !
परम श्रेष्ठ ! जनवंद्य जय, मुनिवर मायाराम !!

कालजयी ! जय युगपुरुष !, जय यशपुंज-ललाम !
परम श्रेष्ठ ! जनवंद्य जय, मुनिवर मायाराम !!

जन-जन के मन में बसा, जिनका पावन नाम !
परम श्रेष्ठ ! जनवंद्य जय, मुनिवर मायाराम !!

'कमल' मुनि श्रद्धा-सहित, अगणित तुम्हें प्रणाम !
परम श्रेष्ठ ! जनवंद्य जय, मुनिवर मायाराम !!

—मुनि महेन्द्र कुमार 'कमल'

शिक्षायें अपना लो

पूज्य महामुनि मायाराम जी के चरणों से अपना ध्यान लगालो,
जीवन बनेगा, उनकी शिक्षायें अपनालो

आना और यूं ही चले जाना, ऐसा आना भी क्या आना ।
मर कर भी तू मर नहीं पाये, याद करे तुझको यह जमाना ।
मने शताब्दि, मने जयन्ती, कुछ ऐसी करनी कर डालो ।।

बड़ौदा के श्री जोतराम ने देखो, कैसी ज्योति जगाई ?
माता शोभावती ने अपनी कूख से क्या माया बरसाई ?
उस ज्योति से, उस माया से, मन का सब अन्धेर मिटालो ।।

माया पास में नहीं रहती जब, तब फिर राम याद आते हैं ।
राम अगर माया दिलवावें, तो फिर राम नहीं भाते हैं ।
लेकिन मायाराम को जप कर, दोनों का संयोग मिलालो ।।

ओम् प्रकाश जैन 'हरियाणवी'

वर्धमान का रूप

जब-जब हिंसा के माथे पर,
तिलक विजय का लगता है।
जब-जब भू के रक्त-मांस से,
भवन अहं का सजता है।

विध्वंसों को प्यास में, तम-छाए आकाश में,
विधि लुप्त हो जाती है तब तर्क और उपहास में।

चमन खिलौना बन जाता है,
दानव की तदबीर का।
मानव नाम शेष रह जाता,
एक सिसकती पीर का।

शस्त्रों की झंकार में, उद्‌जन की किलकार में,
कविता मेरी खो जाती है, बेबस की चित्कार में।

तभी शम्भु का नेत्र तीसरा,
घोर घटा का नाश करे।
युग-युग बन्दी रवि भू पर,
स्वर्णिम सुखद प्रकाश करे,

किरणें वही ललाम हैं, वही राम और श्याम हैं,
वर्धमान का रूप वही तो मुनिवर मायाराम हैं।

दग्ध धरा पर रिमझिम,
बूंदे बन जन-मन सरसाये।
अमृतमयी वाणी से मुनिवर,
झुलसे चमन खिलाये।

रोशन किया जहान को, सुरभित जग-उद्यान को,
गर्व स्वयं पर भी होता है, देख जिन्हें भगवान् को।

ब्रजमोहन गुप्त 'ब्रज'
भिवानी।

मेरा प्रणाम

करुणाकर मुनि मायाराम, तुमको मेरा कोटि प्रणाम।
तुम त्यागी तुम संत सुजान,
तुम थे तप के सूर्य महान,
दुखी विश्व में सुख सरसावे,
फिर आओ हे दया निधान।
तेरी कृपा दृष्टि पाकर प्रभु, फूटे बाँझ वृक्ष में आम।
तुमको मेरा कोटि प्रणाम॥
जन्म-मृत्यु से ऊपर आकर,
शान्ति गीत की वीण बजाकर,
कल्प वृक्ष तुम थे इस युग के,
चले गये अमृत बरसाकर।
जन-मन के अन्तर्यामी थे, परहित कामी, तुम निष्काम।
तुमको मेरा कोटि प्रणाम॥
वीतराग यौवन में होकर,
समता का वरदान संजोकर,
दिव्य ज्योति को किया प्रकाशित,
मानव मन का कलमष धोकर।
परसा जिसने तव चरणों को, हुए पंथ वे ललित-ललाम।
तुमको मेरा कोटि प्रणाम॥
इस दीक्षा-शताब्दी पर वन्दन,
करके करता हूँ अभिनन्दन,
गंध आपके आदर्शों की,
घर-घर फैले जैसे चन्दन।
धन्य धरा यह हरियाणा की, धन्य सुधन्य बड़ौदा ग्राम।
तुमको मेरा कोटि प्रणाम॥

ओम् प्रकाश 'आदित्य'
मालवीय नगर, दिल्ली

पतझड़ भी मधुमास हो गया

भू में ऐसे बीज बो गया, सबको ही आश्चर्य हो गया।
माया का जड़-मूल खो गया, अंधियारा भयभीत सो गया।
पा कर स्पर्श तुम्हारा मुनिवर! लोहा कुन्दन खास हो गया।
पतझड़ भी मधुमास हो गया॥

वेश्या फिर से बनी सन्नारी, धर्मवीर बन गये जुआरी।
विष की गागर, अमृत-झारी, ऐसी चोट ज्ञान की मारी।
तुम ऐसे आये बगिया में, गन्धभरा वातास हो गया।
पतझड़ भी मधुमास हो गया॥

'मायाराम' नाम सुन्दर था, शुद्ध-बुद्ध बाहर-अन्तर था।
जीवन भी अमृत का सर था, तेज चमकता ज्यूँ दिनकर था।
मारे तीर ज्ञान के कस-कस, अन्धकार का नाश हो गया।
पतझड़ भी मधुमास हो गया॥

खास भिवानी की नगरी में, चौक जवाहर की डगरी में।
धर्म-प्रवर्त्तन की पगरी में, संजीवन भर के गगरी में।
मुक्तभाव से बांट दिया था, पाप, पुण्य के पास हो गया।
पतझड़ भी मधुमास हो गया॥

हर बाधा को हंस कर झेला, भाद्र शुक्ल ग्यारस की वेला,
बिछुड़ गया जीवन का मेला, बगिया को कर गया अकेला,
दीप बुझा जल गये अनेकों, कंकर भी कैलाश हो गया!
पतझड़ भी मधुमास हो गया॥

प्रो० मोहन 'मनीषी'

शब्द-चित्र

नाम : चारित्र-चूड़ामणि श्री मायाराम जी महाराज।

जन्म : आषाढ़ कृष्णा २ संवत् १६११, बड़ौदा ग्राम, जिला जींद (हरियाणा)

पिता : चौ० श्री जोतराम जी नम्बरदार

माता : श्रीमती शोभावती जी।

भ्राता : (१) श्री आदराम जी (२) श्री मायाराम जी (३) श्री सुखीराम जी (४) श्री रामनाथ जी।

जाति : जाट, चहल गौत्र।

धर्मबोध : श्री गंगाराम जी महाराज व श्री रतिराम जी महाराज।

शिक्षा : बाल्यावस्था में ही हिन्दी, प्राकृत का श्रेष्ठ बोध, तत्त्व ज्ञान, आगम-अध्ययन, ५ आगम गृहस्थ में ही कण्ठस्थ थे।

दीक्षा : सवत् १६३४, माघ शुक्ला ५, पटियाला नगर (पंजाब)

गुरुदेव : मुनि-प्रवर श्री हरनामदास जी महाराज

गुरुभ्राता : गणावच्छेदक श्री जवाहरलाल जी महाराज, तपस्वी श्री शम्भुराम जी महाराज

शिष्य : (१) श्री नानकचन्द जी महाराज (२) श्री देवीचन्द जी महाराज (३) श्री छोटेलाल जी महाराज (४) श्री वृद्धिचन्द जी महाराज (५) श्री मनोहरलाल जी महाराज (६) श्री कन्हैयालाल जी महाराज (७) श्री सुखीराम जी महाराज।

विशिष्ट गुण : विशुद्ध संयमी, अनुशासक, मधुर वक्ता, महान् आगम-वेत्ता।

विचरण : पंजाब, हरियाणा, देहली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश।

स्वर्गवास : संवत् १६६६, भाद्रपद शुक्ला ११, भिवानी (हरियाणा)

पूर्णायु : ५८ वर्ष २ मास।

बड़ौदा ग्राम में जन्मे स्वर्गस्थ

नाम :	माता :	पिता :
१. श्री मायाराम जी म.	श्रीमती शोभावती जी	चौ. जोतराम जी
२. श्री सुखीराम जी म.	,, ,,	,, ,, ,,
३. श्री रामनाथ जी म.	,, ,,	,, ,, ,,
४. श्री जवाहरलाल जी म.	,, बदामो देवी जी	,, रामदयाल जी
५ श्री हिरदुलाल जी म.	,, ,,	,, ,, ,,
६. श्री केसरीसिंह जी म.	,, हरदेवी जी	,, भोलाराम जी
७. श्री नानकचन्द जी म.	,, मनभरी देवी जी	——
८. श्री देवीचन्द जी म.	,, सुखमादेवी जी	,, मसाणियाराम जी
९. श्री अखेराम जी म.	,, धनकुंवर जी	,, बखतौरसिंह जी
१०. श्री रामजीलाल म.	,, लाडोबाई जी	,, सुखदयाल जी
		वर्तमान सन्तों का
११. श्री रणसिंह जी म.	श्रीमती रेशमां देवी जी	चौ. हेतराम जी
१२. श्री शिवचन्द जी म.	,, साहिब कुंवर जी	,, शादीलाल जी
१३. श्री जिनदास जी म.	,, सोनाबाई जी	ला. देवीचन्द जी
१४. श्री विजय मुनि जी म.	,, छोटोदेवी जी	चौ. जागरसिंह जी

सन्तों का संक्षिप्त परिचय

जन्म सं०	दीक्षा सं०	स्वर्गवास सं०
१९११ आषाढ़ कृ. २,	१९३४ माघ शु, ६,	१९६९ भाद्रपद शु. ११
१९१४ आषाढ़ शु. ९,	१९५९ पौष शु. ६,	१९७९ पौस मास
१९१७ श्रावण कृ. ५,	१९५४ सा. कृ. १२,	१९९५ आश्विन कृ. १०
१९१२ ज्येष्ठ शु. १३,	१९३५ मार्गशीर्ष कृ. ५,	१९८८ माघ कृ. १४
१९१५ वैशाख कृ. १०,	१९५४ सा. कृ. १२,	१९८६ भाद्रपद शु.
१९१७ श्रावण शु. ७,	१९३७ मार्गशीर्ष कृ. ५,	१९९० श्रावण शु. ६
१९१३ मार्गशीर्ष कृ. १२,	,, ,, ,,	———
१९१३ पौष शु. ६,	,, ,, ,,	———
१९१६ फाल्गुन शु. १४,	———	———
१९४७ भाद्रपद कृ. ९,	१९७१ मार्गशीर्ष कृ. १४,	२०२४ अश्विन कृ. ५,

संक्षिप्त परिचय

१९६४ मार्ग शु. २,	१९९६ वैशाख शु. ७,
१९७१ चैत्र कृष्णा ९,	,, ,, ,,
१९६४ कार्तिक शु. ५,	सन् १९६५
२००३ भाद्रपद कृ. ४,	सं० २०२४

स्मृतियां !

(i) **स्मारक :** मुनि शिरोमणि श्री मायाराम जी म० के स्वर्गवास स्थान—भिवानी नगर के बाहर मुक्तिधाम श्मशान में यह निर्मित भव्य, ललित समाधि है। इसका निर्माण ला० शिवनाथ हरलाल भगनका वैष्णव ने महामना में अनन्य आस्था व गुरु-भक्ति से प्रेरित हो कर करवाया है।

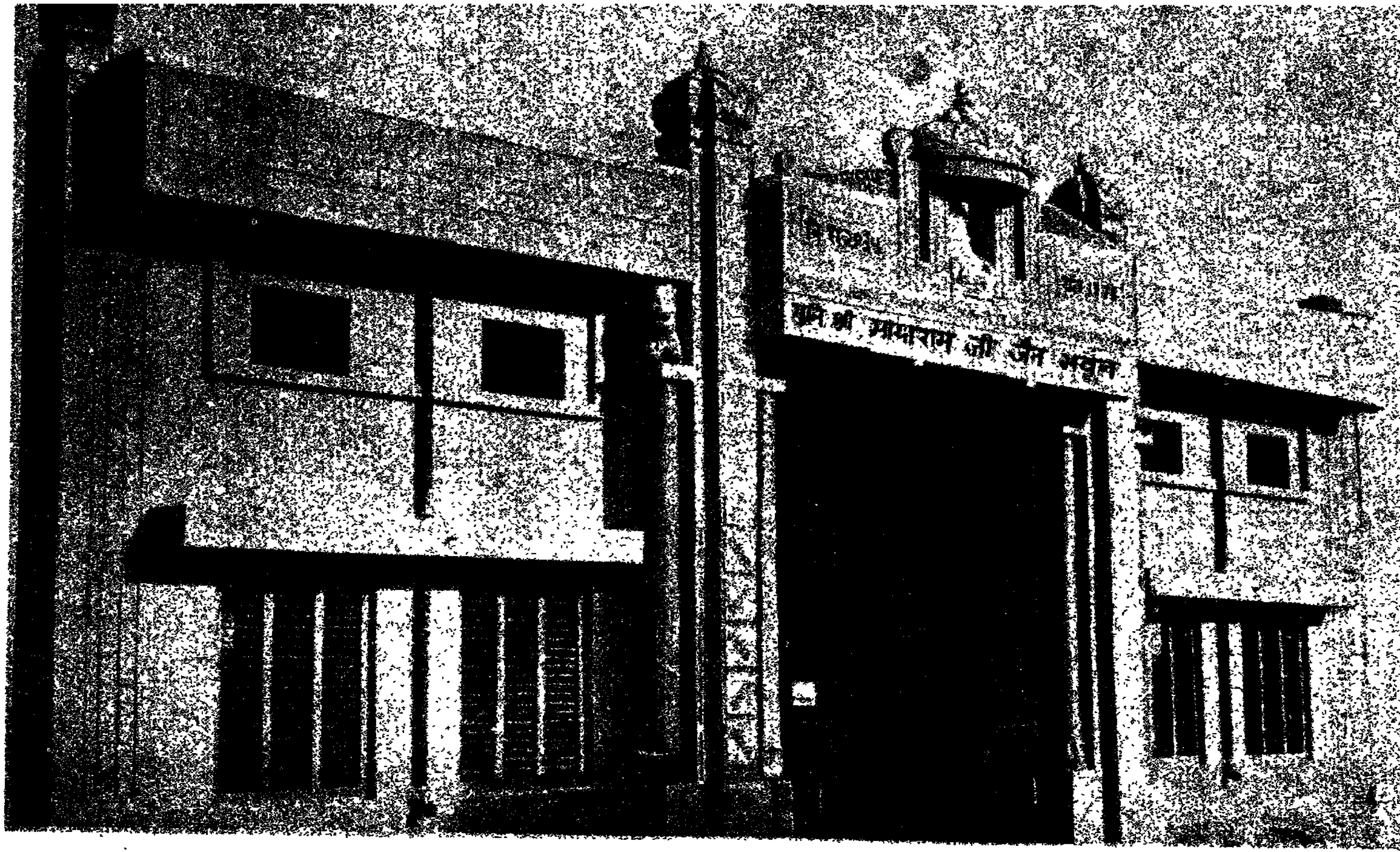
निकट व दूर से अनेक श्रद्धालु इसे देखने को आते रहते हैं।

(ii) **मुनि श्री मायाराम जी म० जैन भवन :** श्रद्धेय महामना की जन्म भूमि बड़ौदा ग्राम में इसका निर्माण, उनकी दीक्षा-शताब्दी के अवसर पर हुआ है। सं० २०३४ माघ शुक्ल ५ को श्रद्धाशील श्री जे० डी० जैन ने इसका शिलान्यास किया था। बड़ौदा के उत्साही, धर्मानुरागी श्रावकों के अथक प्रयत्नो से यह सुन्दर और विशाल भवन निर्मित हो चुका है।

(iii) **श्री मायाराम जी म० जैन पुस्तकालय :** यह जाखल मण्डी (हरियाणा) में स्थित है। इस पुस्तकालय में विविध आगम-ग्रन्थो तथा सस्कृत व हिन्दी साहित्य का संकलन है। कुछ पुरातन हस्त लिखित आगम तथा अभिधान राजेन्द्र कोष जैसे अनुपलब्ध मुद्रित ग्रन्थ इसमें उपलब्ध है।

(iv) **मुनि मायाराम जी अग्रवाल जैन धर्मशाला :** यह ला० प्यारे लाल मिट्ठन लाल जैन अग्रवाल ट्रस्ट द्वारा नं० २१३८-४० मस्जिद खजूर, धर्मपुरा (निकट चान्दनी चौक देहली) में निर्माणाधीन है। इस भवन की योजनायें अतिभव्य एवं विशाल है। औषधालय, पुस्तकालय, शिक्षा सस्थान एवं सहायता कोष आदि प्रवृत्तिया इसमें संचालित होंगी।

(v) **श्री मायाराम जी म० दीक्षा-शताब्दी-समिति :** के० सी० ४१ कविनगर, गा. जयाबाद : मुनि-मूर्धन्य की दीक्षा के सौ वर्ष की पूर्णाहुति के



(दीक्षा-शताब्दी पर बड़ौदा ग्राम में निर्मित-जैन भवन)

अवसर पर इस समिति का श्री जे० डी० जैन की अध्यक्षता में गठन हुआ था। समिति की ओर से मुनि श्री का संक्षिप्त जीवन परिचय 'दिव्य व्यक्तित्व' का प्रकाशन हुआ, जो लोक प्रिय रहा।

(vi) **श्री एस०एस० जैन सभा, भिवानी :** मुनिमना के चरणों में समर्पित जैन संघ, भिवानी ने दीक्षा-शताब्दी वर्ष पर दिनांक १८ जनवरी १९७८ को एक सुन्दर आयोजन किया। इसमें राष्ट्र के मान्य कवियों तथा साहित्यकारो ने भाग लिया। इस अवसर पर मुनि श्रेष्ठ के जीवन पर एक 'वन्दना' नामक स्मारिका का प्रकाशन हुआ।

(vii) **मुनि श्री मायाराम जी स्मारक समिति, दिल्ली प्रदेश :** श्री मायाराम जी म० की दीक्षा-शताब्दी के अवसर पर इस समिति का ला० ज्ञानचन्द जी जैन की अध्यक्षता में गठन हुआ। इसमें दिल्ली प्रदेश के समस्त जैन-संघों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। समिति की ओर से एक विशाल 'दीक्षा-शताब्दी समापन समारोह' का सफल आयोजन किया गया—जिसमें पूज्य मुनिराजों व महासतियों के साथ-साथ उच्च साहित्यकारों, मान्य राष्ट्र नेताओ ने भाग लिया।

इस समिति की ओर से समारोह के अवसर पर एक 'श्रद्धा' नामक सुन्दर स्मारिका प्रकाशित की गयी।

(viii) **श्री मायाराम जी म० स्मारक-प्रकाशन :** के० बी० ४५ कविनगर, गाजियाबाद। 'महाप्राण मुनि मायाराम' का प्रकाशन प्रस्तुत संस्थान की ओर से हो रहा है। संस्थान के संस्थापक प्रसिद्ध उद्योगपति श्री जे० डी० जैन हैं।

श्री सुभद्र मुनि जी के द्वारा रचित साहित्य प्रकाशन के लिये यह संस्थान संकल्पित और समर्पित है।

तुम तो रास्ता थे

तुम
अजन्मे शौर्य
तुम उगे
ज्यों सूर्य
मुनि, मौन, मन गूंजा तुम्हारा
जिस तरह से तूर्य
तुम नहीं थे
मात्र, घर, गांव, कस्बा, शहर
प्रान्त या कि देश
तुम थे भारत
उनकी अस्मिता थे
आस्था थे
लग रहे थे पथिक लोगों को
मगर तुम तो रास्ता थे

याद करके
ऋण चुकाना
आज तक सम्भव नहीं
और भी आगे
कभी भी इस तरह होगा नहीं
जाति की दीवार करके ध्वस्त
तुमने
रोशनी बांटी
कौन है इससे अजाना
खेत, नदी, पर्वत या घाटी
सब तरफ़
माया तुम्हारी थी
और तुम थे राम
जिस तरह से आदमी के बाद
जीते काम
उस तरह से जी रहा है
और युग-युग तक जियेगा
नाम—
मुनि मायाराम।

—पुरुषोत्तम 'प्रतीक'